मध्यकालीन

राजस्थान का इतिहास

HISTORY OF MEDIAEVAL RAJAST

(From 8th to 18th Century)

•

By
Dr V S BHARGAVA
M.A., Ph D,
Author of
Marwar and the Mughal Emperors,
Forts of Rajasthan etc.

With a Foreword by
Dr. K N. KATJU
M.A, LL.D,
CHANCELLOR
SAGAUR UNIVERSITY

मध्यकालीन
राजस्थान का इतिहास

HISTORY OF MEDIAEVAL RAJASTHAN

(From 8th to 18th Century)

प्रकाशक
कॉलेज बुक डिपो
जयपुर

प्रथम संस्करण 1966

मूल्य पच्चीस रुपए मात्र

मुद्रक
चन्द्रोदय प्रिन्टर्स, जयपुर
एव
हिन्दुस्तान आर्ट [illegible], जयपुर

समर्पित

पूज्य पितामह स्व० रायबहादुर

पं० श्रीरामजी भार्गव

जज (हाईकोर्ट), कोटा-राज्य

भूमिका

लगभग अर्द्ध-शताब्दी पूर्व मैने टॉड का 'राजस्थान' पढा जिसने मेरी इन पूर्व मान्यताओ को सत्य प्रमाणित कर दिया कि वास्तव मे राजपूतो ने भारतीय इतिहास मे सक्रिय सहयोग प्रदान किया है। तत्पश्चात् १६०५ मे मुझे एक मुकद्दमे के सिलसिले मे शेखावाटी भ्रमण का अवसर मिला। भ्रमण ऊट के द्वारा किया गया था क्योकि उस समय राजस्थान मे याता-यात के साधन उपलब्ध नहीं थे। इसके अतिरिक्त बचपन से ही मेरा व्यक्तिगत रूप से राजस्थान के प्रति अगाध प्रेम बना रहा है। अगाध प्रेम का कारण यह था कि मेरा विवाह जोधपुर के एक सम्भ्रान्त कुल मे हुआ था। अत जब मेरा डॉ० वी० एस० भार्गव से परिचय हुआ तो मैने उन्हे राजस्थान का इतिहास लिखने का सुझाव दिया। मेरे सुझाव पर डॉ० भार्गव ने प्रस्तुत पुस्तक लिखी।

इस पुस्तक मे प्राप्य विश्वसनीय और उपलब्ध सामग्री का प्रयोग करके डॉ० भार्गव ने कर्नल टॉड की पुस्तक मे वर्णित भ्रातियो को दूर करने का जो प्रयास किया है वह सवथा सराहनीय है। साथ ही इस पुस्तक को पढने से मध्यकालीन राजस्थान का इतिहास एका-एक जाना जा सकता है। राजनतिक इतिहास के अतिरिक्त लेखक ने अपनी पुस्तक मे 'किलों का इतिहास' तथा 'राजस्थान की सभ्यता और सस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव' पृथक अध्यायो मे लिखा है। कदाचित् यह वर्णन सर्वप्रथम किया गया है। नवयुवक लेखक का यह प्रयास सराहनीय है। पुस्तक को अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए जो विश्वसनीय चित्र दिये गये हैं उन्होंने ग्रन्थ के मूल्य को अवश्य बढा दिया है लेकिन उनसे ऐतिहासिक महत्व द्विगुणित हो गया हैं। इस ग्रन्थ को लिखकर डॉ० भागव ने एक कमी को अवश्य पूरा किया है लेकिन इसके लिए डॉ० भागव के अतिरिक्त राजस्थान सरकार भी धन्यवाद की पात्र है जिसने उत्साही लेखक को अध्ययन-अवकाश प्रदान करके पुस्तक लिखने का अवसर प्रदान किया।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह ग्रन्थ अवश्य लोकप्रिय होगा।

—कैलासनाथ काटजू

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक 'राजस्थान का इतिहास' उन लोगों के लिए लिखी गई है जिन्हें कभी राजस्थान का इतिहास पढ़ने का अवसर नहीं मिला अथवा जो जेम्स टॉड, ओझाजी, कविराजा श्यामलदास आदि विख्यात लेखको की बहु-मूल्य एव अलभ्य कृतियो से अपरिचित रहे हैं।

वास्तव मे, इस पुस्तक का अधिकाश भाग मैंने अपनी सुयोग्य शिष्या कुमारी सुन्दरी शर्मा के लिये लिखा था जिन्होंने इस वर्ष इतिहास मे एम० ए० (फाइनल) की परीक्षा दी है। चू कि प्रारम्भ से ही इस पुस्तक लिखने का उद्देश्य परीक्षार्थियो की आवश्यकता पूर्ति रहा है अत मारवाड और आमेर राज्यो के इतिहास के कुछ अ शो को छोडकर, जहा मैंने अपने अनुसधान को सक्षेप मे लिखने का प्रयत्न किया है, शेष सामग्री प्रकाशित ग्रन्थो से स्वतत्रता-पूर्वक ली है अत मैं उन कृतियों के लेखकों—कर्नल जेम्स टॉड, डा० ओझा, कविराजा श्यामलदास, डा० मथुरालालजी शर्मा, डा० दशरथ शर्मा तथा महाराजकुमार डा० रघुवीरसिंहजी सीतामऊ के प्रति आभार प्रदर्शित करना अपना परम कर्त्तव्य समझता हू ।

पुस्तक की तैयारी मे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मुझे कुछ अपने मित्रो एव सहयोगियों से भी सहायता मिली है। भरतपुर-निवासी श्री उपेन्द्रनाथ शर्मा पिछले कुछ वर्षों से मेरे निर्देशन मे भरतपुर के जाटों के उत्कर्ष एव विकास का हिन्दी भाषा मे इतिहास लिख रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक मे 'मुगल-जाट सघर्ष' नाम से परिशिष्ठ श्री उपेन्द्र के भावी ग्रन्थ का ही साराश है। बयाना के किले पर श्री के० सी० शर्मा एडवोकेट, भरतपुर ने कुछ सामग्री आज से लगभग २० वर्ष पहले प्रकाशित की थी जब वे महारानी श्री जया कालेज, भरतपुर मे इतिहास के अध्यापक होने के नाते स्वर्गीय डा० अल्तेकर के साथ बयाना की खुदाई मे भाग लेने गये थे। मैंने बयाना के किले का बहुत कुछ वर्णन श्री शर्मा की सामग्री से ही लिया है। इसी प्रकार 'राजस्थानी चित्रकला' की उत्पत्ति एव विकास के सम्बन्ध मे बहुत कुछ सामग्री श्रीयुत कु वर सग्रामसिहजी (नवलगढ़) के लेखो से प्राप्त हुई है। आधुनिक राजस्थान मे कु वर सग्रामसिहजी के मुकाबले मे शायद ही कोई व्यक्ति 'चित्रकला' के सम्बन्ध मे अधिक ज्ञान रखता होगा।

पुस्तक के ऐतिहासिक महत्व को बढाने वाले वे चित्र हैं जिन्हें उत्साही प्रकाशक ने सहर्ष ग्रन्थ मे छापा है। लगभग सभी चित्र विश्वसनीय एव निकट समकालीन हैं। विशेष रूप से जो चित्र कुंवर सग्रामसिहजी के सग्रह मे प्राप्त हुए हैं वे सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। जोधपुर के किले के चित्र भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। जोधाबाई और आमेर नरेश महाराजा मानसिह के चित्र बाद मे बने हुए हो सकते हैं, लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वे वास्तविकता से परे हैं। इन अप्राप्य चित्रो के फोटोग्राफ प्राप्त करने मे मुझे एव मेरे प्रकाशक महोदय को काफी परेशानियों का सामना करना पडा है। इसी प्रकार चूडामन जाट का चित्र प्राप्त करने मे श्री उपेन्द्रनाथ शर्मा को बहुत कठिनाई हुई है। स्पष्ट है पुस्तक का मूल्य बढ गया है लेकिन साथ ही पुस्तक का ऐतिहासिक मूल्य भी कम नहीं बढ़ा है।

यह पुस्तक राजस्थान सरकार के शिक्षा-सचालक श्री वी० वी० जॉन की कृपा के अभाव मे कभी नहीं लिखी जा सकती थी। उनकी असीम अनुकम्पा के कारण ही मुझे अध्ययन-अवकाश मिल सका। अत वे धन्यवाद के सर्वाधिक पात्र हैं। पुस्तक को लिखने मे वास्तविक सहयोग कुमारी लक्ष्मी भार्गव, श्री हरीशङ्कर शुक्ला तथा मेरी धर्म-पत्नि श्रीमती शशि भार्गव से प्राप्त हुआ है।

कुंवर केसरीसिहजी, सदस्य विधान-सभा, मेरे लघु भ्राता श्री ईश्वरस्वरूप भार्गव, प्रो० गोकुलप्रकाश शर्मा, श्री वेदप्रकाश ग्रोवर तथा राजस्थान विश्वविद्यालय के इतिहास-विभाग के प्रोफेसर डॉ० सतीशचन्द्रजी से भी मुझे प्रत्यक्ष रूप से प्रेरणा एव सहायता मिली है अत यह सब महानुभाव धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्त में, मैं पुस्तक के भूमिका-लेखक श्रीयुत डा० कैलासनाथ काटजू का आभारी हू जिन्होंने तत्परतापूर्वक मेरा उत्साहवर्धन किया है। राजनैतिक जीवन मे राज्यपाल एव मुख्य मन्त्री के महत्वपूर्ण पदों पर रहकर भी डा० काटजू ने इतिहास-प्रेम को नहीं त्यागा, यह आश्चर्यप्रद है। यद्यपि राजस्थान से उनका प्रत्यक्ष रूप से कभी सीधा सम्पर्क नहीं रहा लेकिन फिर भी इस राज्य के गौरवपूर्ण इतिहास मे उनकी वर्षों से रुचि रही है। इस रुचि का आभास हमे उनके अपने शब्दों में अधिक स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। अत वयोवृद्ध विद्वान के प्रति आभार प्रदर्शित करना मेरे लिये अनिवार्य है।

—विश्वेश्वरस्वरूप भार्गव

अनुक्रमणिका

1

राजस्थान की भौगोलिक स्थिति का उसके इतिहास पर प्रभाव

(Geographical Features of Rajasthan and their Bearing on its History)

भारतीय गणतन्त्र का पश्चिमी भाग स्वतन्त्रता से पूर्व राजपूताना एव 1950 के बाद राजस्थान के नाम से पुकारा जाता है। अग्रेजी शासनकाल मे इसे राजपुताना इसलिए कहकर पुकारा जाता था क्योंकि इस प्रान्त मे अधिकतर राजपूत राजा शासन करते थे। विभिन्न देशी राज्यो के विलिनीकरण के बाद यह भू-भाग राजस्थान के नाम से पुकारा जाता है। इस भू-भाग के लिए राजस्थान शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कर्नल जेम्स टॉड[1] ने 1829 मे किया था जब उन्होने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'एनाल्स एड ऐटिक्वीज ऑफ राजस्थान (Annals and Antiquties of Rajasthan)' लिखी।

राजस्थान को इस नाम से 1829 मे टॉड ने पुकारा था

भूगर्भवेत्ताओ[2] का ख्याल है कि रामायणकाल से पहले यह प्रदेश समुद्री जल से ढका हुआ था लेकिन महाभारतकाल मे इस प्रदेश का उत्तरी भाग, जो अब नागौर और बीकानेर के नाम से प्रसिद्ध है, जगल देश कहलाता था और पूर्वी भाग जिसे इस समय हम अलवर, भरतपुर कहकर पुकारते हैं, मत्स्य देश कहलाता था।[3]

इस प्रदेश पर तृतीय मौर्य सम्राट् प्रियदर्शी अशोक का भी अधिकार रहा था। तत्पश्चात् जब यूनानी और शक जाति के लोगो का भारत पर प्रभाव बढा तो यह प्रदेश भी विदेशियो के अधिकार मे चला गया। चौथी शताब्दी के अन्तिम भाग से छठी शताब्दी के अन्त तक गुप्त सम्राटो का इस प्रदेश के कई भागो पर अधिकार रहा। सातवी शताब्दी मे जब हर्षवर्धन भारत पर राज्य कर रहा था उस समय चीनी यात्री ह्वेनत्सांग भारत

सातवीं शताब्दी के पूर्व राजस्थान का इतिहास

1 देखिये जेम्स टॉड कृत 'एनाल्स एन्ड ऐटिक्वीज आफ राजस्थान,' भाग 1 पृष्ठ 1 (1829 का सस्करण)। इससे पहले यह प्रदेश कभी भी इस नाम से अथवा किसी ऐसे ही एक नाम से प्रसिद्ध नही रहा है।

2 चूकि राजस्थान मे सीप, शख, कौडी इत्यादि सामुद्रिक पदार्थ पाये जाते हैं, अत भूगर्भवेत्ता यह मानते हैं कि यह प्रदेश समुद्र जल मे ढका हुआ था।

3 देखिये महाभारत (वन पर्व) अध्याय 23, श्लोक 5 तथा नागरी प्रचारिणी पत्रिका।

की यात्रा करने आया। ह्वाग च्याग के यात्रा वर्णन सी-यू-की को पढने से पता चलता है कि उस समय राजस्थान चार भागो मे बटा हुआ था। आधुनिक जोधपुर, बीकानेर और शेखावाटी का कुछ भाग गुर्जर प्रदेश कहलाता था। जयपुर, अलवर और टोंक का कुछ भाग वैराट के नाम से प्रसिद्ध था। आधुनिक भरतपुर, धौलपुर व करौली का इलाका मथुरा कहलाता था और दक्षिणी भाग बागड के नाम से प्रसिद्ध था।

आठवी शताब्दी के प्रथम चरण मे मुसलमानो का पहला आक्रमण भारत पर हुआ। आठवी शताब्दी से ग्यारहवी शताब्दी के बीच राजपूत जाति के कई वश[1] इस प्रदेश में आकर बस गये और उन वशो ने अपने स्वतन्त्र राज्य कायम कर लिए। यह राजवश अपने आपको वैदिककालीन क्षत्रियो की सन्तान मानते थे और प्रत्येक राजवश अपना उदय सूर्य अथवा चन्द्र से मानता था। उस समय से लेकर 1950 तक राजस्थान का अधिकाश भाग मुख्य रूप से सात राजवशो[2] के अधिकार मे रहा है, यद्यपि समय-समय इन राज्यो की सीमाओ मे हेर फेर होता रहा है और मुगल काल मे 1570 के बाद 1707 ई० तक कई बार इस प्रदेश पर मुगल बादशाहो का सीधा अधिकार भी रहा है।

राजस्थान मे राजपूतो का आगमन

किन्तु प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि यह राजपूत वश कहा से आकर राजस्थान मे बसे और इन्होने अपने निवास स्थान के लिये राजस्थान को ही क्यो चुना ? प्रथम प्रश्न का उत्तर तो यथास्थान परवर्ती पृष्ठो मे दिया जायेगा क्योकि प्रत्येक राजवश के मूल निवास स्थान के सम्बन्ध मे आज तक विद्वान एकमत नही हैं। लेकिन दूसरे प्रश्न का उत्तर वर्तमान राजस्थान की भौगोलिक चर्चा करने से स्पष्ट हो जायगा।

वर्तमान राजस्थान का आकार एक पतग के समान है। यह २३° अश ३' कला से 30 अश 12' कला उत्तर अक्षाश और 69° अश 30' कला से 78° अश

---

1 गहलोत, पडिहार, चौहान, भाटी, परमार, सोलङ्की, नाग, मोयेय (जोहिया), तँवर, दहिया, डोडिया, गौड, यादव, कछवाहा और राठौड।

2 उदयपुर, डूंगरपुर, बासवाडा, प्रतापगढ़, शाहपुरा, मे गहलोत वश के शासक थे।
जोधपुर, बीकानेर व किशनगढ मे राठौर थे।
जयपुर और अलवर में कछवाहा वश के शासक थे।
बूंदी, कोटा, सिरोही चौहानो के अधिकार मे थे।
करौली और जैसलमेर क्रमश यादवो व भाटियो के अधिकार मे थे।
झालावाड झालाओ के अधिकार मे था और दाता पवारो के।

भौगोलिक स्थिति

17 कला पूर्व देशातर के बीच फैला हुआ है। इसके उत्तर और उत्तर पूर्व मे पजाब, उत्तर-पश्चिम में पाकिस्तान का भावलपुर राज्य, पूर्व मे उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश का ग्वालियर जिला तथा दक्षिण मे मध्यप्रदेश तथा गुजरात हैं, पश्चिम मे पाकिस्तान का सिंध प्रान्त है।

समस्त भूभाग अरावली पर्वतमाला के कारण दो भागो मे बटा हुआ है। पश्चिमी भाग समतल है जिसमे 3/5 भूभाग आ जाता है। लेकिन इस प्रदेश मे

अरावली पर्वतमालायें

आबादी दूर दूर है, और पानी की कमी के कारण उपजाऊ भूमि की कम है। पूर्व का प्रदेश सजल और उपजाऊ है यद्यपि इसमे 2/5 भूभाग ही आता है। अरावली पहाड की लम्बाई 300 मील और ऊँचाई दो हजार फीट है। इसकी सबसे ऊची चोटी आबू है जिसकी ऊचाई समुद्र की सतह से 5650 फीट है। जयपुर और अलवर के राज्य इसी पवतमाला मे बसे हुए हैं। इसी पवतमाला की एक शाखा भरतपुर की तरफ गई है। इसके दक्षिण मे करौली की पहाडिया हैं। दक्षिण-पश्चिम मे नीची पर्वत की कतारें हैं जो मांडलगढ (उदयपुर-मेवाड) से शुरू होकर बूदी मे होती हुई इन्द्रगढ (कोटा) तक गई हैं। इन्हे बूदी की पहाडिया कहते हैं। इनके अलावा मुकदरा की पहाडिया कोटा के दक्षिण-पश्चिम मे झालरापाटन तक फैली हुई हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पूर्वी राजस्थान मे छोटी २ पहाडिया बहुतायत मे हैं। पश्चिमी भाग मे भी पहाडिया हैं लेकिन यत्र–तत्र हैं, शृखलाबद्ध नही हैं।

इन पहाडियो की चोटियो पर राजपूतो ने अपने गढ और गढिया बना ली।

पहाडो पर राजपूतो ने किले बना लिये

इन्ही गढो के इर्द-गिर्द बस्तिया बस गईं। कालान्तर मे यह बस्तिया कस्बो और शहरो मे परिवर्तित हो गई। इस प्रकार राजस्थान भी महाराष्ट्र के समान अपने सुदृढ दुर्गों के लिए प्रसिद्ध हो गया।

इन्ही पर्वतमालाओ से अनेको नदियो का उद्गम हुआ जो राजस्थान के भूभाग को सींचती हैं। उत्तर-पश्चिमी राजस्थान की मुख्य नदी लूणी है जो पुष्कर (अजमेर)

राजस्थान की प्रमुख नदिया

से निकलती है और मारवाड में बह कर कच्छ के रण मे गिरती है। इस 320 मील लम्बी नदी की अनेक सहायक नदिया भी हैं जिनमे बाडी और सूकडी मुख्य हैं लेकिन यह सब बरसाती नदिया हैं जो गर्मी के मौसम मे सूख जाती हैं। इनका पानी भी खारा है। इसी प्रकार पूर्वी राजस्थान की मुख्य चम्बल नदी की प्रमुख सहायक नदिया काली सिंध, पार्वती और बनास इन्ही पर्वत–शृखलाओ की ही देन हैं।

राजस्थान के जिन प्रदेशो मे नदिया हैं वहा के अभाव को दूर करने के लिए कर्मठ राजाओ ने कृत्रिम झीलें बना दी थी। यह झीलें बन्ध बाधकर बनाई गईं और

झील और तालाब

इनके बाधने मे पहाडो का सर्वथा प्रयोग किया गया। इस प्रकार की तीन झीलें भूतपूर्व उदयपुर राज्य मे मेवाड के महाराणाओ के द्वारा जयसमुद्र, राजसमुद्र व पिछोला के नाम से बनाई गई। अजमेर मे भी तीन झीले आनासागर, फाईसागर व पुष्कर के नाम से हैं और मारवाड व आम्बेर की सीमा पर साभर की प्रसिद्ध झील है जिसका घेरा वर्षा–काल मे ८० मील तक हो जाता है। इन कृत्रिम झीलो के अलावा पानी की व्यवस्था लगभग प्रत्येक राज्य मे तालाब बनाकर भी की गई है।

पर्वतमालाओ के कारण राजस्थान मे खनिज पदार्थों का भी अभाव नही है।

राजस्थान के खनिज
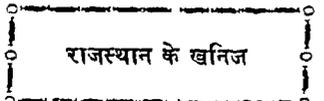
चादी, ताबा, लोहा, जस्ता, सीसा, अभ्रक और कोयले की खानें विभिन्न इलाको मे पाई जाती हैं। मुल्तानी मिट्टी, इमारती पत्थर, छत ढकने की पट्टिया तथा नमक की खानें भी यत्र-तत्र पाई जाती हैं।[1]

पहाडो के आसपास घने जगल भी पाये जाते हैं जहा जगली और पालतू पशु[2] पाये जाते हैं। इन जगलो मे विभिन्न जाति के पेड पाये जाते हैं जिनमे इमारती और

जगल

जलाने की लकडी[3] उपलब्ध हो जाती है। इसके अतिरिक्त अरावली पर्वत शृखलाओ के कारण पश्चिम का मरुस्थल पूर्व की ओर बढ नही सका जहा पर पर्वत समतल हो जाने के कारण पठार बन जाते हैं वहा की भूमि काली व

---

1 उदयपुर मे अभ्रक, चादी, लोहा, जस्ते आदि की खानें हैं। यह अलवर व जयपुर मे भी पाया जाता है। ताबा खेतडी (जयपुर) मे निकाला जाता है, सीसा अजमेर मे व कोयला पलाना (बीकानेर) मे निकाला जाता है। मुलतानी मिट्टी की खानें बाडमेर (जोधपुर) मे हैं और प्रसिद्ध इमारती पत्थर सगमरमर मकराने (जोधपुर) मे निकलता है। नमक साभर, डीडवाना, पचभदरा, लूणकरणसर व कनोड मे निकाला जाता है, इत्यादि २।

2 जगली जानवरों मे शेर, चीता, बघेरा, हिरण, साभर, रीछ, जरख, सूअर और बन्दर। पालतू पशुओ मे ऊँट, घोडा, भैस, गाय, बकरी, भेड, बैल, गदहा मिलते हैं। जोधपुर के घोडे, जैसलमेर व बीकानेर के ऊट, नागौर के बैल देश भर मे प्रसिद्ध हैं।

3 खेजडा, पीपल, वड, नीम, फोडा, करेल, आम, अनार, रोहिडा एव तेंदू के पेड बहुतायत से पाये जाते हैं।

चिकनी है इसलिए वहा गन्ना, तिल, अफीम व कपास जैसी किरानी वस्तुए सुगमता से पैदा होती हैं ।[1]

इस प्रकार अरावली पर्वत एव इससे सम्बन्धित पर्वतमालायें राजस्थान के लिए सर्वथा लाभप्रद सिद्ध हुई हैं । मध्ययुग मे जब यातायात के साधन नही थे तब इन पर्वतो को पार करना सुगम कार्य नही था । यह पर्वत राजस्थान के प्राकृतिक परकोटे का काम करते थे । यदि आज भी कोई व्यक्ति आगरा-भरतपुर से जयपुर मोटर द्वारा आता है तो उसे महुआ से लगभग ५-६ मील की दूरी पर पर्वतो की एक शृखला परकोटे के समान दिखाई देती है । इन पर्वतो की चोटियो पर थोडे २ फासले पर गढिया दिखाई देती हैं जा स्पष्टत इस देश के प्रहरियो ने सुरक्षा हेतु बनवाई होगी । इसके अतिरिक्त इन्ही पर्वतमालाओ के कारण राजस्थान के निवासी महाराष्ट्र के मराठो के सदृश कर्मठ और बहादुर बन सके । महाराष्ट्र के मराठो का इतिहास लिखने वाले आधुनिक सभी इतिहासकारो ने वहाँ की विशेष भौगोलिक स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है "पत्थारी भूभाग मे अनाज कठिनाई से पैदा होता है । पहाडी प्रदेशो मे रहने के कारण मराठे छापामार युद्ध-नीति मे पारगत बन सके इत्यादि २ ।" यदि यह कथन महाराष्ट्र के सम्बन्ध मे सत्य है तो यह भी सत्य होना चाहिये कि राजस्थान की विशेष भौगोलिक स्थिति ने इस प्रदेश को विदेशियो के द्वारा बारम्बार रौंदे जाने से ही नही बचाया बल्कि बयाना, रणथम्भोर और चित्तौड के पहाडी दुर्गों मे रहने वाले वीर राजपूत योद्धाओ को मराठो के समान कर्मठ बनाने मे इन पर्वतो से कम योग नही मिला । इन्ही पर्वतो की वजह से राजस्थान मे आकर बसने वाले राजपूतो ने इसे सुरक्षित स्थान समझकर अपने निवास स्थान के लिये चुना ।

राजपूतो ने इसे सुरक्षित स्थान समझा

इन पर्वतो मे जो खनिज पदार्थ एव विभिन्न धातुए प्राप्त हुईं उनका प्रयोग राजपूत राजाओ ने अपने लाभ के लिए किया । कर्नल टॉड के शब्दो मे "अरावली और उसकी सहायक पर्वतमालाए खनिज पदार्थो मे मालदार हैं । जैसा कि मैंने मेवाड के एनल्स मे लिखा है, इन खनिज पदार्थों के कारण ही (मेवाड का) यह राजघराना अपने से अधिक शक्तिशाली शत्रुओ का मुकाबला कर सका, अपनी सुरक्षा के लिए बडे २ भवनो का निर्माण कर सका और परिणामस्वरूप पश्चिम मे मेवाड शक्तिशाली राज्य बन गया ।"[2]

---

1 राजस्थान की मुख्य पैदावार गेहू, जौ, बाजरा, मूग, मोठ, चना, गवार, चावल, सरसो एव तम्बाकू हैं ।

2 Annals & Antiquities of Rajasthan Tod, Vol I P 10

"The Arawali and its subordinate hills are rich both in minerals and metallic products, and as stated in the Annals of

पश्चिमी राजस्थान का मरुस्थल विशेष रूप से इस देश की सभ्यता और संस्कृति की वर्षों से सुरक्षा करता रहा है। जनवरी 1544 से जिस समय सुल्तान शेरशाह मारवाड के शासक मालदेव पर आक्रमण करने आया उस समय उसने कितनी अधिक सतर्कता से काम लिया था इसका विश्वसनीय वर्णन पाठको को प्रस्तुत लेखक के अनुसधान ग्रथ "मारवाड एव मुगल सम्राट्" मे मिल जायगा।[1] उसे यहा पर दोहराने की आवश्यकता नही है। केवल इतना लिखना ही पर्याप्त है कि विजय के बाद भी **शेरशाह ने कहा "एक मुट्ठी बाजरे के लिए मैंने हिन्दुस्तान की बादशाहत खो दी होती।"**

> **शेरशाह मारवाड के पीछे हिन्दुस्तान की बादशाहत खो देता!**

वर्तमान काल मे मारवाडी व्यापारी आपको भारत के कोने-कोने मे मिल जायेंगे। इन सम्पन्निशाली सेठो की हवेलिया आज भी आपका मारवाड, बीकानेर और शेखावाटी मे मिल जायेंगी, जहा यह लोग समय समय पर आकर कुछ समय के लिए रहते हैं। पश्चिमी राजस्थान मे पानी का अभाव है, प्रत्येक मकान मे पीने के लिए कुड बनाने पडते हैं फिर भी आसाम बगाल और भारत के अन्य सर सब्ज भागो मे रहने वाले मारवाडी व्यापारी अपनी हवेलियाँ चूरू, रतनगढ, सुजानगढ, चिडावा मे क्यो बनाते हैं ? इसका एक कारण तो यह हो सकता है कि इन लोगो को अपने घर (Sweet House) से मोह हो। दूसरा कारण हो सकता है कि यहा यह लोग अपनी सम्पत्ति को मरुस्थल मे अधिक सुरक्षित समझते हैं। लेकिन सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण यह है कि राजस्थान का जलवायु, विशेपत पश्चिमी राजस्थान का खुश्क (Dry) होते हुए भी स्वास्थ्यवर्धक है। इस खुश्क जलवायु का प्रभाव यहाँ के निवासियो के शारीरिक गठन एव रहन-सहन पर पर्याप्त रूप से पडता है। इस प्रदेश के निवासी पूर्वी राजस्थान के निवासियो की अपेक्षा अधिक लम्बे एव हट्टे-कट्टे होते हैं। स्वास्थ्य लाभ की इच्छा प्रत्येक मानव का होती है, मारवाडी का स्वास्थ्य लाभ (Hill Station) की अपेक्षा मरुभूमि मे अधिक अच्छा होता है इसलिए वह सफर की सभी कठिनाइयाँ सहन करके मरुभूमि मे आकर कुछ दिन व्यतीत अवश्य करता है।

> **मारवाड के मालदार सेठों की बड़ी-बड़ी हवेलियाँ यहाँ पर क्यो हैं ?**

Mewar, to the latter above can be attributed the resources which enabled this family so long to struggle against superior powers, and to raise those magnificent structures which would do honour to the most potent kingdoms of the west"

1 Dr V S Bhargawa Marwar and Mughal Emperors and Sher Shah and Maldeo, Published in Raj University Studies (Arts 62–63)

प्रत्येक देश की भौगोलिक स्थिति वहाँ के इतिहास को अवश्य प्रभावित करती है। राजस्थान इसमे अपवाद नही है। यहाँ की विशेष भौगोलिक स्थिति ने इस प्रदेश के इतिहास को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है। दुर्गम पहाडो पर बने गढ[1] राजस्थान की आक्रमणकारियो के विरुद्ध सत्रहवी शताब्दी तक निरन्तर रूप से रक्षा करते रहे हैं। यहाँ के दुर्गम मार्ग आक्रमणकारियो को इस प्रदेश की ओर बढने मे सर्वथा हतोत्साहित करते रहे हैं। यहाँ की स्वास्थ्यवर्धक जलवायु ने राजस्थान के निवासियो को बहादुर बनाया है और इस प्रदेश मे प्राप्य खनिज पदार्थों एव वस्तुओ ने यहा के बहादुरो को आत्म-निर्भर बनाया। यह कुछ ऐसे कारण हैं जिनकी वजह से अकबर के पहले भारत की किसी भी सत्ता ने राजस्थान को स्थायी रूप से अपने अधिकार मे करने का सफल प्रयत्न नही किया। अलाउदीन खिलजी और शेरशाह सूरी ने इस दिशा मे प्रयत्न किये थे लेकिन उनकी मृत्यु के साथ उनका प्रभाव भी समाप्त हो गया। अकबर के उत्तराधिकारियो को भी राजस्थान मे लोहे के चने चबाने पडे थे जिसका वर्णन यथास्थान पाठको को आगे के पृष्ठो मे मिल जायेगा।

> भौगोलिक स्थिति का राजस्थान के इतिहास पर पर्याप्त प्रभाव पडा है।

BIBLIOGRAPHY

1 James Tod Annals and Antiquities of Rajasthan, vol I
2 Shamsul Ghani Khan Influence of Geography of India on its History
3 जगदीशसिंह गहलोत राजपूताने का इतिहास—प्रथम भाग।

---

1 बयाना, रणथम्भोर, गागरोन, चित्तौड, कुम्भलगढ, सिवाना, जालोर, नागौर, मेडता, जोधपुर, अजमेर आदि के दुर्ग इस प्रदेश की रक्षा करते रहे हैं।
(Dr V S Bhargava Forts of Rajasthan)

2

राजपूतों की उत्पत्ति

(ORIGIN OF RAJPUTS)

डा० स्मिथ का यह कथन कि "राजपूत जाति आठवी या नवी शताब्दी मे यकायक प्रकट हुई" सर्वथा सत्य नही है क्योकि सातवी शताब्दी मे भी राजस्थान मे गुहिल, चावडा व यादववशी राजपूतो के राज्य थे। लेकिन उस समय "राजपूत" शब्द का प्रयोग किसी जाति के रूप मे नही किया जाता था।[1] मुसलमानो के भारत मे आगमन से पूर्व यहाँ के राजा क्षत्रिय ही कहलाते थे।[2]

मुसलमानो के आक्रमण से पूर्व राजपूत शब्द का प्रयोग प्रचलित नहीं था।

मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् यह राजा राजपुत्र अथवा राजपूत कह कर पुकारे जाने लगे। लेकिन इसका यह तात्पर्य नही है कि राजपूत शब्द की उत्पत्ति विदेशी भाषा से है। राजपूत शब्द अरबी अथवा फारसी भाषा से उत्पन्न नही हुआ है। यह सस्कृत शब्द राजपुत्र से निकाला हो सकता है क्योकि मुसलमानो ने उस बहादुर जाति को सम्बोधित करने के लिये राजपूत शब्द का प्रयोग किया, जिसका उनके साथ सीधा और घनिष्ट सम्बन्ध हुआ था। चौदहवी शताब्दी के बाद इस शब्द का प्रयोग राजपूत जाति के रूप मे किया जाने लगा।

राजपूत शब्द सस्कृत के राजपुत्र शब्द से निकला है।

कुछ स्वदेशी एव विदेशी विद्वानो का यह कथन भी भ्रान्तिपूर्ण है कि राजपूत

---

1 Buddhist Recerds of the Western World, vol II, P 256 के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि सातवी शताब्दी के अन्त तक राजपूत शब्द के रूप मे नही होता था। जैन ग्रन्थो मे भी राजपूत शब्द नही पाया जाता। पृथ्वीराज रासो मे भी राजपूत शब्द जातिवाचक नही, किन्तु योद्धा के रूप मे प्रयुक्त किया गया है।

"राजपूत टूट पचासन जीत समर सेना धनिय"

"लग्यो सुजाय रजपूत सीस"

'बुड गई सारी रजपूती"

नैणसी ने भी अपनी ख्यात मे राजपूत शब्द का प्रयोग एक से अधिक अर्थ में किया है।

2 राजपूताने का इतिहास—गहलोत, भाग I पृ० 8
Dr Qanungo Studies in Rajput History, Page 96
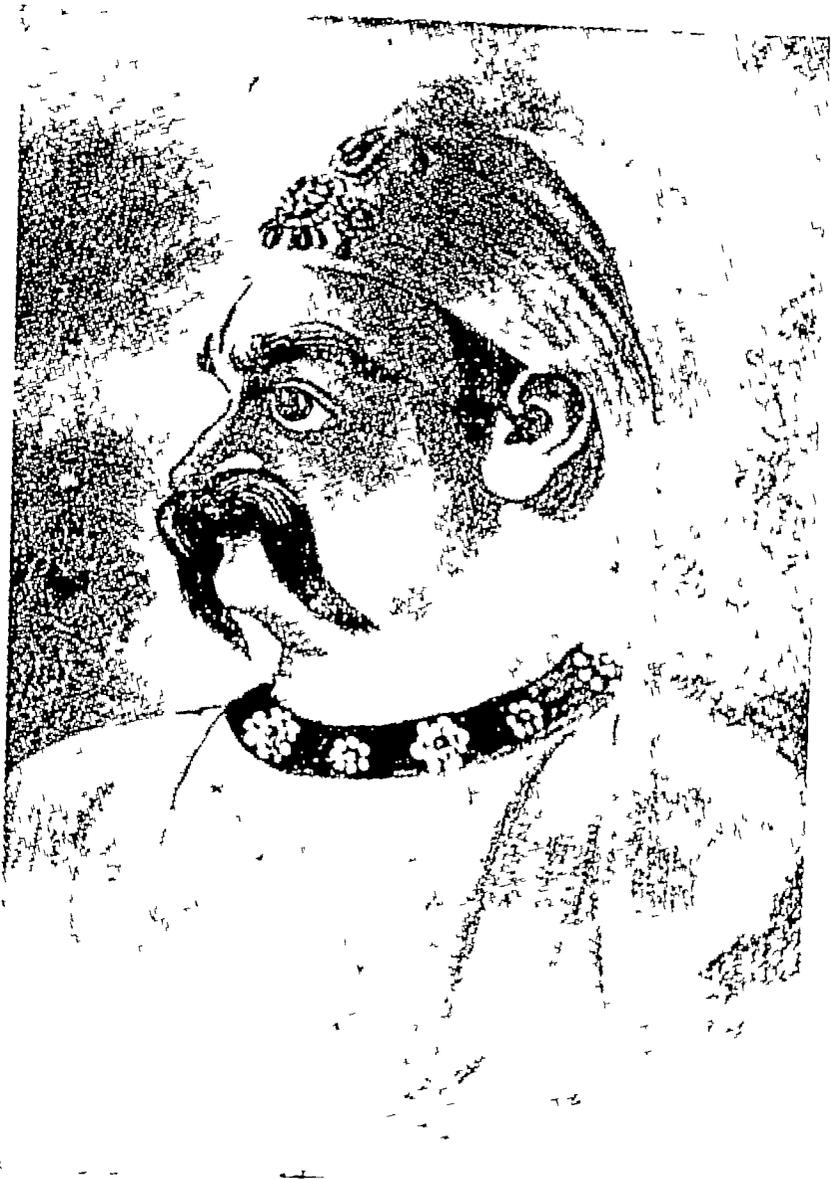
भरतपुर के ठाकुर चूरामन जाट

पृथ्वीराज चौहान
1800 ई० के लगभग बने चित्र का फोटोग्राफ
(कुमार संग्रामसिंह जी नवलगढ़ के संग्रह से)

Gora Badal Palace, Chittorgarh.

शक अथवा सिथियन जाति के वशधर हैं।[1] सूर्य की पूजा केवल शक और सिथियन जाति के लोग ही नही बल्कि वैदिक काल के आर्य भी करते थे। सती होने का रिवाज शको के भारत मे आने से पहले भी था। अश्वमेघ यज्ञ केवल विदेशियो की ही देन नही है, यह वैदिक काल मे भी होता था।[2] शस्त्रो एव घोडो की पूजा वैदिककालीन क्षत्रिय भी करते थे, अत कर्नल टॉड का राजपूतो को विदेशी सन्तान कह कर पुकारना सत्य नही है। इसके विपरीत राजपूतो और वैदिक-कालीन क्षत्रियो मे रीति-रस्म की समानता यह सिद्ध करती है कि राजपूत प्राचीन आर्य क्षत्रियो की सन्तान हैं।[3] आधुनिक राजपूतो की प्रथायें, आचार, आदतें जाति, शास्त्रीय-स्वरूप (एथनोलोर्ज) यह बतलाती है कि वे प्रारूमिकतया आर्य हैं इसलिये विदेशी जातियो के वशज नही हो सकते। बीकानेर, उदयपुर, जयपुर और जैसलमेर के वर्तमान राज-परिवार अपना सम्बन्ध वैदिककालीन सूर्यवशी और चन्द्रवशी क्षत्रियो से मानते चले आये हैं। यद्यपि सूर्य-वश और चन्द्र वश से उत्पन्न होने की अनुश्रुति को महत्व देना युक्तिसगत प्रतीत नही होता, लेकिन यह भी सम्भव नही है कि शताब्दियो से मानी जाने वाली परम्परा को सिर्फ इसलिये गलत मान लिया जाय कि कतिपय राजपूत परिवारो का रहन–सहन शक और सिथियन जाति के लोगो क समान है।

> राजपूत विदेशियो की सन्तान नहीं हैं।

राजस्थान के भाटो ने अपनी गाथाओ मे क्षत्रियो की उत्पत्ति का जो वर्णन किया है उससे भी यही सिद्ध होता है कि वर्तमान राजपूत परिवारो का सीधा सम्बन्ध वैदिककालीन क्षत्रिय–राज–परिवारो से था। चन्द्र वरदाई ने अपने सुप्रसिद्ध काव्य "पृथ्वीराज रासो" मे क्षत्रियो की उत्पत्ति अग्नि कुल से बतलाई है। उसने लिखा है "जय विश्वामित्र, गौतम, अगस्त तथा अन्य ऋषि आबू पर्वत पर धार्मिक अनुष्ठान कर रहे थे उस समय दैत्यो ने गोश्त, खून, हड्डियां तथा पेशाब डालकर उनके यज्ञ को अपवित्र कर दिया। उस समय वशिष्ट ने यज्ञ कुण्ड की रक्षार्थ उसी कुण्ड से तीन योद्धा उत्पन्न किये (प्रतिहार, चालुक्य और परमार) लेकिन जब यह तीनो रक्षा करने मे असमर्थ सिद्ध हुये तो चौथा योद्धा उत्पन्न किया जो हट्टा-कट्टा और हथियार

> चन्द्र वरदाई ने राजपूतो की उत्पत्ति अग्नि कुण्ड से बतलाई है।

---

1 Tod Annals & Antiquities of Rajasthan vol I P 29

2 महाभारत मे स्पष्ट लिखा है कि पाण्डु की दूसरी रानी माद्री सती हुई थी—युधिष्टिर ने अश्वमेघ यज्ञ किया था। देखिये महाभारत—

अश्व श्लोक अध्याय 17

3 सी० वी० वैद्य तथा गौरीशकर हीराचन्द ओझा इस मत के समर्थक हैं।

हाथ में लिये प्रकटा था। इसका नाम ऋषियो ने चौहान रखा। इस योद्धा ने आशापुरी को अपनी देवी मानकर दैत्यो को मार भगाया।"[1] परवर्ती चारण और भाटो[2] ने क्षत्रियो की इस उत्पत्ति को सत्य मानकर अपने ग्रथो मे कुछ अन्तर के साथ दोहराया है।

इतिहास का कोई भी विद्यार्थी आधुनिक काल मे यह मानने को एकाएक तैयार नही होगा कि अग्नि से भी मनुष्य रूपी योद्धा उत्पन्न हो सकते हैं, लेकिन इसे वह लोग आश्चर्य नही मान सकते जो क्षत्रियो की उत्पत्ति चन्द्र अथवा सूर्य से मानते हैं।[3] रामायण को पढने से प्रकट होता है कि जब महर्षि वशिष्ट की कामधेनु गाय को विश्वामित्र ने छीन लिया था तो वशिष्ट न परमार नामक योद्धा को उत्पन्न करने तथा उसे वापस लाने का आदेश दिया। चारण और भाटो ने अपने आश्रयदाताओ को उच्च कुल का सिद्ध करने के उद्देश्य से उनकी उत्पत्ति दैविक बतलाने का जो प्रयास किया था उसमे ऐतिहासिक सत्य हो लेकिन इन किवदतियो को राजपूत लोग शताब्दियो से सत्य मानते चले आये हैं।

राजपूतो की उत्पत्ति दैविक भी बतलाई गई है।

क्षत्रियो की उत्पति के सम्बन्ध मे जो किवदतियाँ प्रचलित हैं वह स्वय एक दूसरे को विरोधी हैं तथा इन किवदतियो की पुष्टि मे जो प्रमाण दिये गये वे ना तो स्पष्ट है और न उन्हे एकाएक ऐतिहासिक ही माना जा सकता है। उदाहरण केलिए रतनपाल की सेवाडी प्लेट मे क्षत्रियो की उत्पत्ति को पढने से यही प्रकट नहीं होता कि "प्राचीधिपति" शब्द का प्रयोग इन्द्र के पर्यायवाची शब्द के रूप मे किया गया है।

अग्निकुड से उत्पत्ति के सिद्धांत की जाच

क्षत्रियो की चन्द्र से उत्पत्ति विक्रमी स० 1377 से पहले कही-कही बतलाई गई। इसी प्रकार से सूर्य से उत्पत्ति का सिद्धात भी बारहवी शताव्दी के मध्य से अधिक पुराना नही है। अतएव इन तीनो ही किवदतियो को यदि सम्मिलित रूप से भी क्षत्रियो की उत्पत्ति का आधार मान लिया जाय तो भी यह कहना सम्भव नही होगा कि चौहानो अथवा अन्य दूसरी शाखाओ का वैदिककालीन क्षत्रियो से सीधा सम्बन्ध था।

1 पृथ्वीराज रासो, भाग प्रथम, पृ० 45–57

2 देखिये नैणसी, जोधाराज का 'हम्मीर रासो,' सूर्यमल्ल का 'वश भास्कर' तथा 'मैनपुरी के चौहानो के इतिहास'।

3 पृथ्वीराज विजय, चौहान प्रशस्ति, पृथ्वीराज तृतीय का बेदला शिलालेख एव हम्मीर महाकाव्य मे चौहान क्षत्रियो को सूर्य से तथा चौहानो के गोत्राचार मे उनकी उत्पत्ति चन्द्र से बतलाई है।

क्षत्रियो की अग्नि से उत्पत्ति के सम्बन्ध मे विचार व्यक्त करते हुए विलियम क्रुक नामक एक विदेशी विद्वान ने लिखा है—"अग्नि कुल से तात्पर्य अग्नि के द्वारा शुद्धि मे है कि जो दक्षिणी राजस्थान मे सम्पन्न किया गया था। इन हवन कुण्ड के द्वारा क्षत्रियो को शुद्ध किया गया ताकि वे पुन हिन्दू जाति व्यवस्था मे प्रविष्ट हो सके।"[1]

डा० दशरथ शर्मा का विचार है कि क्षत्रियो की अग्निकुण्ड से उत्पत्ति का सिद्धात पन्द्रहवी शताब्दी से अधिक पुराना नही है और इसे पुरातन सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। ऐसे लोगो ने अग्निकुण्ड से उत्पन्न हुई जातियो के प्राचीन सिक्को की सूचना को ही नजर-अन्दाज किया है। इन राजपूतो को मडोर के तथाकथित प्रतिहार ब्राह्मणो का वशज बतलाया गया है। प्रतिहारो का पूर्वज ब्राह्मण हरिश्चन्द्र तथा उसकी क्षत्रिय पत्नि मादरा की सन्तान था। इसी प्रकार परमार आबू प्रदेश मे रहने वाले वशिष्ट नामक ब्राह्मण के वशज हैं और चौहान भी वत्स गोत्र के ब्राह्मणो की सन्तान है। स्वर्गीय डा० डी० आर० भण्डारकर प्रथम विद्वान थे जिन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि चौहानो की उत्पत्ति विदेशी जातियो के किसी विदेशी पुरोहित से हुई है। लेकिन उनके इस कथन मे केवल आशिक सत्य ही है। ऐसा भी होता था कि राजपूत लोग अपने पुरोहित के गोत्र को अपना लेते थे। अत केवल गोत्राचार के आधार पर चौहानो की ब्राह्मणो से उत्पत्ति बताना पूर्ण ऐतिहासिक सत्य नही है।

अत यही निष्कर्ष निकलता है कि अग्निवशीय क्षत्रियो की गाथा पृथ्वीराज रासो के लेखक के दिमाग की उपज है, अग्निवश कोई स्वतन्त्र वश नही था।
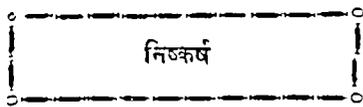
निष्कर्ष

"राजपूतो की किसी भी रूप मे उत्पत्ति हुई हो हो,लेकिन यह सत्य है[2] कि ऐतिहासिक युग मे इन लोगो ने महाकाव्य काल के क्षत्रियो

---

1 The Agnikuls represents a rite of pungation by fire, the Scence of which was the southern Rajputana whereby the impurity of the foreignere was removed and became fitted to enter the Hindu Caste System

2 Whatever might have been their origin, the Rajputs only have in historical times maintained the social and political tradition of the Khatriyas of the age of the Epics Divine varriors might not spring up from the sacrificial fire pit on the Mount Abu or the Bank of the Pushkar lake, Solar and Lunar origin might be a fiction, individuality and a vital face in moulding the Indian society which has been in the melting pot more than once since the time of Epics down our own times for periodical re-adjustment" (Dr K R Qanungo Studies in Rajput History)

की सामाजिक एव आर्थिक परम्पराओ को बनाए रखा। आबू के अग्निकुण्ड अथवा पुष्कर से दैविक योद्धा उत्पन्न होना सम्भव नही, उनकी सूर्य अथवा चन्द्र से उत्पत्ति एक काल्पनिक सत्य हो सकता है लेकिन उनका व्यक्तित्व अस्त व्यस्त भारतीय समाज को सुरक्षित रखने मे सफल सिद्ध अवश्य हुआ।"

BIBLIOGRAPHY

1 टॉड एनाल्स एड एन्टीक्वटीज आफ राजस्थान, भाग प्रथम
2 जगदीशसिंह गहलोत राजपूताने का इतिहास, भाग प्रथम
3 Dr. DASHARATH SHARMA Early Chauhan Dynasties.
4. Dr K R QANUNGO Studies in Rajput History.
5. Dr C V VAIDYA History of Early Mediaeval India

3

राजस्थान का इतिहास जानने के साधन

(Sources of Rajasthan History)

यदि इतिहास वास्तव मे सत्य का प्रकाश और जीवन का शिक्षक है तो किसी भी देश और जाति का सच्चा इतिहास लिखने मे बडी कठिनाइयो का सामना करना पडता है। सामग्री का सग्रह करना एक बहुत बडी समस्या होती है क्योकि वह कई जगह बिखरी हुई मिलती है। उसकी खोज करना एव एकत्रित करना परिश्रम एव लग्न का कार्य है जो साधारण व्यक्ति नही कर सकता।

राजस्थान का इतिहास लिखने वाले विद्वानो को इन कठिनाइयो का सामना करना पडा है। परम्परा से चली आने वाली दन्त कथाओ ने ऐसा घर कर लिया है कि इन लम्बी–चौडी दन्त-कथाओ मे सार निकालना आवश्यक होते हुये भी असम्भव बन गया है। इसके अतिरिक्त राजस्थान के इतिहास मे राजाओ के व्यक्तिगत जीवन एव उनके सुयश के अतिरिक्त सामाजिक और धार्मिक वृत्तान्त के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त नही होती। लेकिन सबसे बडी समस्या तो यह है कि जिन लोगो के पास पुराने रिकार्ड पडे सड रहे हैं वे लोग न उनका उपयोग करते हैं (चूकि वे उसके बारे मे जानते ही नही हैं) और न उसे दूसरो को दिखाना ही पसन्द करते हैं। **इतिहास की बहुत सी सामग्री तो आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट की जा चुकी** लेकिन जो कुछ बची हुई सामग्री शेष है उसकी उपलब्धि इतनी कठिन है कि बहुत से अनुसन्धान-छात्रो को तो बीच ही मे अपना अनुसधान कार्य समाप्त करना पडता है।

> राजस्थान के इतिहास के लिए सामग्री एकत्रित करना कठिन कार्य है।

मुसलमानो के आक्रमण से पूर्व के राजस्थान का इतिहास निम्नलिखित आधारो पर लिखा जा सकता है —

(a) शिलालेख (b) सिक्के (c) स्मारक (d) ऐतिहासिक महाकाव्य (e) रासो (f) हिन्दी और राजस्थानी साहित्य (g) जैन पट्टावली तथा (h) मुस्लिम तवारीखें।

अधिकाश शिलालेख समय-समय पर विद्वानो के द्वारा सगृहीत करके छापे जा चुके हैं। यह शिलालेख निम्नलिखित ग्रन्थो मे मिल सकते हैं —

1 Inscription of Northern India by Dr D R Bhandaker

2 Jain Inscriptions by P C Nahar

3 Prachina Jain Lekh Sangraha by Muni Jinavijayaji
4 Archaeological Survey Reports of India
5 Epigraphia Indica
6 Indian Antiquary
7 Bhavnagar Inscriptions
8 Corpur Inscriptions

कतिपय शिलालेख ऐसे भी हैं जो महत्वपूर्ण और विवादास्पद विषयो पर भी प्रकाश डालते हैं, उदाहरण के लिए विजोलिया से प्राप्त शिलालेख । इस शिलालेख को चौहानो की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे कइ प्रसिद्ध इतिहासकार प्रयोग मे ले चुके हैं । 'वीर विनोद' के लेखक कविराज श्यामलदास ने इसी शिलालेख के अनुसार (विप्र श्रीवत्सगोत्रे भूत्), जिसे डा० भण्डारकर ने सही रूप मे पढा (विप्र श्री वत्सगोत्रे भत्), चौहानो की उत्पत्ति ब्राह्मणो से मानी है । इसी शिलालेख का स्वर्गीय गौरीशकर हीराचन्द्र ओझा तथा डा० दशरथ शर्मा ने चौहानो की ब्राह्मणो से उत्पत्ति बताने मे प्रयोग किया है । इसी प्रकार सूधा शिलालेख जालौर के चौहानो की, और अचलेश्वर शिलालेख चन्द्रावती के चौहानो की ब्राह्मणो से उत्पत्ति बताते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि तिथियो के अतिरिक्त शिलालेख ऐसी भी सूचना देते हैं जो अन्य क्षेत्रो मे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सूचना देने मे सहायक सिद्ध हुये हैं ।

प्राचीन शिलालेखो के आधार पर राज्य का इतिहास लिखा गया है ।

शिलालेख अत्यन्त विश्वसनीय साधन माने जाते हैं लेकिन सिक्को का भी महत्व कुछ कम नही है । सिक्को की सहायता से भी तिथियां सही की जाती हैं । राजस्थान मे दो स्थानो से प्राचीन सिक्के काफी अधिक सख्या मे उपलब्ध हुए हैं । बासवाडा मे स्थित सरवानिया नामक ग्राम से क्षत्रियो के सिक्के प्राप्त हुये और बयाना से गुप्त शासको के सिक्के प्राप्त हुए । जिस प्रकार विद्वानो ने प्राप्य शिलालेखो का सगृहीत करके छपवा दिया उसी प्रकार सिक्को के सम्बन्ध मे भी आवश्यक सूचना पुस्तको मे छपवाई जा चुकी है ।

सिक्कों से इतिहास ज्ञात होता है ।

(a) E Thomas के द्वारा लिखित The Chronicles of the Pathan Kings of Delhi मे, जो 1871 मे प्रकाशित हुई थी, चौहान शासको के सिक्को का जिक्र है ।

(b) Cunnigham की Coins of Mediaval India मे भी चौहान शासको के सिक्को का हवाला है । यह पुस्तक 1894 मे प्रकाशित हुई थी ।

(c) E J Rapson ने 1897 मे Indian Coins नामक पुस्तक प्रकाशित कराई थी।

(d) Dr A V Smith की Catalogue of the Coins in the Indian Museum, Calcutta मे भी प्राचीन सिक्को का जिक्र है। यह पुस्तक 1906 मे प्रकाशित हुई थी।

(e) W W Webb की The Currencies of the Hindu States of Rajputana

भारत मे मुसलमानो के आने से पहले चौहान प्रमुत्व मे थे। उनके समय के बनाये हुये स्मारको का वर्णन हमे Archealogical Survey Reports, Percy Brown के Architecture और James Tod की Annals & Antiquities of Rajasthan मे मिल सकता है।

यद्यपि प्राचीन भारत मे आधुनिक दृष्टिकोण को लेकर इतिहास नही लिखा जाता था लेकिन फिर भी जो ऐतिहासिक महाकाव्य प्राप्त हुये हैं, उसके आधार पर विद्वान प्राचीन काल का इतिहास लिख पाये हैं। जयरथ नाम के एक काशमीरी ने 1200 ई० के लगभग पृथ्वीराज (तृतीय) विजय नामक महाकाव्य लिखा। इसको पढने से जाहिर होता है कि पृथ्वीराज तृतीय मलेच्छो (मुसलमानो) को नष्ट करना चाहता था। सपाल दक्ष के चौहान शासको के इतिहास जानने मे इस महाकाव्य से पर्याप्त सहायता मिली है। इस प्रकार न्यायचद सूरी के हम्मीर महाकाव्य के आधार पर रणथम्भोर के चौहानो का इतिहास लिखने मे सहायता मिली है। यह महाकाव्य हम्मीर की मृत्यु के लगभग 100 वर्ष बाद लिखा गया था। इसी तरह अकबर महान् के शासन काल मे चन्द्रशेखर रचित सुरजनचरित्र महाकाव्य से रणथम्भोर के राव सुरजन के बारे मे काफी सूचना प्राप्त होती है। पद्मनाभ का कान्हडदे प्रबन्ध विक्रम स० 1512 के लगभग लिखा गया था। इसमे अलाउद्दीन खिलजी की जालोर के समकालीन चौहान शासक कान्हडदे पर विजय वर्णन है। यह ग्रन्थ अब राजस्थान पुरातत्व मदिर, जोधपुर के द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है।

> ऐतिहासिक महाकाव्य भी इतिहास के साधन हैं।

उपरोक्त ऐतिहासिक महाकाव्य चोहान शासको के सरक्षण मे उनकी कीर्ति का बखान करने के उद्देश्य से लिखे गये थे। इनमे केवल चौहानो की कीर्ति ही पढने को मिलेगी। इनके अतिरिक्त कतिपय "रासो" भी उपलब्ध हैं जिनको पढकर प्राचीन राजपूत राजाओ का इतिहास जाना जा सकता है। स्वर्गीय डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा को 'वीसलदेवरासो' की प्रति मिली थी। उन्होने उसका रचना काल 1215 ई० के लगभग निश्चित किया। डा०दशरथ इस निष्कर्ष पर पहुचे कि इस रासो मे जिन घटनाओ का वर्णन किया गया है वे अधिकाश कल्पित हैं और उनके आधार पर Sober History नही लिखी जा सकती। 'राजस्थान भारती' नामक पत्रिका के तृतीय अङ्क मे इस रासो के सम्बन्ध मे एक लेख प्रकाशित किया गया था। उसको पढने से प्रकट

होता है कि वीसलदेव रासो की सबसे प्राचीन प्रतिलिपि वि०स० 1633 की प्राप्त हुई है अतएव इसे तेरहवी शताब्दी का ग्रन्थ नही माना जा सकता है।

पृथ्वीराज रासो सुविख्यात रासो है। इस रासो की चार प्रतियाँ मिलती हैं। सबसे बडी प्रति मे 40,000 श्लोक हैं जिसे नागरी-प्रचारिणी सभा, बनारस ने प्रकाशित भी कर दिया है। अधिकाश विद्वानो ने इतिहास लिखते समय इसी प्रकाशित प्रति का प्रयोग किया है। इसी वजह से कई ऐतिहासिक घटनाओ का भ्रान्तिपूर्ण प्रचार हो गया। दूसरी प्रति मे 10,000 श्लोक हैं, जिसे राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर ने प्रकाशित किया है। तीसरी प्रति मे केवल 4,000 श्लोक हैं और चौथी प्रति मे केवल 1500 श्लोक है जिसके कुछ भाग को प्रोफेसर नरोत्तमदासजी स्वामी ने राजस्थान-भारती के लिए सम्पादित भी किया है। डा० माताप्रसाद गुप्त का लेख "पृथ्वीराज रासो के तीन पाठो का आकार सम्बन्ध" (अनुशीलन, वर्ष 7 अङ्क 4 मे प्रकाशित) स्पष्ट कहता है कि यह सोचना सवथा सत्य नही है कि पृथ्वीराज रासो की जिस प्रति मे केवल 1500 श्लोक मिले हैं वह प्रति 40,000 श्लोको वाले रासो की सूक्ष्म प्रति है। अब यह भी निश्चित हो चुका है कि रासो की मूल भाषा अपभ्रंश थी, क्योकि यह लोकप्रिय ग्रन्थ था और जन साधारण की जुबान पर था इसलिए इसकी भाषा और रूप मे समय के साथ-साथ परिवर्तन आ गये। इस ग्रन्थ का ऐतिहासिकाल निर्धारण के उद्देश्य मे डॉ० दशरथ शर्मा ने लगभग एक दर्जन लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे लिखे हैं। डा० शर्मा ने पृथ्वीराज रासो मे वर्णित सयोगिता की रोमाचकारी कहानी को सत्य माना है। अत उनका ख्याल है कि इस रासो मे वर्णित अन्य घटनाए भी सत्य हो सकती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पृथ्वीराज रासो उन लोकप्रिय ग्रथो मे से एक है जो कथाओ का जन्मदाता होने के साथ-साथ ऐतिहासिक सूचना भी देता है।

पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता

हिन्दी और राजस्थानी साहित्य मे अब तक चार ग्रथ उपलब्ध हो गये हैं। प्रथम ग्रन्थ हम्मीरदेव चौपाई है जिसे 1781 ई० के लगभग Bhandan Vyjaya ने लिखा था। दूसरा ग्रन्थ हम्मीर रासो है जिसे जोधराज ने वि० म० 1885 के आस-पास लिखा था। तीसरा ग्रन्थ हम्मीरहठ है जिसे चन्द्रशेखर ने वि०म० 1902 मे लिखा और चौथा ग्रन्थ राजरूप द्वारा 1798 विक्रमी मे लिखित 'हम्मीर रा छन्दा' है। इन सब ग्रथो मे रणथम्भोर के हम्मीर की यश-कीर्ति का वर्णन मिलता है अतएव इनका ऐतिहासिक महत्व सीमित है।

जैन पट्टावलियो मे भी राजस्थान के भूतपूर्व राजपूत राजाओ का ऐतिहासिक विवरण पढने को मिलता है। इनमे से कतिपय पट्टावलियो को प्रकाशित भी किया जा चुका है।
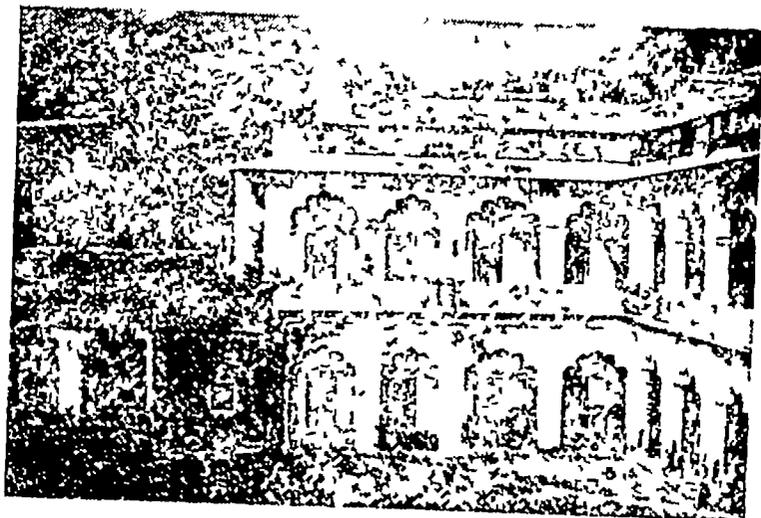
Old Palaces at Mandor
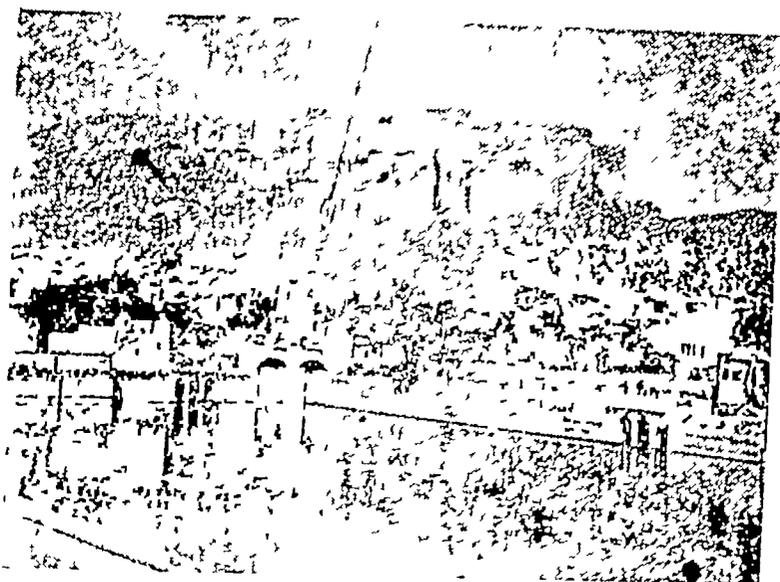
The Fort from Gulab Sagar tank, Jodhpur
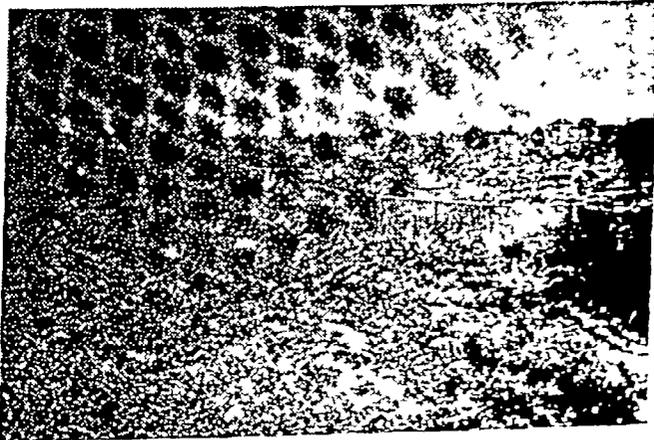
Fort of Ranthambhor

चौहानो को पराजित करके मुसलमानो ने अपना राज्य उत्तर-भारत मे कायम किया। मुसलमानो का ऐतिहासिक वरणन उनकी तवारीखो पे किया गया है।

फारसी की तवारीखें

ऐसी तवारीखो मे से हसन निजामी द्वारा लिखित ताजुल-मासीर एक महत्वपूर्ण ग्रथ है जो समकालीन लेखक के द्वारा लिखा गया है। अजमेर और दिल्ली के शासक पृथ्वीराज तृतीय के अन्तिम दिनो का ऐतिहासिक वरणन इस ग्रथ मे पर्याप्त मात्रा म मिलता है।

इसी प्रकार मुहम्मद ऊफी की जमीउल हकीकत' मे तराइन के सग्राम का ऐतिहासिक वरणन मिलता है यह ग्रन्थ 1211 ई० के लगभग सकलित किया गया था।

मिनहाज सिराज की 'तवकाते नासिरी' भी उन महत्वपूर्ण ग्रन्थो मे से एक है जो समकालीन होने के नाते ग्यारहवी तथा बारहवी शताब्दी के ऐतिहासिक विवरण का आधार माना गया है।

'तारीखे मुबारक' शाही पन्द्रहवी शताब्दी में लिखी गई थी लकिन इस ग्रन्थ में मुहम्मद गौरी और कुतुबुद्दीन की विजयो का विश्वसनीय वर्णन पढने को मिलता है।

अनुसधान करने वाले छात्र को इन सभी साधनो का प्रयोग करना पडता है। पृथ्वीराज तृतीय की तराइन के युद्ध मे पराजय के पश्चात् भारत मे मुस्लिम राज्य स्थापित हो गया। चौदहवी शताब्दी के प्रथम चरण मे मुसलमानो ने उत्तर और दक्षिण भारत को अपने अधिकार मे कर लिया था। चूंकि राजस्थान दिल्ली से अधिक दूर नही है और इसकी भौगोलिक स्थिति भी ऐसी है जो दिल्ली, गुजरात, मालवा व दक्षिण के बीच मे स्थित होने के कारण आकाक्षावादी सुल्तानो को आख का कॉटा बन गया, अतएव राजस्थान का मुस्लिम राज्य के साथ सीधा सम्बन्ध रहा। अतएव मुस्लिम तवारीखो मे राजस्थान का प्रसग वश वर्णन मिलता है। इनके अलावा राजपूत राजाओ के आश्रय में रहने वाल चारणो और भाटो की कृतियो का केंद्रस्थल राजस्थान ही रहा है। अत जैन ग्रन्थो–प्रशास्तियो तथा गुटको मे भी राजस्थान का इतिहास छिपा पडा है। सस्कृत भाषा मे भी कई ग्रथ लिखे गये हैं। मुस्लिमकालीन राजस्थान का इतिहास शिलालेखो और स्मारको द्वारा भी जाना जा सकता है। कहने का तात्पय यह है कि बारहवी शताब्दी से अठारहवी शताब्दी के बीच के काल का राजस्थान इतिहास 1 फारसी तवारीखो, 2 राजस्थानी साहित्य एव ख्यातो, 3 सस्कृत ग्रथो 4 जैन भण्डारो मे सगृहीत ग्रन्थो और 5 शिलालेखो तथा स्मारको के आधार पर लिखा जा सकता है।

अध्ययन की सुविधा के दृष्टि से भारत मे मुस्लिम शासन काल का दो भागो मे बाटा जा सकता है—सल्तनत युग 1206 से 1526 और मुगल साम्राज्य का काल

1526 से 1857 तक। सल्तनत युग मे सपालदक्ष, रणथम्भोर और जालोर के

सल्तनत काल मे लिखी गई तवारीखें

चौहानो के अतिरिक्त मेवाड व मारवाड के राज्य भी थे। इन राज्यो का फारसी तवारीख मे वर्णन मिलता है। **मिनहाज सिराज कृत तबकाते नासिरी** मे दिल्ली के तथाकथित दास सुल्तानो का 126 ई० तक का वर्णन है। जमीउल हकीकत में भी मुहम्मद गोरी, कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश तथा बलबन के शासनकाल मे राजस्थान के अभियानो का वर्णन है। यह सब ग्रन्थ फारसी भाषा मे हैं। इसलिए डाउसन ने इनके कुछ अशो को अंग्रेजी भाषा मे अनुदित कर दिया था। हाल ही मे जम्मू और काश्मीर विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अध्यक्ष डा० अहतर अब्बास रिजवी ने इन ग्रन्थो को 'आदि तुर्ककालीन भारत' नामक ग्रन्थ मे भी अनुवादित किया है। दास सुल्तानो के तो राजस्थान के साथ अधिक सम्बन्ध नही रहे थे, लेकिन जलालउद्दीन खिलजी और उसके उत्तराधिकारी अलाउदीन खिलजी ने राजस्थान मे कई अभियान किये जिनमे रणथम्भोर, चित्तौड और जालोर के अभियान अधिक महत्वपूर्ण एव प्रसिद्ध हैं। अलाउद्दीन खिलजी के दरबारी कवि **अमीर खुसरो** ने उसकी विजयो का आखो देखा हाल **खजाइनुल कूतुह** नामक ग्रन्थ मे लिखा है। इस ग्रन्थ का अलीगढ विश्वविद्यालय के Professor Emritus श्री मुहम्मद हबीब ने अंग्रेजी भाषा मे भी अनुवाद कर दिया है। **जियाउद्दीन बरनी** भी समकालीन लेखक हैं जिनके द्वारा रचित **'तारीखे फीरोजशाही'** मे खिलजी और तुगलक सुल्तानो का वर्णन है। हाल ही मे पाकिस्तान हिस्टोरिकल सोसायटी के द्वारा बरनी का ग्रन्थ सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित किया गया है। बरनी ने इस ग्रन्थ का प्रारम्भ वहा से किया है जहा मिनहाज सिराज ने अपनी तबकाते नासिरी को समाप्त किया। इसी प्रकार **शम्से सिराज अफीक** ने बरनी का अनुकरण करके तारीखे **फिरोजशाही** लिखी, जिसमे 1388 ई० तक की घटनाओ का वर्णन है। अफीक ने की खिलजी एव तुगलक सुल्तानो के शासनकाल मे घटित घटनाओ का वर्णन करते हुए प्रसगवश राजस्थान के राज्यो का भी वर्णन किया है। लेकिन इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ तारीखे मुबारकशाही है जिसका अग्रेजी भाषा मे अनुवाद हो चुका है। उपरोक्त सभी ग्रन्थो के कुछ भागो का इलियट और डाउसन ने अंग्रेजी भाषा मे अनुदित कर दिया है और डा० रिजवी ने खिलजी कालीन भारत' तुगलक कालीन भारत भाग 1, व 2, तैमूर कालीन भारत तथा उत्तर तैमूर कालीन भारत मे इनका हिंदी मे अनुवाद किया है।

मुगल काल मे यद्यपि राजस्थान की गतिविधि शिथिल हो गई थी लेकिन खानुआ के युद्ध क्षेत्र मे राणा सागा की पराजय के बाद राजस्थान निरन्तर रूप से

मुगल-काल मे लिखे हुए ग्रंथ

दिल्ली के मुगल शासको के सम्पर्क मे प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूप मे रहा। मुगल साम्राज्य के सस्थापक बाबर ने अपनी आत्म कथा मे मेवाड के राणा सागा के साथ अपने सम्बन्धो का विस्तार से वर्णन किया

है । बाबर के उत्तराधिकारी हुमायूँ की बहिन **गुलबदन बेगम** ने अपने ग्रन्थ **हुमायू-नामा** तथा हुमायू के सेवक **जौहर आफताबची** ने अपने ग्रन्थ **तजकिरात उल-वाकेयात** मे मारवाड के मालदेव तथा जैसलमेर के भाटी भाल्देव का वर्णन किया है । शेरशाह को केवल सुमेल का युद्ध ही नही लडना पडा बल्कि उसने मेवाड मे जहाजपुर तक पहुच कर चित्तौड पर आक्रमण करने की भी योजना बनाई थी । अत शेरशाह के समकालीन इतिहासकार **अब्बास सखानी** ने अपने ग्रन्थ **तारीखे शेरशाही** मे शेरशाह के राजस्थान अभियान का विस्तार से वर्णन किया है । इसके अतिरिक्त **अब्दुल्ला** ने **तारीखें दाऊदी** मे, नियामतुल्ला ने **मखजाने अफगाना** मे, तथा रिजकुल्ला मुश्ताकी ने **वाकेयात–मुश्ताकी** मे राजस्थान का वर्णन प्रसगवश किया है ।

अकबर के सिहासन रूढ होने के पश्चात् राजस्थान का मुगल राजघरानो से निकट सम्बन्ध हो गया । कतिपय राजपूत राजाओ ने अपनी पुत्रिया देकर सम्बन्ध घनिष्ठ किये । उन राजाओ को ऊँचे ऊचे मन्सब व वतन–जागीरें प्रदान की गई । अतएव शाहीसेना मे सहायक सेनापति (Auxiliary Commander) बनाकर जयपुर जोधपुर व बीकानेर के नरेश भारत के कई भागो मे भेजेगये। अकबरके समकालीनफारसी के इतिहासकारो ने इसका अपनी तवारीखो मे यथास्थल वर्णन किया है । **अबुल फजल** के **अकबर नामा**, **अब्दुल कादिर बदायूनी** का **मुन्तख्वाव तवारीख**, **मुहम्मद हिन्दू कासिम बेग फरिश्ता** की **तारीखे फरिश्ता**, **आरिफ कन्धारी** की **तारीखे मुहम्मद आरिफ कन्धारी** में राजस्थान की विभिन्न घटनाओ के सम्बन्ध मे वर्णन उपलब्ध है ।

अकबर महान के शासन काल के लिखे गए फारसी भाषा के ग्रथ

अकबर का पुत्र और उत्तराधिकारी **जहाँगीर** स्वय आम्बेर की राजकुमारी हरखा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । उसका प्रथम विवाह भी आम्बेर के शासक भगवत्तादास की पुत्री भानमती से हुआ था । दूसरा विवाह जोधपुर के शासक मोटा राजा उदयसिह की पुत्री मानीबाई (जोधाबाई) से हुआ । अत जहागीर ने अपनी आत्म-कथा (तुजुक-ए-जहाँगीरी) मे इन राजाओ का वर्णन किया है । **मोतामिद खाँ** की **इकबाल नामा ए-जहागीरी** तथा **कामगार हुसेन** की मासिर–ए–जहागीरी मे भी पर्याप्त वर्णन है ।

जहाँगीर के प्रथम दो पुत्र क्रमश खुसरो और खुर्रम जयपुर और जोधपुर की राजकुमारियों के गर्भ से हुए थे । अतएव उनके पुत्र और उत्तराधिकारी शाहजहाँ के शासन काल मे **अब्दुल हमीद लाहोरी** और **काजवीनी** के द्वारा जो **बादशाहनामे** लिखे गये उनमे राजपूत राजाओ का यथास्थल वर्णन है । काम्बू की **अमले सलीह** तथा **वारिस** के **बादशाहनामे** मे भी राजस्थान का इतिहास मिलता है ।

यद्यपि औरङ्गजेब ने इतिहास का लिखना निषेध कर दिया था लेकिन उसके शासनकाल के प्रथम दस वर्षो का इतिहास 'आलमगीरनामा' मे लिखा गया । औरङ्गजेब के शासन काल ही मे दो हिन्दू इतिहासकारो ने फारसी भाषा में ऐतिहासिक

ग्रन्थ लिखे। इनमे पहला ग्रन्थ ईसरदास नागर के द्वारा लिखा गया था जो जोधपुर मे आमीन के पद पर रहा था। इस ग्रन्थ का नाम **फतूहाते आलमगीरी** था। भीमसेन बुरहानपुरी द्वारा लिखित **'नक्शा-ए-दिलकश'** राजस्थान का इतिहास जानने के लिए कम महत्वपूर्ण नही है। इसी प्रकार **आकिलखा** द्वारा लिखित **'वाकेयात-ए-आलमगीरी'** मे भी शाहजहा के पुत्रो के बीच उत्तराधिकार के युद्ध का वर्णन है जिनमे प्रसगवश जोधपुर के जसवतसिह तथा मिर्जाराजा जयसिह तथा अन्य राजपूत राजाओ का वर्णन मिलता है। राजस्थान का इतिहास जानने के लिये औरङ्गजेब की मृत्यु के पश्चात् **साकी मुस्तैदखा** ने **मासिर-ए-आलमगीरी** नामक ग्रन्थ लिखा। कहने का तात्पर्य यह है कि समकालीन लेखको द्वारा राजकीय सरक्षणो अथवा शाही घरानो का किसी न किसी रूप से सम्बन्ध रहने के कारण जो ग्रन्थ अकबर से औरङ्गजेब के शासनकाल के बीच लिखे गए उन सब मे राजस्थान के तत्कालीन शासको का वर्णन है।

अब्दुल फजल के **'अकबर नामा'** तथा **'आइने अकबरी'** का तीन तीन जिल्दो मे अ ग्रेजी भाषा मे अनुवाद प्रकाशित किया जा चुका है। **'तबकाते अकबरी'** का भी De ने अङ्ग्रेजी भाषा में अनुवाद कर दिया है जो दो जिल्दो में प्रकाशित किया जा चुका है। **'तारीखे फरिश्ता'** का ब्रिग्स ने चार जिल्दो में अ ग्रेजी में अनुवाद किया। **'तुजुक-ए-जहागीरी'** का दो जिल्दो में अ ग्रेजी में अनुवाद स्वतन्त्र रूप से हो चुका है। अन्य ग्रन्थ फारसी भाषा में तो प्रकाशित हो चुके हैं लेकिन इलियट और डाउसन ने इन ग्रन्थो के कुछ भागो का अ ग्रेजी भाषा मे अनुवाद किया है। सम्पूर्ण ग्रन्थो का अनुवाद अब तक नही हो सका है।

फरमान, निशान मन्शूर और हस्बुल हुक्म भी इतिहास के साधन थे

इन ग्रन्थो के अलावा राजस्थान पुरातत्व लेखा विभाग मे फारसी भाषा के कई फरमान[1] **उपलब्ध हैं** जो अकबर और उसके उत्तराधिकारी राजपूत राजाओ के पास भेजते थे। फरमानो के अतिरिक्त निशान, मन्शूर और हस्बुल हुक्म भी राजस्थान सरकार के पुरातत्व लेख विभाग में सुरक्षित है।

मुगल शासन के प्रमुख सरदारो की जीवनिया भी समय समय पर लिखी गई हैं। शेख फरीद भारवारी ने 'जखीरूल खवानीन', केवलराय ने तजकिरा तथा समसामुद्दौला शाहनवाज खा ने 'मासिर—उल—उमरा' नामक ग्रथो में मुसलमान सरदारो के अलावा कुछ प्रभावशाली राजपूत राजाओ की भी जीवनियां लिखी हैं। इनमें अतिम

1 देखिये, A Descriptive list of the farmars, Manshurs and Nishans, addressed by the Imperial Mughals to the princes of Rajasthan यह लिस्ट राजस्थान सरकार के पुरालेख विभाग, बीकानेर द्वारा 1962 में प्रकाशित की गई थी।

ग्रथ यद्यपि अठारहवी शताब्दी में लिखा गया लेकिन महत्वपूर्ण होने के नाते इसका अंग्रेजी और हिन्दी भाषा मे अनुवाद हो चुका है।

राजस्थानी भाषा के ग्रन्थ (Rajasthani Sources)—राजस्थान मे ऐसा साहित्य मुगलो के भारत प्रवेश से पहले लिखा जाता था लेकिन अकबर के शासनकाल में जब अब्दुलफजल के 'अकबरनामा' के लिये सामग्री एकत्रित की गई उस समय विभिन्न राजपूत राजाओ को अपने अपने राज्यो और पूर्वजो का ऐतिहासिक विवरण भेजने का आदेश मुगल सम्राट की ओर से दिया गया। अत उस समय लगभग हरएक राज्य मे ख्यातें लिखी गई। इस समय वशावलियो की भी रचना की गई और ऐतिहासिक वातें भी लिखी गई। ख्यातें, वशावलिया और ऐतिहासिक वातो की रचना सोलहवी शताब्दी के अन्तिम चरण मे प्रारम्भ हुई प्रतीत होती हैं क्योकि कोई भी ख्यात सत्रहवी शताब्दी के पहले की उपलब्ध नही होती यद्यपि L P Tessitori ने इन Bardic Chronicles का सर्वेक्षण किया और उनकी एक लिस्ट भी प्रकाशित करदी लेकिन आधुनिक विद्वान स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व चारणो और भाटो द्वारा रचित साहित्य पर अधिक विश्वास नही करते थे। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि Bardic Chronicles को लिखते समय लेखको ने तिथियो को विशेष महत्व नही दिया था। अत कतिपय ख्यातो की तिथियाँ गलत हैं (Demonstrably inaccurate)। चूंकि यह ख्यातें राजस्थान मे लिखी गई अत इनमे सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओ के सम्बन्ध मे पर्याप्त details मिलते हैं। उदाहरण के लिये 1544 ई० मे शेरशाह राजस्थान मे किस मार्ग से आया और उसकी जोधपुर नरेश मालदेव के साथ कव और कहाँ पर युद्ध हुआ, इसका विस्तृत वर्णन समकालीन फारसी की तवारीखो मे नही है, केवल ख्यातो मे है। अतएव मेरे विचार मे ख्यातो को राजस्थान का इतिहास लिखते समय फारसी के ग्रन्थो के पूरक ग्रन्थो के रूप मे प्रयोग किया जाना चाहिये।

> राजस्थानी भाषा मे लिखी ख्यातों, ऐतिहासिक वातो तथा वशावलियो के आधार पर इतिहास लिखा गया है

राजस्थान मे सबसे प्राचीन 275 वर्ष पुरानी और विश्वसनीय ख्यात नैणसी द्वारा लिखी हुई मानी जाती है। लेखक जोधपुर नरेश महाराजा जसवतसिंह प्रथम (1638–1678 A D) की सेवा मे था। इसने अबुलफजल के समान दो ग्रन्थ लिखें 'ख्यात' और 'गावा री ख्यात'। इनमे प्रथम ग्रथ प्राप्य है। मूल ग्रन्थ को राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जोधपुर ने तीन जिल्दों मे छाप दिया हैं। हिन्दी भाषा मे उसका अनुवाद मेवाड के वयोवृद्ध विद्वान स्वर्गीय श्री रामनारायणजी दुगड, नागरी प्रचारणी सभा द्वारा वर्षो पूर्व प्रकाशित करवा चुके हैं।

> नैणसी की ख्यात

इस ख्यात मे राजपूताना, काठियावाड, कच्छ, मालवा, बुन्देलखण्ड आदि के राजवशो का वृतान्त मिलता है। नैणसी जगह जगह के चारणो, भाटो आदि की पुस्तको से जितना भी वृतान्त मिल सकता था उसका सग्रह कर लेता था। कही जाता तो वहाँ के कानूनगो से भी पुराना हाल मालूम करके लिख लेता था। उसके रिश्तेदारो को भी यदि कही कोई शिलालेख मिल जाता तो उसकी वशावली मालूम करके वह लेख नेणसी के पास पहुँचा देते थे। इस प्रकार एक ही वश की एक से अधिक वशावली उसकी ख्यात मे उपलब्ध है।

"वि० स० 1300 के पीछे के राजस्थान के इतिहास के लिये नेणसी की ख्यात बडे महत्व की है। उसमे उदयपुर, डूँगरपुर, बासवाडा, प्रतापगढ के गुहिलोतो, हाडा, देवडा, सोनगरा, चीबा, बागडिया, साचेरा, बोडा, कापलिया, खीची आदि चौहानो की भिन्न-भिन्न शाखाओ, सोलकियो, कछवाहो, खेड के गोहिलो, परमारो, जागलू के साखलो, मोढों, जैसलमेर के भाटियो, सरवै आदि यादवो, झालो, राठोरो आदि का इतिहास मिलता है। नेणसी ने कई लडाइयो तथा कई वीर पुरुषो एव उनकी जागीरो का भी वर्णन किया है। किले बनने के सवत तथा पहाडो, नदियो, झीलो के विवरण भी कई जगह हैं। इस प्रकार नेणसी ने राजपूताने के इतिहास को बहुत कुछ सुरक्षित किया। जोधपुर के स्वर्गीय मु शी देवीप्रसाद तो नेणसी को राजस्थान का **अब्दुलफजल** कहा करते थे। राजा महाराजाओ के इतिहास तो कई प्रकार के मिलते हैं पर उनकी छोटी छोटी शाखाओ, सरदारो आदि के युद्ध मे सहयोग देने के वृतात मिलने के साधन कम हैं तो भी किसी अश मे उसकी पूर्ति नेणसी के सग्रह से होती है" (डा० ओझा)।

कर्नल टॉड को यह अनुपम ग्रन्थ नही मिल सका था। यदि उन्हे यह ग्रन्थ उपलब्ध होता तो उनके 'एनाल्स' मे बहुत कुछ परिवर्तन सम्भव था।

क्या नैणसी वास्तव मे राजपुताने का अब्दुलफजल था ?

नैणसी को राजपुताने का अबुलफजल कहकर पुकारा गया है क्योंकि जोधपुर राजा का दीवान होने के नाते अपनी ख्यात को लिखते समय उसने उन सब साधनो का प्रयोग किया होगा जो उस समय उपलब्ध थे। अपनी 'गाँवो की ख्यात' मे जिस ढग से नैणसी ने मारवाड के गावो का वर्णन किया है वह वर्णन अब्दुलफजल की 'आईने अकबरी' के वर्णन से कुछ कम नही है। उसकी ख्यात भी अकबरनामा के समान है। मारवाड की कचहरियो मे उसकी ख्यात प्रमाण के रूप मे प्रस्तुत की जाती थी। इसलिये राज्य की प्रथम वार्षिक प्रशासनिक रिपोर्ट में नैणसी की ख्यात के लिये कहा गया है कि इसमे राज सिंहासन के बारे हर एक घटना का वर्णन करते समय तिथियाँ भी लिखी हैं। युद्धो का वर्णन करते समय कुछ छिपाया नही गया है तथा युद्ध मे घायल अथवा मारे जाने वाले आदमियो के नाम पते भी दिये हैं। नैणसी की ख्यात मे गरीब व्यक्तियो का वर्णन नही है लेकिन

इसके लिये नैणसी को दोषी नही ठहराया जा सकता क्योंकि मध्य युग मे इतिहासकार इसी प्रकार करते थे। इस दृष्टि से नैणसी को यदि राजपुताने का अब्दुलफजल और उसके ग्रन्थ को 'अकबरनामा' कहकर पुकारा जाय तो इसमे कोई अतिशयोक्ति नही है।

नैणसी अब्दुलफजल की तरह विद्वान नही था और न उसके पास उतना समय ही था लेकिन फिर भी उसका ऐतिहासिक दृष्टि–कोण अब्दुलफजल की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक और प्रभावशाली (Penetrative) था। अब्दुलफजल ने अपने ग्रन्थ मे साधनो का कही नाम नही लिखा है जबकि नैणसी ने *Important Contributors* के नाम अपनी ख्यात मे लिखे हैं। नैणसी ने राजकीय सरक्षण से दूर रह कर अपने ग्रथ की रचना की थी और इसलिये यह अपने स्वामी के गुण दोषो का स्पष्ट रूप से वर्णन कर सका है। डॉ० कालिकारजन कानूनगो ने ठीक ही लिखा है—'Libraries and royal patronage may produce an Abdul Fazal, but *not* a Nainse and *his Khyat breathing genunine air of* Rajput Chivalry, and bringing nearer and clearer to us a picture of the social and economic life of Rajputana, and its topography"

मुडीमार ठिकाने की ख्यात —यह ख्यात भी कम महत्वपूर्ण नही है। मुडीमार ठिकाना नागौर से दस मील दक्षिण मे है। यह ठिकाना शासन के रूप मे चारणो को प्रदान किया गया था। इस ख्यात की नकल जोधपुर दस्तरी आफिस मे थी। राव सीहा के द्वारा मारवाड मे राठौड राज्य की स्थापना से लेकर महाराजा जसवन्तसिह प्रथम की मृत्यु तक का हाल इस ख्यात मे है। इससे यह जाहिर होता है कि यह ख्यात महाराजा जसवतसिह के जीवन काल मे लिखी गई थी। मारवाड के प्रत्येक राजा के जन्म, राज्याभिषेक तथा मृत्यु की तारीखें इसमे मिलती हैं। हर एक राजा के कितनी रानियाँ और दासियाँ थी और उनसे कौन कौन से बच्चे उत्पन्न हुये, इसका वर्णन भी इस ख्यात मे मिलता है। ब्राह्मणो और चारणो को किस किस राजा ने कितनी कितनी भूमि कब कब दान मे दी, इसका जिक्र भी इस ख्यात मे मिलता है। मुगलो और मारवाड के राजाओ के बीच जो वैवाहिक सम्बन्ध हुए, उनका वर्णन भी इस ख्यात मे है। इस ख्यात को पढने से यह भी जाहिर होता है कि सलीम की पत्नि जोधाबाई मोटा राजा उदयसिह की पुत्री नही, दत्तक बहिन थी, जो मालदेव की दासी से उत्पन्न हुई थी। यद्यपि यह एक विवादास्पद प्रश्न है जिस पर केवल मुन्डीमार ठिकाने की एक ख्यात के आधार पर निर्णय नही दिया जा सकता, लेकिन फिर भी इस ख्यात का महत्व नैणसी की ख्यात से कम नही है।

कविराजा की ख्यात —आज से लगभग सत्तर वर्ष पूर्व जोधपुर शहर की एक दीवार खोदने के बाद कविराजा की ख्यात की प्रति उपलब्ध हुई। इसमे जोधपुर राज्य के राठौड शासको के अतिरिक्त राव, जोधा एव रायमल और सूरसिह के मत्री भाटी गोविन्ददास के उपाख्यान (Anecdotes) भी हैं। इस ख्यात मे भी महाराजा

जसवन्तसिंह प्रथम के शासन-काल तक का ऐतिहासिक वर्णन है। इस ख्यात की प्रतिलिपि सीतामऊ महाराजकुमार डा० रघुवीरसिंह के पुस्तकालय मे उपलब्ध है।

जोधपुर राज्य की ख्यात —यह दो जिल्दो मे है। इसकी प्रतिलिपि सीतामऊ लाइब्रेरी मे है जो स्वर्गीय ओझाजी की प्रति की नकल है। इस ग्रथ मे जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह (1803–1843 A D) की मृत्यु तक का हाल है। इससे यही प्रकट होता है कि महाराजा मानसिंह के समय मे यह ख्यात लिखी गई थी। डा० ओझा ने इस ख्यात के सम्बन्ध मे लिखा है "लेखक ने विशेष छानबीन न करके जनश्रुति के आधार पर बहुत सी बातें लिख डाली हैं, जो निराधार होने के कारण काल्पनिक ही ठहरती हैं, साथ ही राजा के आश्रय मे लिखी जाने के कारण इसमे दिये हुए बहुत से वर्णन पक्षपातपूर्ण एव एकागी हैं।" इस ख्यात का प्रारम्भिक वर्णन कल्पित बातो के आधार पर ही है अत ख्यात मे दिये हुये राव जोधा के पहले के वर्णन तथा तिथियाँ कल्पित ही हैं। फिर भी जोधपुर राज्य का विस्तृत इतिहास केवल इसी ख्यात से जाना जा सकता है।

दयालदास की ख्यात की प्रथम जिल्द मे आरम्भ से लेकर राव जोधा तक का विस्तृत इतिहास है और दूसरी जिल्द में बीकानेर राज्य का। इस ख्यात की भी प्रतिलिपि सीतामऊ पुस्तकालय मे उपलब्ध है।

इन ख्यातो के अलावा मारवाड मे कई छोटी बडी ख्यातें लिखी गई जिनमे महाराजा अजीतसिंहजी की ख्यात सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जोधपुर नरेशो की प्रशसा मे जो ख्यातें व गीत लिखे गये उनमे रचयिताओ के नाम तथा काल का कोई पता नही चलता। ऐसी दशा मे इनकी सत्यता सदेहयुक्त है।

जिस प्रकार मारवाड मे ख्यातें लिखी गई उसी प्रकार राजस्थान के अन्य राज्यो मे भी ख्यातें लिखी गई थी। आमेर, मेवाड, शाहपुरा इत्यादि राज्यो की ख्यातें उपलब्ध हैं। ख्यातें डिंगल भाषा और मारवाडी लिपि मे लिखी गई थी। पद्मश्री मुनि जिनविजयजी के अथक परिश्रम के कारण यत्रतत्र बिखरा हुआ राजस्थानी साहित्य जोधपुर मे सगृहीत कर लिया गया है।

जैन ग्रन्थ (Jain Sources)—राजस्थान के मध्य युग मे जैन विद्वानो ने द्वारा जो गुटके, प्रशस्तिया तथा पट्टावलिया लिखी गई उनका सग्रह श्री अगरचन्दजी नाहटा तथा अन्य जैन भडारो मे पाया जाता है। विशेष रूप मे आमेर तथा मारवाड का इतिहास लिखने मे जैन साधनो का प्रयोग आवश्यक और सफल हो सकता है।

सस्कृत भाषा के ग्रन्थ (Sanskrit Sources)

मेवाड —पडित जीवधर द्वारा 1685 विक्रमी मे लिखा हुआ 'अमरसार' नामक सस्कृत महाकाव्य मेवाड के राणा प्रताप, राणा अमरसिंह और राणा [illegible] के शासनकाल के लिए महत्वपूर्ण साधन है।

महाराणा अमरसिंह प्रथम के शासनकाल मे "अमर भूषण" नामक ग्रन्थ लिखा गया । दुर्भाग्य से लेखक का नाम इसमे नही है ।

महाराणा जगतसिंह के समकालीन रघुनाथ ने जगतसिंह काव्य लिखा । इसी प्रकार "जगतसिंह शास्त्र" मोहन भट्ट द्वारा इसी राणा के महाकाल में लिखा गया लेकिन इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण 'अमरकाव्य वशावली' है जिसे रणछोड भट्ट ने विक्रमी सवत् 1732 के आसपास लिखा था ।[1]

मारवाड—महाराजा अजीतसिंह के समय मे सस्कृत भाषा में दो ग्रथ लिखे गये । पहला **अजितचरित्र** जिसके लेखक प० बालकृष्ण दीक्षित थे और दूसरा **अजितोदय** जिसके लेखक भट्ट जगजीवन थे ।

जोधपुर नरेश महाराजा जसवतसिंह प्रथम के शासन काल में राज प्रासाद में एक पुस्तकालय स्थापित किया गया था जिसका नाम पुस्तक प्रकाश था । इसमें सस्कृत ग्रन्थो की सख्या लगभग 2000 था । पुस्तक प्रकाश मे सबसे पुरानी पुस्तक वि० स० 1572 (1515 A D) की लिखी हुई है ।

शिलालेख, दान पत्र तथा सिक्के

शोधपूर्ण इतिहास लिखने में शिलालेखो, दान-पत्रो तथा सिक्को से बडी सहायता मिलती है । राजस्थान के प्रत्येक राज्य मे यह मिल सकते हैं क्योकि देवल व सती-चबूतरो पर लेख लिखने की परम्परा बहुत प्राचीन है । प्रचुर मात्रा मे शिलालेख व सिक्के उपलब्ध हुए हैं जिनका वर्णन यथास्थान कर दिया जायगा, यहाँ केवल दो तीन महत्त्वपूर्ण शिलालेखो का ही वर्णन किया जाता है —

प्रथम महत्वपूर्ण शिलालेख (Rock Inscription) बिजोलिया का है । यह सस्कृत भाषा में है जिसमे 92 श्लोक हैं । यह विक्रमी सवत् 1226 में भद्र मुनि के द्वारा लिखा गया था । इस शिलालेख से चौहानो का राज्य-विस्तार एव प्राचीन राजस्थान की भौगोलिक स्थिति के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त होता है । चौहानो ने राजस्थान में अपने राज्य कब और कैसे स्थापित किये आदि, तथा उनकी वशावली इससे ज्ञात होती है । इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात होता है कि चौहानो की उत्पत्ति ब्राह्मणो से हुई थी । इसी प्रकार यह भी ज्ञात होता है कि यद्यपि चौहान शिव-भक्त थे लेकिन जैनियो के प्रति भी सहिष्णु थे ।

दूसरा महत्वपूर्ण लेख सीकर के एक मन्दिर से प्राप्त हुआ । यह शिलालेख दसवी शताब्दी का है और '**हर्षनाथ शिलालेख**' के नाम से प्रख्यात है । इस शिलालेख से भी राजस्थान के प्राचीन चौहानो की वशावली तथा उनका शिवधर्म के प्रति प्रेम प्रकट होता है एव प्राचीन राजस्थान के आर्थिक प्रबन्ध के विषय में भी जानकारी प्राप्त होती है ।

---

1 मेवाड की ख्यातो के लिए देखिये —

Dr G N Sharma Mewar and the Mughal Emperors

तीसरा महत्वपूर्ण संस्कृत का प्रस्तर-लेख जम्वा रामगढ से प्राप्त हुआ। यह विक्रमी सवत् 1669 (1613 A D) का है और जयपुर म्यूजियम में सुरक्षित है। यह लेख आमेर के शासक भारहमल्ल के उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में जानकारी कराता है और बतलाता है कि राजा मानसिंह अपने पिता भगवन्तदास के दत्तक पुत्र थे।

चौथा महत्वपूर्ण प्रस्तर लेख **राज प्रशस्ति** के नाम से प्रसिद्ध है। यह सस्कृत भाषा में माघ वदि 15 विक्रम सवत् 1732 का लिखा हुआ महाकाव्य है जो 24 अध्यायो में (1682 श्लोक हैं), 25 प्रस्तर-खण्डो पर लिखा हुआ है। मेवाड नरेश महाराजा राजसिंह द्वारा राजसमुद्र का निर्माण कराया गया था। उसी समय रणछोड भट्ट (ब्राह्मण) के द्वारा यह प्रशस्ति लिखवाई गई। इसमें वप्पा रावल से महाराणा राजसिंह तक के मेवाड के राजाओ की वशावली है चूंकि लेखक महाराणा जगतसिंह का समकालीन था अत राज प्रशस्ति की सूचना महाराणा जगतसिह के राजकाल की घटनाओ के लिए महत्वपूर्ण है। प्रो० श्रीराम शर्मा ने इस लेख को पजाव विश्वविद्यालय के लिए सम्पादित किया था। वे लिखते हैं—

"It gives a credible account of the relations of Maharana Raj Singh with the Mughal Emperors besides throwing a good deal of light on the social and religious customs of the period"

आधुनिक साधन (Modern Works)

आधुनिक काल मे राजस्थान के इतिहास के प्रति विद्वानो की दृष्टि आकर्षित हो गई है, अत राजस्थान के इतिहास पर कई ग्रन्थ हिन्दी और अग्रजी मे लिखे जा चुके हैं। इन ग्रन्थो का केवल Title देना ही पर्याप्त होगा क्योंकि लगभग सभी ग्रन्थ प्राप्य हैं —

(a) Published works in English

1 Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol I & II, by Col Tod
2 Glories of Marwar and the Glories of Rathores by Pt B N Rao
3 Early Chauhan Dynasties by Dr Dasharatha Sharma
4 History of Mewar by Dr G C Ray Chaudhary
5 Delhi Sultanate (Bharitya Vidya Bhawan, Bombay)
6 Studies in Rajput History by Dr K R Qanungo
7 Mewar and the Mughal Emperors by Dr G N Sharma
8 Marwar and the Mughal Emperors by Dr V S Bhargava

9 Maharana Kumbha by Pt Harbilash Sarda
10 Maharana Sanga by the Same author
11 Durga Das Rathore by Pt B N Rao
12 An Empire Builder of the 16th Century by Rushbrook Williams
13 Humayun Padshah, by (late) Dr S K Banerjee
14 Life & Times of Humayun by Dr Ishawari Prasad
15 Life & Times of Sher Shah by Dr K R Qanongo
16 Successors of Sher Shah by B N Roy
17 Sher Shah & His Successors by A L Srivastava
18 Akbar, the great Mogul by V A Smith
19 Akbar by Malleson
20 Akbar the Great by Dr A L Srivastava
21 History of Jahangir by Beni Prasad
22 Shah Jahan of Delhi by Dr B P Saxena
23 History of Aurangzeb by Dr J N Sarkar
24 Religious Policy of Mughal Emperors by S R Sharma
25 Shivaji & His Times by Dr J N Sarkar

(b) **Unpublished Works in English**

1 Relations of Bikaner with Central Power by Maharaja Dr Karni Singhji Sahib of Bikaner
2 History of Mewar by (late) Mithaalal Mathur Thises approved for Ph D degree of Rajasthan University
3 History of Jaipur, by Dr J N Sarkar
4 Mirja Rajah Jaisingh by Dr C B Tripathi Thises approved for Doctorate degree of Allahabad University
5 History of Baronical House of Diggi by Dr K R Qanungo

(c) **Published works in Hindi**

1 वीर विनोद—कविराजा श्यामलदास
2 डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत उदयपुर, बीकानेर, जोधपुर, बांसवाडा, प्रतापगढ़ तथा सिरोही राज्य के इतिहास
3 कोटा राज्य का इतिहास—डा० मथुरालाल शर्मा

4 पूर्व आधुनिक राजस्थान—महाराजकुमार डा० रघुवीरसिंहजी सीतामउ
5 राजपूताने का इतिहास—स्वर्गीय जगदीशसिंह गहलोत ।
6 मारवाड का मूल इतिहास—स्वर्गीय रामकरण आसोपा ।
7 मारवाड का इतिहास—प० विश्वेवरनाथ रेऊ ।
8 राजस्थान भारती, राजस्थान पत्रिका, मरु-भारती, तथा शोध-पत्रिक नामक पत्रिकायें ।
9 आम्बेर के राजा, मु शी देबीप्रसाद ।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि राजस्थान का इतिहास लिखने के लि

1 शिलालेख, दानपत्र व सिक्के,
2. चारणो और भाटो के द्वारा लिखी हुई ख्यातें तथा गीत,
3. सस्कृत भाषा के ग्रथ,
4 फारसी भाषा के ऐतिहासिक ग्रथ,
5 अन्य विद्वानो की लिखी हुई पुस्तको

की आवश्यकता होती है ।

BIBLIOGRAPHY

1 डॉ० गौरीशकर हीराचन्द ओझा कृत राजपूताने का इ राज्यका इतिहास एव बीकानेर राज्य का इतिहास ।
2 Dr K. R Qanungo Studies in Rajput Hist
3 S R Sharma Bibliography of Mughal Ind

4

राजस्थान का तराइन के द्वितीय युद्ध तक का प्राचीन इतिहास

(Early History of Rajasthan upto the Second Battle of Tarain)

सातवी शताब्दी से बारहवी शताब्दी के बीच राजस्थान मे चौहानो के राज्य कई केन्द्रो पर थे। बरोच (Broach) के चौहान सबसे अधिक पुराने थे। इन्होने गुजर राज्य के पतन के पश्चात् 736 ई० के आसपास अपना राज्य कायम कर लिया था। 1222 ई० तक राज्य का विस्तार इतना अधिक हो गया था कि Cambay का बन्दरगाह भी इनके अधिकार मे आ गया था। 1272 ई० के लगभग बरोच के चौहानो का पतन हो गया।

चौहान राज्य का उत्थान

धौलपुर के चौहान भी नवी शताब्दी तक काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे लेकिन नागभट्ट द्वितीय की मृत्यु के साथ साथ सन् 833 के लगभग इनका पतन हो गया।

इसी प्रकार प्रतापगढ के चौहान भी थे। टॉड ने अपनी पुस्तक 'एनाल्स' मे कतिपय चौहान राजवशो का वर्णन किया है जिनके राज्य उस समय मौजूद थे। लेकिन इन सबमे सपालदक्ष (Sapaladaksa) अथवा जगल देश के चौहान शासक अधिक प्रख्यात हुए हैं।

सपालदक्ष के चौहान —सपालदक्ष का पहला चौहान शासक वासदेव माना जाता है जो **प्रबन्ध कोष** के अनुसार 608 विक्रमी के लगभग साँभर पर शासन करता था। **पृथ्वीराज विजय'** मे लिखा है कि विद्याधर से मित्रता करके वासदेव ने साँभर की झील प्राप्त की, लेकिन विजोलिया शिलालेख पढने से जाहिर होता है कि साँभर की झील उससे (स्वय) उत्पन्न हुई थी।[1]

वासदेव से लेकर विग्रहराज द्वितीय तक (जो 10 वी शताब्दी मे साम्भर का राजा हुआ है) कई चौहान शासको की पीढियाँ गुजर गई लेकिन उनके सम्बन्ध मे केवल पौराणिक गाथायें ही मिलती हैं, कोई ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नही हो सकी। इसलिये वासदेव के उत्तराधिकारियो का इतिहास मे जो कुछ वर्णन किया गया है वह विश्वसनीय सूत्रो के आधार पर नही है और उस वर्णन के आधार पर चौहानो की वशावली निश्चित करना सुलभ कार्य नही है। **विजोलिया शिलालेख** मे साँभर के सामन्त का वर्णन है जो शेखावाटी के ब्राह्मण जमींदार अनन्त का सामन्त बताया

1 "शाकभ राजनि जनीव ततोपि विष्णो" विजोलिया शिलालेख मे उद्धरित। यहाँ विष्णु से तात्पर्य वासदेव से ही है।

मानो से छीन लिया था। इसी तरह से मालवा के शासक नरवर्मन को पराजित करना एक ऐतिहासिक सत्य है। इसका जिक्र केवल चौहान प्रशस्ति मे नही है बल्कि बिजोलिया के शिलालेख मे भी है। यह भी सम्भव है कि पूर्वी पजाब के कुछ प्रदेश इसके अधिकार मे आ गये हो और हरियाना के प्रदेश मे इसने अपना अधिकार कर लिया हो। इससे यह स्पष्ट होता है कि अरनो राजा को दिल्ली के शासको के विरुद्ध भी युद्ध लडना पडा और आधुनिक बुलन्दशहर के डोड राजपूतो के विरुद्ध भी इसे युद्ध लडना पडा। अरनो राजा की इन सब विजयो का केवल यही कारण हो सकता है कि गुजरात के चालुक्य और सपालदक्ष के चौहानो के बीच राज्य विस्तार की परम्परागत प्रतिस्पर्द्धा चली आ रही थी और क्योकि मालवा का प्रदेश दोनो के लिये ही महत्वपूर्ण था इसलिये उस पर अरनो राजा ने अधिकार करने का अवश्य ही प्रयत्न किया होगा। अरनो राजा के शासन काल मे चौहान–चालुक्य प्रतिस्पर्द्धा अपनी चरम सीमा पर पहुच गई थी। गुजरात के शासक कुमारपाल ने अरनो राजा की बढती हुई सेनाओ को आबू पर्वत के निकट पराजित किया था। यह भी प्रतीत होता है कि इसके शासन काल मे गुजरात की सेनाएँ अजमेर के निकट आ गई थी लेकिन अजमेर की अभेद्य सुरक्षा प्राचीर पर वह अधिकार नही जमा सका। अरनोराजा चालुक्य राजा के पराजित होने पर अधिक समय तक जीवित नही रह सका। उसके पुत्र जागदेव ने उसे मार डाला और 'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार वह स्वय भी कुछ समय के बाद अपने भाई विग्रहराज चतुर्थ के द्वारा मारा गया।

तात्पर्य यह था कि इसके शासन काल मे सपालदक्ष की चतुर्मुखी उन्नति हुई। अतएव डा० दशरथ शर्मा ने इसके शासन काल को सपालदक्ष के चौहानो का स्वर्ण युग कहकर पुकारा है।

विग्रहराज द्वितीय की मृत्यु के बाद जागरण देव के पुत्र पृथ्वीराज द्वितीय का राज्याभिषेक हुआ। इसके शासन काल मे सपालदक्ष के चौहानो को पचपुरा के शासक के विरुद्ध युद्ध लडना पडा और मुसलमानो के विरुद्ध युद्ध लडने पडे। पृथ्वीराज विक्रमी 1226 के लगभग मृत्यु को प्राप्त हो गया था और उसके बाद अरनोराजा का जीवित पुत्र सोमेश्वर जो पृथ्वीराज द्वितीय का चाचा था, गद्दी पर बैठा। पृथ्वीराज तृतीय इसी सोमेश्वर का पुत्र व उत्तराधिकारी था।

Nature of Chauhan expansion

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि सपालदक्ष के चौहानो ने अपने राज्य का विस्तार किया। विस्तार उत्तर और पूर्व की दिशा मे किया गया था। लेकिन इन प्रदेशो को यह स्थायी रूप से अपने अधिकार मे नही रख सके। यह शासक अपने नाम को स्थायी रखना चाहते थे और इसका प्रमाण यह है कि साम्भर झील और अजमेर शहर इनके द्वारा बसाये गये। सपालदक्ष के चौहान शासक अकाक्षावादी थे और उन्हे इसलिये गुजरात मे चालुक्यो, दिल्ली में तोमर और मुस्लिम आक्रमणकारियो से मुकाबला करना पडा। पृथ्वीराज द्वितीय जिस समय गद्दी पर बैठा उस समय उसे विरासत मे मुसलमानो की प्रतिस्पर्द्धा अपने पूर्वजो से प्राप्त हुई थी। यह भी स्पष्ट है कि पृथ्वीराज तृतीय के राज्याभिषेक से पहले ही साम्भर और अजमेर के चौहान शासक भारतीय शक्ति बन चुके थे।

सपालदक्ष के चौहान केवल विजेता ही नही थे वरन् उन्होने कला को भी प्रोत्साहन दिया था। इनके द्वारा कई शहर बसाए गए, दुर्गों का निर्माण किया गया, साहित्यकारो को भी सरक्षण प्रदान किया गया। आधुनिक अजमेर मे ढाई दिन के झौंपडे के नाम से जो ऐतिहासिक भवन प्रसिद्ध है, उस भवन मे सरस्वती कठाकरण नामक कालेज सपालदक्ष के चौहान शासको के द्वारा प्रारम्भ किया गया था। जब अजमेर मुसलमानो के अधिकार मे आ गया तब उस भवन का भी रूप परिवर्तित कर दिया गया।

पृथ्वीराज चौहान[1] (1166–1193 A D)

सोमेश्वर का पुत्र पृथ्वीराज वडे ही शुभ मुहूर्त मे उत्पन्न हुआ था[2] जिस समय उसके पिता की मृत्यु हुई उसकी आयु केवल ११ वर्ष की थी। अत राजमाता कर्पूर देवी ने पृथ्वीराज तथा उसके भ्राता हरीराज का सरक्षण किया। सरक्षण काल मे

1 फारसी तवारीखो मे इसे रायपिथौरा कहकर सम्बोधित किया गया है।

2 देखिये डा० दशरथ शर्मा का राजस्थानी बीकानेर मे प्रकाशित लेख 'पृथ्वीराज तृतीय की जन्म तिथि'।

मानो से छीन लिया था। इसी तरह से मालवा के शासक नरवर्मन को पराजित करना एक ऐतिहासिक सत्य है। इसका जिक्र केवल चौहान प्रशस्ति मे नही है बल्कि बिजोलिया के शिलालेख मे भी है। यह भी सम्भव है कि पूर्वी पजाब के कुछ प्रदेश इसके अधिकार मे आ गये हो और हरियाना के प्रदेश मे इसने अपना अधिकार कर लिया हो। इससे यह स्पष्ट होता है कि अरनो राजा को दिल्ली के शासको के विरुद्ध भी युद्ध लडना पडा और आधुनिक बुलन्दशहर के डोड राजपूतो के विरुद्ध भी इसे युद्ध लडना पडा। अरनो राजा की इन सब विजयो का केवल यही कारण हो सकता है कि गुजरात के चालुक्य और सपालदक्ष के चौहानो के बीच राज्य विस्तार की परम्परागत प्रतिस्पर्द्धा चली आ रही थी और क्योकि मालवा का प्रदेश दोनो के लिये ही महत्वपूर्ण था इसलिये उस पर अरनो राजा ने अधिकार करने का अवश्य ही प्रयत्न किया होगा। अरनो राजा के शासन काल मे चौहान–चालुक्य प्रतिस्पर्द्धा अपनी चरम सीमा पर पहुच गई थी। गुजरात के शासक कुमारपाल ने अरनो राजा की बढती हुई सेनाओ को आबू पर्वत के निकट पराजित किया था। यह भी प्रतीत होता है कि इसके शासन काल मे गुजरात की सेनाएँ अजमेर के निकट आ गई थी लेकिन अजमेर की अभेद्य सुरक्षा प्राचीर पर वह अधिकार नही जमा सका। अरनोराजा चालुक्य राजा के पराजित होने पर अधिक समय तक जीवित नही रह सका। उसके पुत्र जागणदेव ने उसे मार डाला और 'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार वह स्वय भी कुछ समय के बाद अपने भाई विग्रहराज चतुर्थ के द्वारा मारा गया।

विग्रहराज चतुर्थ का शासन मेवाड के बिजोलिया, माडलगढ और जहाजपुर के प्रदेश पर रहा था। इन प्रदेशो से इसके शासन-काल के बहुत से शिलालेख और अन्य प्रमाण प्राप्त हुये हैं। लेकिन इसे भडानक लोगो के द्वारा अवश्य ही पराजित होना पडा। विग्रहराज चतुर्थ की आकाक्षावादी भावना इतनी अधिक तीव्र हो गई थी कि अरनो राजा के समान इसने भी दिल्ली पर आक्रमण किया और बिजोलिया शिलालेख के अनुसार तोमरो से दिल्ली छीन ली। इसने हासी का प्रदेश भी अपने अधिकार मे कर लिया। दिल्ली विजय के साथ साथ चौहानो और तोमरो के सघर्ष का भी अन्त हो गया और दिल्ली की विजय ने सपालदक्ष के चौहानो को भारतीय शक्ति (All India Power) के रूप मे परिवर्तित कर दिया।

> **अर्नोराजा ने तोमरो से दिल्ली छीनकर सपालदक्ष के चौहानो को भारतीय शक्ति बना दिया। इसका शासन–काल सपालदक्ष के इतिहास का स्वर्ण युग था।**

इसने आर्यावर्त को स्वतन्त्र किया। आर्यावर्त की स्वतन्त्रता के लिये मुस्लिम आक्रमणकारियो के विरुद्ध आत्म-रक्षा के कतिपय युद्ध लडने पडे। इन युद्धो का विस्तृत वर्णन 'पृथ्वीराज विजय' मे मिलता है। विग्रहराज केवल एक सफल सेनानायक ही नहीं था इसने कई नवीन दुर्गों का निर्माण भी करवाए और बहुत से नये शहर बसाये थे। स्वय शिव का भक्त था लेकिन जैनियो के साथ इसका सहिष्णु दृष्टिकोण था। कहने का

तात्पर्य यह था कि इसके शासन काल मे सपालदक्ष की चतुर्मुखी उन्नति हुई। अतएव डा० दशरथ शर्मा ने इसके शासन काल को सपालदक्ष के चौहानो का स्वर्ण युग कहकर पुकारा है।

विग्रहराज द्वितीय की मृत्यु के बाद जागण देव के पुत्र पृथ्वीराज द्वितीय का राज्याभिषेक हुआ। इसके शासन काल मे सपालदक्ष के चौहानो को पचपुरा के शासक के विरुद्ध युद्ध लडना पडा और मुसलमानो के विरुद्ध युद्ध लडने पडे। पृथ्वीराज विक्रमी 1226 के लगभग मृत्यु को प्राप्त हो गया था और उसके बाद अरनोराजा का जीवित पुत्र सोमेश्वर जो पृथ्वीराज द्वितीय का चाचा था, गद्दी पर बैठा। पृथ्वीराज तृतीय इसी सोमेश्वर का पुत्र व उत्तराधिकारी था।

Nature of Chauhan expansion

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि सपालदक्ष के चौहानो ने अपने राज्य का विस्तार किया। विस्तार उत्तर और पूर्व की दिशा मे किया गया था। लेकिन इन प्रदेशो को यह स्थायी रूप से अपने अधिकार मे नही रख सके। यह शासक अपने नाम को स्थायी रखना चाहते थे और इसका प्रमाण यह है कि साम्भर झील और अजमेर शहर इनके द्वारा बसाये गये। सपालदक्ष के चौहान शासक अकाक्षावादी थे और उन्हे इसलिये गुजरात मे चालुक्यो, दिल्ली मे तोमर और मुस्लिम आक्रमणकारियो से मुकावला करना पडा। पृथ्वीराज द्वितीय जिस समय गद्दी पर बैठा उस समय उसे विरासत मे मुसलमानो की प्रतिस्पर्द्धा अपने पूर्वजो से प्राप्त हुई थी। यह भी स्पष्ट है कि पृथ्वीराज तृतीय के राज्याभिषेक से पहले ही साम्भर और अजमेर के चौहान शासक भारतीय शक्ति बन चुके थे।

सपालदक्ष के चौहान केवल विजेता ही नही थे वरन् उन्होने कला को भी प्रोत्साहन दिया था। इनके द्वारा कई शहर बसाए गए, दुर्गों का निर्माण किया गया, साहित्यकारो को भी सरक्षण प्रदान किया गया। आधुनिक अजमेर मे ढाई दिन के झोंपडे के नाम से जो ऐतिहासिक भवन प्रसिद्ध है, उस भवन मे सरस्वती कठाकरण नामक कालेज सपालदक्ष के चौहान शासको के द्वारा प्रारम्भ किया गया था। जब अजमेर मुसलमानो के अधिकार मे आ गया तब उस भवन का भी रूप परिवर्तित कर दिया गया।

पृथ्वीराज चौहान[1] (1166–1193 A D)

सोमेश्वर का पुत्र पृथ्वीराज बडे ही शुभ मुहूर्त मे उत्पन्न हुआ था[2] जिस समय उसके पिता की मृत्यु हुई उसकी आयु केवल ११ वर्ष की थी। अत राजमाता कर्पूर देवी ने पृथ्वीराज तथा उसके भ्राता हरीराज का सरक्षण किया। सरक्षण काल मे

1 फारसी तवारीखो मे इसे रायपिथौरा कहकर सम्बोधित किया गया है।

2 देखिये डा० दशरथ शर्मा का राजस्थानी बीकानेर मे प्रकाशित लेख 'पृथ्वीराज तृतीय की जन्म तिथि'।

Kaimasa राज्य के मन्त्री के रूप मे चौहान राज्य की देखभाल करता था । 1180 ई मे पृथ्वीराज ने शासन की बागडोर हाथ मे ले ली ।

पृथ्वीराज की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

बागडोर संभालते ही पृथ्वीराज को कठिनाइयो का सामना करना पडा । पहली कठिनाई विग्रह राज के पुत्र नागार्जुन की ओर से थी । पृथ्वीराज को अल्पवयस्क समझ कर नागार्जुन ने गुडापुरा पर अपना अधिकार जमा लिया । शायद उसनें अजमेर पर भी अधिकार कर लिया था ।[1] अत. पृथ्वीराज को उसके विरुद्ध युद्ध लडना पडा । युद्ध मे नागार्जुन पराजित हुआ और मारा गया ।

दूसरी कठिनाई Bhandanka की ओर से उत्पन्न की गई थी । इन लोगो का आधुनिक रिवाडी–भिवानी और वर्तमान अलवर ज़िले के कुछ भागो पर अधिकार था, 1182 ई० के लगभग पृथ्वीराज ने इनके विरुद्ध कूच किया और उन्हे पराजित किया ।

पृथ्वीराज की विजय

इन दोनो विजयो ने पृथ्वीराज की आकाक्षा को प्रोत्साहन दिया । वह दिग्विजय की कल्पना करने लगा । उसने चन्देलो की राजधानी महोबा पर अधिकार कर लिया और वहाँ के शासक परमारदीन को पराजित किया । पृथ्वीराज के विरुद्ध कन्नोज के गहरवाल शासको ने परमारदीन की सहायता की थी । तत्पश्चात् पृथ्वीराज ने जैजाक मुक्ति के प्रदेश को रौंद डाला ।

पृथ्वीराज का गुजरात के चालुक्यो के साथ भी युद्ध हुआ । 'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार गुजरात के शासक भीमदेव ने नागौर पर अधिकार कर लिया था । उसका सामना करते हुए पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर युद्ध में मारा गया था । अत पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए पृथ्वीराज ने 1187 ई० मे गुजरात पर आक्रमण किया और इसी समय आबू के परमार शासक Dharavarsa को भी पराजित किया ।

पृथ्वीराज की प्रतिहारो से भी लडाई हुई । लेकिन पृथ्वीराज के जीवनकाल मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण उसका कन्नोज के जयचन्द के साथ सघर्ष था । इस सघर्ष का एक

सयोगिता की कहानी काल्पनिक नहीं है

कारण यह था कि पृथ्वीराज और जयचन्द दोनो ही आकाक्षावादी शासक थे ।[2] जयचन्द ने पृथ्वीराज के विरुद्ध जैजाक मुक्ति के शासक परमारदीन को सहायता दी थी । लेकिन दोनो के बीच मनमुटाव का मूल कारण यह था कि पृथ्वीराज कन्नोज के शासक

1 अबुलफजल कृत 'आईने अकबरी' मे नागार्जुन को अजमेर का शासक कहकर सम्बोधित किया गया है ।

2 Elliott & Dawson History of India as told by its Own Historians, vol II, Page 214
Dr Dasharath Sharma Early Chauhan Dynasties P 77

की पुत्री सयोगिता को स्वयवर से भगा लाया था । यद्यपि कुछ आधुनिक इतिहासकारो[1] ने सयोगिता की इस कहानी को काल्पनिक कह कर पुकारा है, लेकिन इसे एकाएक मिथ्या कहकर पुकारना भी ऐतिहासिक सत्य नही है । **पृथ्वीराज रासो** और **पृथ्वीराज विजय** मे स्पष्ट लिखा है कि पृथ्वीराज सुन्दर अप्सरा सयोगिता पर मोहित हो गया और इसलिए वह सयोगिता को स्वयवर मे से ले आया। जयचन्द ने पृथ्वीराज को जानबूझ कर स्वयवर मे सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रण नही दिया था । यद्यपि सयोगिता और पृथ्वीराज ने एक दूसरे का पहले नही देखा था और पृथ्वीराज की उससे पहले भी दो पत्निया मौजूद थी, लेकिन पृथ्वीराज उस 'अप्सरा' की सुन्दरता पर केवल उसकी प्रशसा सुनकर इतना अधिक मोहित हो गया था कि अपने प्रतिद्वन्दी जयचन्द के द्वार तक गया और वहा से सयोगिता को लाया तथा फिर उसके साथ विवाह किया ।[2] अबुलफजल, चन्द्रशेखर और चन्द्र बरदाई ने जयचन्द और पृथ्वीराज के मनमुटाव का मुख्य कारण सयोगिता का विवाह बताया है । यह उस युग मे असम्भव भी नही था ।

सयोगिता के विवाह के प्रश्न पर जयचन्द और पृथ्वीराज का मनमुटाव अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया और उसके कुछ समय बाद ही मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज पर आक्रमण किया । अत जयचन्द ने पृथ्वीराज की कोई सहायता नही की जिसका परिणाम यह निकला कि मुहम्मद गोरी ने पहले पृथ्वीराज को और फिर जयचन्द को पराजित किया । पृथ्वीराज की इस पराजय के साथ ही राजपूतो के हाथ से भारत का राज्य निकल गया । भारत पर मुसलमानों का अधिकार हो गया और यह देश उस समय से लेकर 15 अगस्त 1947 ई० तक निरन्तर रूप से परतन्त्र ही रहा ।

पृथ्वीराज पर आक्रमण करने का कारण

तराइन का युद्ध —मुहम्मद गोरी आकाक्षावादी शासक था । वह अपने आपको पजाब का स्वामी समझता था क्योकि यह प्रदेश गज्नी सल्तनत का अङ्ग रह चुका था । उसका दृढ विश्वास था कि यदि उसे अपने मुख्य प्रतिद्वन्दी ख्वारिज्म के शासक का मुकाबला करना है तो पजाब पर अधिकार करना अनिवार्य था । इसके अतिरिक्त

---

1 Dr R S Tripathi History of Kanauj

इन लोगो का कहना है चूंकि पृथ्वीराज प्रबन्ध कोप तथा महाकाव्य मे रोमाचकारी घटना का वर्णन नही है, इसलिए इसे ऐतिहासिक नही माना जा सकता। लेकिन इन ग्रथो मे पृथ्वीराज के जीवन की प्रत्येक घटना का वर्णन नही है इसलिये केवल Negative Evidence के आधार पर इसे काल्पनिक कहना युक्तिसगत नही है।

2 Dr Dasharath Sharma Early Chauhan Dynasties—
PP 96–99

वह एक पवित्र मुसलमान भी था[1]। लेकिन उसका मुख्य ध्येय राजनैतिक विस्तार करना था। मुल्तान, सिंध व पंजाब को विजय कर लेने के पश्चात् मुहम्मद गोरी के राज्य की सीमायें पृथ्वीराज चौहान के राज्य की सीमाओं को छूने लगी थी जो इस समय दिल्ली और अजमेर का स्वामी था। इसी समय नाडोल के हिन्दू राज्य पर विजय कर लेने के पश्चात् मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज चौहान के पास एक दूत भेजा और कहलाया कि वह उसे भेंट दे और उसके सम्मुख उपस्थित हो। पृथ्वीराज ने मुहम्मद गोरी के प्रस्ताव को ठुकरा दिया[2] लेकिन इस समय पृथ्वीराज ने एक भयकर भूल की। उसने गुजरातियो की कोई सहायता नही की और जिसका परिणाम वह निकला कि गुजरात की पराजय के पश्चात् 1191 मे उसको आक्रमणकारी का सामना करना पडा। मुहम्मद गोरी के समान पृथ्वीराज भी धर्म परायण शासक था वह भी मलेच्छो का सहार अपना ध्येय समझता था।[3]

पृथ्वीराज पर आक्रमण करने का कारण

हिन्दू इतिहास लेखको के अनुसार पृथ्वीराज मुहम्मद गोरी को 1192 से पहले सात बार पराजित कर चुका था। लेकिन मुस्लिम इतिहासकारो ने इन दोनो के बीच लडे जाने वाले सिर्फ दो युद्धो का ही वर्णन किया है। डा० दशरथ शर्मा ने अपने अनुसधान ग्रथ 'Early Chauhan Dyansties' मे लिखा है कि तराइन के प्रथम युद्ध से पहले साधारण रूप से मुहम्मद गोरी और पृथ्वीराज के बीच मुडभेडें होती रही होगी, जिनका मुस्लिम इतिहासकारो ने वर्णन नही किया है।

The First battle of Tarain

मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज चौहान के राज्य मे स्थित Tabarhindah के दुर्ग को अपने अधिकार मे कर लिया और 1200 घुडसवारो के नेतृत्व मे उसका प्रबध काजी जियाउद्दीन के हाथो मे सौप दिया। फरिश्ता लिखता है कि पृथ्वीराज अपने 2,00,000 घुडसवार व 3,000 हाथियो को साथ लेकर दिल्ली के शासक गोविन्दराज के साथ मुहम्मद गौरी का मुकावला करने थानेश्वर से 14 मील दूरी पर तराइन नामक स्थान पर पहुँचा। यह गाव जिला करनाल मे आधुनिक करनाल व थानेश्वर के बीच मे स्थित है। दोनो सेनाओ का युद्ध कुरुक्षेत्र की प्रसिद्ध युद्ध भूमि मे हुआ।

---

1 डा० आर्शीवादीलाल श्रीवास्तव के शब्दो मे "He considered it to be his duty to bring the message of Muhammad to the Hindus of India and to put an end to idolatry"

2 Dr Dasharatha Sharma Early Chanhan Dynasties

3 "Prithvi Raj regarded the destruction of the Muslims as his special mission in this world" Dr Dasharatha Sharma, P 81

राजपूतो ने मुसलमानो के दायें व बायें पक्ष पर हमला बोल दिया । मुसलमानो मे भगदड मच गई । मिनहाज सिराज तबकाते-ए-नासिरी मे लिखता है "So great was the agony caused by the injury that the Sultan turned round his charger's head and receded, and might have fallen off his horse and perished in the general melce, had he not been recognised by a Khilji youth who seeing the Sultan's danger, sprang up behind him, and supported him in his arms, carried him of the field of battle The Muslim army had been in the meanwhile utterly routed "

राजपूतो ने 80 मील तक मुसलमानो का पीछा किया । परन्तु वे लोग शीघ्र एक सुरक्षित स्थान पर पहुच गए कि जहाँ थोडी देर बाद सुल्तान भी आ पहुचा "इससे पूर्व मुसलमानो को विधर्मियो के हाथ ऐसी पराजय का सामना नही करना पड़ा था ।" (डा० ईश्वरीप्रसाद)

पृथ्वीराज ने मुस्लिम सेना का पीछा करना छोडकर एक बहुत भारी गल्ती की, उसने मुसलमानो को पुन सगठित हो जाने का अवसर प्रदान किया । भागे हुये शत्रु का पीछा नही करना हिन्दू शास्त्रो मे अवश्य लिखा है । परन्तु यह कथन अब पुराना हो चुका था । इसका दु खद परिणाम यह निकला मुहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज की गफलत का पूरा फायदा उठाया और उसे तराइन के युद्ध क्षेत्र मे ही अगले वर्ष बुरी तरह पराजित किया ।

The Second battle of Tarain

Firuz Kuh मे कुछ महीने अपने भाई के साथ बिताने के पश्चात् मुहम्मद गौरी गजनी लौट गया और वहा से 1,20,000 तुर्की, अफगान और ताजिक घुड-सवारो की सुसगठित सेना लेकर पृथ्वीराज का मुकाबला करने के लिए भारत की तरफ रवाना हुआ । लाहौर पहुचने के बाद उसने किवाम उल-मुल्क को पृथ्वीराज के पास अपना दूत बनाकर भेजा । पृथ्वीराज को इस्लाम स्वीकार कर लेने का भी सदेश भिजवाया था । (See Early Chauhan Dynasties P 85)

गौरी ने बेखबर पृथ्वीराज पर हमला बोल दिया

भटिंडा होता हुआ पृथ्वीराज फरिश्ता के अनुसार 3 लाख घुडसवार व 3000 हाथी लेकर तराइन के युद्ध क्षेत्र में 1192 में आ गया । युद्ध शुरू होने से पहले पृथ्वीराज ने गौरी के पास एक पत्र भी लिखा था जिसमे उसको धमकी दी गई थी कि यदि उसने अपना मु ह वापस गजनी की तरफ नही मोडा तो उसे नष्ट भ्रष्ट कर दिया जायगा । फरिश्ता लिखता है कि इस पत्र का मुहम्मद गौरी ने बडा मु ह तोड जवाब दिया । लेकिन मुहम्मद उतबी के द्वारा

लिखी हुई पुस्तक **"जमीउल हकीकत"** को पढने से पता चलता है कि मुहम्मद गोरी ने बडी सतर्कता के साथ प्रस्थान किया था और जब वह पृथ्वीराज की सेना के सामने पहुचा तो उस समय पृथ्वीराज सो रहा था। राजपूत सैनिक नित्यकर्म के लिये जा चुके थे। इस प्रकार मुहम्मद गोरी ने बेखबर शत्रु पर प्रहार किया और उसके प्रहार का प्रकोप दिन मे 3 बजे अपनी चरम सीमा पर पहुच गया। नतीजा यह निकला कि राजपूत सैनिक बुरी तरह पराजित हुये। इतिहासकार **हसन निजामी** लिखता है कि लगभग एक लाख राजपूत सैनिक मारे गये जिनमे दिल्ली का गोविन्दराज भी था। पृथ्वीराज का पीछा किया गया और उसे सरस्वती (आधुनिक सिरसा) के निकट पकड लिया गया।

तबकाते ए नासिरी का लेखक मिनहाज सिराज लिखता है कि पृथ्वीराज को तुरन्त मौत के घाट उतार दिया गया था। लेकिन **हसन निजामी** लिखता है कि उसे गिरफ्तार करके अजमेर ले जाया गया जहा उसका देश द्रोह के अपराध मे कुछ समय बाद वध कर दिया गया। **'प्रबन्ध चिन्तामणि'** नामक ग्रथ को पढने से पता चलता है कि मुहम्मद गोरी पृथ्वीराज को वापस गद्दी देना चाहता था। लेकिन वह बाद मे नाराज हो गया था और उसे मृत्यु दण्ड दिया।

डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने ठीक ही लिखा है—"The second battle of Tarain is landmark in the history of India" यह एक निर्णायक युद्ध था जिसने भारत मे मुस्लिम राज्य की स्थापना को दृढ किया। हिन्दू मन्दिरो को तोडा गया और इस्लाम को राज्यधर्म के रूप स्वीकार किया गया। तराइन की पराजय के बाद पृथ्वीराज चौहान भारत का महान् शासक नही रहा।

Results of the Battle of Tarain

पृथ्वीराज की मृत्यु —तराइन के युद्ध मे पराजित हो जाने के बाद पृथ्वीराज को तुरन्त मौत के घाट नही उतारा गया था। उसे बन्दी बनाया गया। बन्दी बनाने के पश्चात भी मुहम्मद गोरी और पृथ्वीराज के सयुक्त नाम से सिक्के जारी होते रहे।[1] लेकिन पृथ्वीराज की मलेच्छो के प्रति घृणा कम नही हुई और वह उनके विनाश की युक्तियाँ सोचने लगा। अत उसके विरुद्ध षडयन्त्र का अपराध लगाकर मार डाला गया।[2]

---

1 See Thomas —Chronicles of the Pathan Kings of Delhi P P 17–18

2 Hasan Nizami —Taju-l-Maasir, English translation in Elliot's History of India, Vol II, P 215 पृथ्वीराज प्रबन्ध (Ms) मे भी पृथ्वीराज की मृत्यु षडयन्त्र द्वारा बताई गई है। यह ग्रथ पन्द्रहवी शताब्दी से पहले का लिखा हुआ है।

पृथ्वीराज की मृत्यु के पश्चात सपालदक्ष के प्रदेश पर मुसलमानो का अधिकार हो गया । इस राजा के प्रसिद्ध झासी, सरस्वती, सभाना और कुहराम के किले सुगमता से मुसलमानो के अधिकार मे आ गये ।

पृथ्वीराज का मूल्याकन —मध्यकालीन भारत के इतिहास का पृथ्वीराज चौहान अन्तिम हिन्दू सम्राट था । राज्याभिषेक के समय मे उसे विरासत मे आपत्तिया ही प्राप्त हुई थी । चौहान और चालुक्यों का सघर्ष उसके पूर्वजो की विरासत थी । मुसलमानो का प्रवेश उसके जन्म से लगभग दो शताब्दी पूर्व ही राजस्थान मे हो चुका था और उसके पूर्वज उनके विरुद्ध लोहा ले चुके थे । दिग्विजय की कल्पना वैसे प्राचीन वैदिक सस्कृति का एक अग है लेकिन पृथ्वीराज के पूर्व सपालदक्ष के चौहान राज्य के उत्तर और पश्चिम दिशा मे विकास करने का पहले से ही प्रयत्न करते आये थे । अत यदि पृथ्वीराज को चन्देलो, चालुक्यो और भडानको के विरुद्ध निरतर युद्ध करने पडे, तो कोई नई बात नही थी जिसके लिये उसे दोषी ठहराया जा सके । जयचन्द के साथ सघर्ष सैद्धान्तिक था ।

पृथ्वीराज केवल एक विजेता ही नही था, वह साहित्यकारो का आश्रय-दाता भी था । 'पृथ्वीराज विजय' का रचयिता **जयनक** उसके दरबार मे रहता था विद्यापति, जनार्दन, विश्वरूप और पृथ्वीभाट (जिसे कुछ लेखको ने पृथ्वीराज रासो के रचयिता चन्द्र बरदाई) का ही पर्यायवाची नाम माना है, उसके दरबार मे रहते थे और उन्हे पृथ्वीराज के मत्री **पद्मनाभ** के द्वारा सरक्षण दिया जाता था ।

राज्योचित व्यक्तित्व और गुण होते हुये भी पृथ्वीराज ने कुछ ऐसी भूले की थी जिनके कारण उसकी पराजय और सपालदक्ष राज्य का अन्त हुआ । जिस समय भारत के द्वार को मुहम्मद गौरी की आक्रमणकारी सेनाए खटखटा रही थी उस समय पृथ्वीराज अपने चाचा विग्रहराज के पद चिन्हो का अनुसरण करके दिग्विजयी बनने का स्वप्न देख रहा था । उसने जयचन्द के साथ सम्बन्ध बिगाड लिये थे, उसे ऐसे वक्त पर जयचन्द के साथ सम्बन्ध नही बिगाडने चाहिये थे । अत यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण नही होगा कि वश-परम्परागत नीति का अनुसरण करने मे पृथ्वीराज ने अपने पतन का माग प्रशस्त कर लिया था । इसके अलावा पृथ्वीराज ने मुहम्मद गौरी का मुकाबला करने मे भी एक दूरदर्शी सफल सेनानायक के गुणो का परिचय नही दिया । तराइन के युद्ध मे मुहम्मद गौरी ने उसे उस समय दबोचा था जब वह सो रहा था । उसने कभी भी मुहम्मद गौरी की शक्ति का सही मूल्याकन करने का प्रयत्न नही किया, जिसका दुष्परिणाम यह निकला कि उसी मुहम्मद गौरी ने उसे मौत के घाट उतार दिया जिसे अपनी अन्तिम पराजय से केवल एक वर्ष पूर्व ही उसने छोड दिया था ।

> **पृथ्वीराज के पतन का मूल कारण उसकी महत्वाकांक्षा थी**

पृथ्वीराज चौहान के उत्तराधिकारी —पृथ्वीराज चौहान के पश्चात उसके पुत्र गोविन्द को अजमेर का उत्तराधिकारी बना दिया गया। गोविन्द ने मुसलमानो का आधिपत्य स्वीकार करने मे ही भलाई सोची थी लेकिन कुछ चौहान सरदार गोविन्द की इस नीति से सहमत नही थे। वे इसे 'कायरता की नीति' समझते थे। अत पृथ्वीराज के भाई हरीराजा के नेतृत्व मे विद्रोह हुआ और हरीराजा ने शक्ति अपने हाथ मे लेली। हरी राजा के नेतृत्व मे चौहानो ने मुसलमानो के पांव उखाड़ने के फिर से प्रयत्न किये। इसमे इन्हें सफलता प्राप्त नही हुई। जिस समय मुहम्मद गौरी कन्नौज, आसनी, बनारस और कोल को विजय करने मे लगा हुआ था उस समय हरीराजा ने दिल्ली पर अधिकार करने का पुन असफल प्रयास किया था। अन्त मे निराश हरीराजा ने अग्नि की ज्वाला मे भस्म होकर अपना अन्त कर लिया (वैशाख वदी 8 वि स 1251 मे उसने आत्महत्या की थी)। उसकी मृत्यु के साथ ही सपालदक्ष के चौहानो का पाच शताब्दी पुराने सघर्षमय इतिहास का अन्त हो गया।

Chauhan's of Ranthambhor —पृथ्वीराज की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र गोविन्द ने कुतुबुद्दीन ऐबक के साथ सधि कर ली थी। लेकिन कतिपय चौहान सरदारो को यह पसन्द नही आया और उन्होने पृथ्वीराज के भाई हरीराजा को अजमेर व दिल्ली का स्वामी स्वीकार किया। अत गोविन्द रणथम्भोर चला गया और वहा उसने नये वश की स्थापना की।

गोविन्द की मृत्यु के बाद उसका पुत्र वल्हन भी दिल्ली के मुसलमान सुल्तानो के प्रति मित्रतापूर्ण नीति का अनुसरण करता रहा।[1]वल्हन का पुत्र और उत्तराधिकारी प्रह्लादना अधिक समय तक राज्य नही कर सका। अत प्रह्लादना का अल्प व्यस्क पुत्र वीर नारायण अपने चाचा वागभट्ट के संरक्षण मे रणथम्भोर का शासक बना। वीर नारयण को मुसलमानों के साथ सघर्ष का प्रारम्भ सिंहासनारूढ होने के साथ ही साथ करना पडा।[2] अन्त मे इल्तुतमिश ने चालाकी से काम लिया और वीर नारायण को विष देने के पश्चात रणथम्भोर इल्तुतमिश के अधिकार में चला गया।[3] इल्तुतमिश की मृत्यु के पश्चात उसके निर्बल उत्तराधिकारियो के शासन काल मे वीरनारायण के चाचा वागभट्ट ने रणथम्भोर को पुन अपने अधिकार मे ले लिया (1236 ई०)। उसे अपने जीवन काल मे दो बार मुस्लिम आक्रमणकारी सेनाओ का सामना करना पडा। बारह वर्ष शासन करने के बाद

> **वीर नारायण प्रतिभाशाली शासक हुआ है।**

---

1 मगलाना प्रस्तर शिलालेख जेष्ठवदी 11, वि० स० 1162

2 वीर नारायण कच्छाहा वश की राजकुमारी के साथ विवाह करने अजमेर जा रहा था तो मुसलमानो ने उस पर प्रहार किया।

3 तबकाते नासिरी के अनुसार इल्तुतमिश का अधिकार 1226 ई० मे हो गया था—Elliot & Dawson, Vol II, P P 324-25

1253 ई० मे वागभट्ट मृत्यु को प्राप्त हुआ ।[1] उसके प्रतिद्वन्दी मुसलमान भी उसे हिन्दुस्तान के महान शासको मे समझते थे ।[2]

वागभट्ट की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र जैत्रसिंह रणथम्भौर का शासक बना। जैत्रसिंह को केवल मुस्लिम आक्रमणकारियो का ही सामना नही करना पडा बल्कि इसने अमरापुरी के कछवाहा शासक को भी पराजित किया था। इसने परमारो के विरुद्ध भी युद्ध किया था।

जैत्रसिंह ने अपने जीवन काल मे ही अपने तृतीय पुत्र हम्मीर का माघ सुदि 15, वि स 1339 रविवार के दिन राज्याभिषेक सस्कार सम्पन्न किया था। इसके लगभग 3 वर्ष पश्चात् उसने अपना पार्थिव शरीर त्याग दिया।

Hammira Chouhan of Ranthambhore

जैत्रसिंह का उत्तराधिकारी हम्मीर रणथम्भौर के चौहान शासको मे अन्तिम और महानतम शासक हुआ है। इसके शासन-काल का इतिहास जानने के साधन प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। बलवन और गढा से प्राप्त शिलालेखो से इसके सम्बन्ध मे काफी जानकारी प्राप्त होती है। न्यायचन्द सूरी का **हम्मीर महाकाव्य** भी इसके बारे मे काफी ज्ञान कराता है। समकालीन मुस्लिस लेखको–**अमीर खुसरो और बरनी** ने भी इसका अलाउद्दीन के साथ हुए सघर्ष का विस्तृत वर्णन दिया है। जोधराज के **हम्मीर रासो** और चन्द्रशेखर का **हम्मीर हठ** यद्यपि समकालीन ग्रथ नही है फिर भी इसकी वीरता का बखान करते हैं।

इतिहास जानने के साधन

'**हम्मीर महाकाव्य**' का रचयिता लिखता है कि राज्याभिषेक के तुरन्त पश्चात् हम्मीर भी अपने पूर्वजो के समान दिग्विजय की कामना करने लगा। उसने भीमरासा के शासक अर्जुन को पराजित किया और उससे भेंट ली, माडलगढ के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। वह उज्जैन और धार तक पहुँच गया था। परमार शासक भोज को पराजित किया। चित्तौड, आबू, पुष्कर, महाराष्ट्र और चम्पा के शासक उसका आधिपत्य स्वीकार करते थे। इन दिग्विजयो के पश्चात् हम्मीर ने भारतीय आदर्श की परम्परा के अनुसार अश्वमेध यज्ञ के समान **कोटि–यज्ञ** किया। बलबन शिलालेख के अनुसार उसने दो कोटि यज्ञ किये थे।

हम्मीर की विजय

---

1 1248 व 1253 मे मुस्लिम सेनाओ ने रणथम्भौर पर आक्रमण किया। हम्मीर महाकाव्य के अनुसार 1253 मे वागभट्ट की मृत्यु हुई।

2 "The greatest of the Rais, and the most noble and illustrious of all the princes of Hindustan" Tarqat–I–Nasiri, Elliot's Eng Trans, Vol II, Page 370

1288 ई० तक हम्मीर के आक्रमणकारी अभियान तो समाप्त हो गये थे, लेकिन फिर भी हम्मीर को अपने अन्तिम वर्षों मे मुस्लिम आक्रमणकारी सनाओ का सामना करना पडा। जलालउद्दीन खिलजी के शासनकाल मे दिल्ली सल्तनत की सेनाएँ 1290 ई० मे रणथम्भोर के निकट झैन तक आगई थी। इस आक्रमण ने अलाउद्दीन खिलजी के अभियान का मार्ग प्रशस्त किया। 1299–1300 मे खिलजी सेनाओ ने रणथम्भोर पर उस समय धावा बोल दिया जिस समय हम्मीर धार्मिक अनुष्ठान मे लगा हुआ था। मुस्लिम सेनाओ का मुकाबला करते हुए हम्मीर का सेनानायक भीमसिंह मारा गया। इसी समय हम्मीर का भाई भोज उससे असन्तुष्ट होकर सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के दरबार मे चला गया। अलाउद्दीन ने उसका स्वागत किया।

हम्मीर के दिल्ली सल्तनत के साथ सम्बन्ध

अलाउद्दीन खिलजी ने बयाना के किलेदार उलुगखा और अपने एक विश्वासपात्र सेनानायक नुसरतखा के नेतृत्व मे पुन सेनायें रणथम्भोर पर अधिकार करने के लिए भेजी। जब अलाउद्दीन सैनिक सफलता सुगमता से प्राप्त नही कर सका तो उसने हम्मीर के सेनानायक रणमल्ल को तोड लिया। रणमल्ल के साथ हम्मीर का दूसरा सेनानायक रतीपाल भी शत्रु से जा मिला। हम्मीर की स्त्रियो ने जौहर किया और राजपूतो ने केसरिया बाना धारण करके शत्रु के साथ जूझ कर युद्ध किया। अन्त मे विजयश्री अलाउद्दीन की रही। 10 जुलाई 1301 ई० के दिन किला मुसलमानो के अधिकार मे आ गया अलाउद्दीन ने रणथम्भोर के किले का प्रबन्ध उलुगखाँ को सौंप दिया।

हम्मीर ने चालाकी से रणथम्भोर के दुर्ग पर अधिकार किया

हम्मीर का मूल्याकन—हम्मीर की पराजय के साथ रणथम्भोर के चौहानो का अन्त हो गया। उसकी पराजय का मूल कारण यह था कि उसे आदमी की ठीक से पहचान नही थी। उसके विश्वासपात्र मन्त्रियो ही ने उसे धोखा दिया, जिसके कारण रणथम्भोर का पतन हुआ। इसके अतिरिक्त वह अपने अन्तिम दिनो मे अप्रिय भी हो गया था क्योकि निरन्तर खिलजी आक्रमणो के कारण उसे जनता पर अधिक कर लगाने पडे थे।

न्यायचन्द्र सूरी ने हम्मीर का ब्राह्मणो के प्रति सत्कार तथा भारतीय दर्शन को प्रोत्साहन की अपने महाकाव्य मे भूरि-भूरि प्रशसा की है। कवि बीजादित्य उसके दरबार मे रहता था। इस प्रकार हम्मीर केवल एक वीर सेनानायक ही नही अपितु साहित्यकारो का आश्रयदाता भी था।

हम्मीर राजपूत परम्परा का एक अद्वितीय आदर्श था जिसने इस कहावत को चरितार्थ करके दिखा दिया "प्राण जाइ पर वचन न जाई"। अलाउद्दीन के अपराधी मुहम्मदशाह को शरण देकर उसने खिलजी सुल्तान के रोष को भटका दिया था

जिसका परिणाम उसका अन्त हुआ । लेकिन हम्मीर ने अपने वचन का पालन करने मे सहर्ष अपने जीवन की भी बलि दे दी ! आज भी राजस्थानी लोक गीत उसकी प्रशसा मे गाते हैं —

"सिह–सवन सत्पुरुष वचन कदलन टलत एक बार ।
तिरिया–तेल हम्मीर हठ चढे न दूजी बार ।।"

Other Branches of Chauhans

रणथम्भौर के समान राजस्थान के अन्य भागो मे भी चौहानो के राज्य थे । नाडोल के चौहान राज्य की स्थापना रावल लक्ष्मण के द्वारा ग्यारहवी शताब्दी मे

नाडोल के चौहान

की गई थी, तेरहवी शताब्दी मे [1231 ई० से पहले] नाडोल के राज्य पर जालोर के चौहान शासक उदयसिह का अधिकार हो गया ।

जालोर मे भी कीर्तपाल के द्वारा चौहान वश का स्वतन्त्र राज्य 1160 ई० के लगभग स्थापित किया गया था । तृतीय शासक उदयसिह के शासन काल मे जालोर

जालोर के चौहान

का राज्य अपनी चरम सीमा पर पहुच गया था । यह जालोर के शासको मे महानतम शासक था । उदयसिह की तीसरी पीढी मे कन्हडदे जालोर का शासक हुआ । इसके शासन काल मे अलाउद्दीन खिलजी ने जालोर पर आक्रमण किया था । अलाउद्दीन की सेनाओ की विजय के साथ ही जालोर के चौहान वश का भी अन्त हो गया । जालोर के चौहानो के Feudatory अधीनस्थ सत्यपुरा (वर्त्तमान साचोर) मे शासन करते थे ।

चन्द्रावती और आबू मे भी चौहानो के देवडा शाखा के स्वतन्त्र राज्य थे । पन्द्रहवी शताब्दी के अन्तिम चरण मे चन्द्रावती और आबू के राज्य सयुक्त हो गये

सीरोही के देवडा चौहान

और सिरोही के राज्य की स्थापना हुई । सिरोही पर देवडा वश के चौहान शासक 1950 तक शासन करते रहे ।

Life in Chauhan Dominions

प्राचीन भारत के अन्य हिन्दू शासको के समान राजस्थान के चौहान भी सर्व शक्तिमान शासक थे । लेकिन यह निरकुश शासक नही थे । प्रचलित परम्परा के

चौहानो का प्रशासन

अनुसार राजा को अपने मन्त्री से प्रत्येक प्रश्न पर सलाह लेनी पडती थी । पाच मन्त्री होते थे —

(i) महामन्त्री अथवा महामात्य
(ii) सेनापति अथवा दडनायक

(iii) सधि विग्रह

(iv) कवियो और पडितो की देखभाल करने वाला मन्त्री और

(v) पौराणिक ।

लेकिन मन्त्रियो की सलाह मानना शासक के लिये अनिवाय नही था । इन मन्त्रियो के अतिरिक्त कुछ अन्य कर्मचारी भी होते थे। चौहानो के विभिन्न शिलालेखो मे उनके नाम इस प्रकार लिखे हुए मिलते हैं —

(i) दूतक

(ii) पुरोहित और व्यास

(iii) प्रतिहार

(iv) भाडारिक और

(v) खडगग्रह ।

चौहानो के राज्य का जब विस्तार हो गया तो उन्होने प्रशासन की सुविधा की दृष्टि से अपने राज्य को विषयो मे बाँट दिया था । विषय ग्रामो में विभक्त थे ।

चौहान शासको के 'सामन्त' भी थे जो ठाकुर, राणाका और भोक्ता के नाम से सम्बोधित किये जाते थे ।

Local-Self Government

चौहान शासको ने अपने राज्यो मे प्रजा को स्थानीय स्वायत्त शासन के अधिकार प्रदान कर रखे थे । प्रत्येक ग्राम मे नागरिको की एक साधारण सभा होती थी जिसे महाजन कह कर पुकारा जाता था । इसकी अनुमति से ही नये कर लगाये जाते थे। राजा महाजन का आदर करता था अत जन-साधारण महाजन का सदस्य बनना गर्व के माथ स्वीकार करती थी । महाजन यदि, चाहें तो अपनी शक्ति पाच व्यक्तियो की एक सभा को हस्तातरित कर सकती थी । यह सभा पचकुल कहलाती थी । इस प्रकार चौहान शासन काल मे स्थानीय स्वराज्य सस्थाओ को प्रोत्साहित किया गया । यह सस्थायें अप्रत्यक्ष रूप से शासक पर नियत्रण रखती थी, और राजा निरकुश नही हो सकता था ।[1]

चौहानो का पुलिस, मिलिटरी, न्यायिक व रेवेन्यू प्रशासन पूर्ण रूप से सुव्यवस्थित था । यद्यपि उनके मिलिटरी प्रबन्ध मे कुछ स्पष्ट दोष थे लेकिन यह विवादास्पद प्रश्न है कि उस युग मे उमसे अधिक अच्छा कोई प्रबन्ध नहीं हो सकता था ।

अधिकाश चौहान शासक शिवधर्म के अनुयायी थे । लेकिन यह जैनधम के

---

1 "The self governing groups upon which the State was founded formed a vast subterranean democracy limiting the absolutism of the sovereign at the top" —Dr R K Mukerjee

प्रति सहिष्णु दृष्टिकोण रखते थे। इसी कारण जैन धर्म का उत्सर्ग एव विकास राजस्थान मे हुआ।[1] ब्राह्मणो का प्रभुत्व था। अत ब्रह्मा और शक्ति की पूजा साधारण बात थी। कतिपय चौहान शासक शक्ति के भी पुजारी थे। इस प्रकार पाच शताब्दी के चौहान राज्य के अन्तर्गत राजस्थान मे विभिन्न धर्मों का प्रचार हुआ।

चौहान शासक धर्म परायण थे

सामाजिक दशा —राजस्थान मे जाति-प्रथा का समाज मे प्रभाव था। मुसलमानो के आगमन के साथ-साथ जाति प्रथा के बन्धन ढीले पडने लगे लेकिन फिर भी राजपूतो के सामाजिक सगठन मे जाति प्रथा का पर्याप्त प्रभाव बना रहा।

राजपूती समाज मे स्त्रियो का उतना ही महत्वपूर्ण स्थान था जितना कि जातिवाद का। राजपूतानी केवल अपनी वीरता, त्याग और बलिदान के लिये ही प्रसिद्ध नही थी, बल्कि राजपूत नारियो ने अपने अल्पव्यस्क सतानो की सरक्षिका (Reagent) के रूप मे राज्यो का प्रशासन भी सभालती थी। पृथ्वीराज तृतीय की माता कर्पूरदेवी उसकी अल्प-अवस्था (Mininority) के काल मे सरक्षिका रही थी।

राजपूत समाज में स्त्री-पुरुष दोनो ही आभूषणो का प्रयोग करते थे। उनका भोजन और पोशाक साधारण थी। वे मेलो मे भाग लेने थे। वे उपवास करते थे और धर्म-यात्रा करने के अभ्यस्त थे।

कतिपय चौहान शासक स्वय साहित्यकार थे। उनके द्वारा लिखे हुए ग्रथ अब भी उपलब्ध है। जो स्वय विद्वान नही थे वह भी साहित्यकारो और विद्वानो के आश्रयदाता थे। इनके शासन-काल मे जनसाधारण की शिक्षा को भी प्रोत्साहन दिया जाता था। सपालदक्ष के चौहानो ने अजमेर मे सरस्वती कठाकरण नामक सस्कृत विद्यालय स्थापित किया था। अतएव इनके काल मे काव्य एव रासो ग्रथो की काफी अधिक सख्या मे रचना हुई। अजमेर के अतिरिक्त चित्तौड, आबू और भीनमाल भी शिक्षा के केन्द्र थे। डा० दशरथ शर्मा ने अपनी पुस्तक मे 85 विषय गिनाये हैं जो चौहान काल मे पढाये जाते थे।[2]

चौहान विद्वानो के आश्रयदाता थे

चौहानो का राज्य लगभग समस्त राजस्थान के प्रदेश पर था अत प्रतिभाशाली चौहान शासको के द्वारा कई कस्बे और गाव भी बसाये गये। यातायात के साधनो को

---

1 See Dr K C Jain Jainism in Rajasthan
& Dr Dasharath Sharma Early Chauhan Dynasties,
P P 221–229

2 Dr Dasharatha Sharma Early Chauhan Dynasties,
P 249–95

(iii) संधि विग्रह
(iv) कवियो और पंडितो की देखभाल करने वाला मन्त्री और
(v) पौराणिक ।

लेकिन मन्त्रियो की सलाह मानना शासक के लिये अनिवार्य नही था। इन मन्त्रियो के अतिरिक्त कुछ अन्य कर्मचारी भी होते थे। चौहानो के विभिन्न शिलालेखो मे उनके नाम इस प्रकार लिखे हुए मिलते हैं —

(i) दूतक
(ii) पुरोहित और व्यास
(iii) प्रतिहार
(iv) भाडारिक और
(v) खडगग्रह ।

चौहानो के राज्य का जब विस्तार हो गया तो उन्होने प्रशासन की सुविधा की दृष्टि से अपने राज्य को विषयो मे बाँट दिया था। विषय ग्रामो में विभक्त थे।

चौहान शासको के 'सामन्त' भी थे जो ठाकुर, राणाका और भोक्ता के नाम से सम्बोधित किये जाते थे।

Local-Self Government

चौहान शासको ने अपने राज्यो मे प्रजा को स्थानीय स्वायत्त शासन के अधिकार प्रदान कर रखे थे। प्रत्येक ग्राम मे नागरिको की एक साधारण सभा होती थी जिसे महाजन कह कर पुकारा जाता था। इसकी अनुमति से ही नये कर लगाये जाते थे। राजा महाजन का आदर करता था अत जन-साधारण महाजन का सदस्य बनना गर्व के साथ स्वीकार करती थी। महाजन यदि, चाहें तो अपनी शक्ति पाच व्यक्तियो की एक सभा को हस्तांतरित कर सकती थी। यह सभा पचकुल कहलाती थी। इस प्रकार चौहान शासन काल मे स्थानीय स्वराज्य सस्थाओ को प्रोत्साहित किया गया। यह सस्थायें अप्रत्यक्ष रूप से शासक पर नियंत्रण रखती थी, और राजा निरकुश नही हो सकता था।[1]

चौहानो का पुलिस, मिलिटरी, न्यायिक व रेवेन्यू प्रशासन पूर्ण रूप मे सुव्यवस्थित था। यद्यपि उनके मिलिटरी प्रबन्ध मे कुछ स्पष्ट दोष थे लेकिन यह विवादास्पद प्रश्न है कि उस युग मे उससे अधिक अच्छा कोई प्रबन्ध नही हो सकता था।

अधिकाश चौहान शासक शिवधर्म के अनुयायी थे। लेकिन यह जैनधर्म के

1 "The self governing groups upon which the State was founded formed a vast subterranean democracy limiting the absolutism of the sovereign at the top" —Dr R K Mukerjee

प्रति सहिष्णु दृष्टिकोण रखते थे। इसी कारण जैन धर्म का उत्सर्ग एव विकास राजस्थान मे हुआ।[1] ब्राह्मणो का प्रभुत्व था। अत ब्रह्मा और शक्ति की पूजा साधारण बात थी। कतिपय चौहान शासक शक्ति के भी पुजारी थे। इस प्रकार पाच शताब्दी के चौहान राज्य के अन्तर्गत राजस्थान मे विभिन्न धर्मों का प्रचार हुआ।

चौहान शासक धर्म परायण थे

सामाजिक दशा —राजस्थान मे जाति-प्रथा का समाज मे प्रभाव था। मुसलमानो के आगमन के साथ-साथ जाति प्रथा के बन्धन ढीले पडने लगे लेकिन फिर भी राजपूतो के सामाजिक सगठन मे जाति प्रथा का पर्याप्त प्रभाव बना रहा।

राजपूती समाज मे स्त्रियो का उतना ही महत्वपूर्ण स्थान था जितना कि जातिवाद का। राजपूतानी केवल अपनी वीरता, त्याग और बलिदान के लिये ही प्रसिद्ध नही थी, बल्कि राजपूत नारियो ने अपने अल्पव्यस्क सतानो की सरक्षिका (Reagent) के रूप मे राज्यो का प्रशासन भी सभालती थी। पृथ्वीराज तृतीय की माता कर्पूरदेवी उसकी अल्प-अवस्था (Mininority) के काल मे सरक्षिका रही थी।

राजपूत समाज मे स्त्री-पुरुष दोनो ही आभूषणो का प्रयोग करते थे। उनका भोजन और पोशाक साधारण थी। वे मेलो मे भाग लेने थे। वे उपवास करते थे और धर्म-यात्रा करने के अभ्यस्त थे।

कतिपय चौहान शासक स्वय साहित्यकार थे। उनके द्वारा लिखे हुए ग्रथ अब भी उपलब्ध है। जो स्वय विद्वान नही थे वह भी साहित्यकारो और विद्वानो के आश्रय-दाता थे। इनके शासन-काल मे जनसाधारण की शिक्षा को भी प्रोत्साहन दिया जाता था। सपालदक्ष के चौहानो ने अजमेर मे सरस्वती कठाकरण नामक सस्कृत विद्यालय स्थापित किया था। अतएव इनके काल मे काव्य एव रासो ग्रथो की काफी अधिक सख्या मे रचना हुई। अजमेर के अतिरिक्त चित्तौड, आबू और भीनमाल भी शिक्षा के केन्द्र थे। डा० दशरथ शर्मा ने अपनी पुस्तक मे 85 विषय गिनाये हैं जो चौहान काल मे पढाये जाते थे।[2]

चौहान विद्वानो के आश्रयदाता थे

चौहानो का राज्य लगभग समस्त राजस्थान के प्रदेश पर था अत प्रतिभाशाली चौहान शासको के द्वारा कई कस्बे और गाव भी बसाये गये। यातायात के साधनो को

---

1 See Dr K C Jain Jainism in Rajasthan
& Dr Dasharath Sharma Early Chauhan Dynasties,
P P 221–229

2 Dr Dasharatha Sharma Early Chauhan Dynasties,
P 249–95

सुगम बनाने का प्रयत्न किया गया जिससे व्यापार और वाणिज्य की उन्नति हुई। आवश्यकता की सभी वस्तुयें सुलभ थी एव मूल्य मे उपलब्ध थी ।[1]

साभर झील के कारण सपालदक्ष के शासक धनी बने थे । कतिपय चौहान शासको ने पडोसियो की सम्पत्ति को भी लूटा था । साराश यह है कि चौहान काल मे राजस्थान की आर्थिक स्थिति सतोषप्रद थी ।

BIBLIOGRAPHY

1 Dr Dasharatha Sharma Early Chauhan Dynasties
2 Prof Mohd Habib Khaza-ul-Futuh (English Trans)
3. Dr K S Lal . History of Khiljis
4 डा० अतहर अब्बास रिजवी (i) आदि तुर्ककालीन भारत
(ii) खिलजीकालीन भारत
5 कवि पद्मनाभ . कान्हडदे प्रबन्ध
6 डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा : राजपूताने का इतिहास भाग I

---

1 See Prices of Commodities in Early Chauhan Dynasties at Page 30.

5

राजपूतो की पराजय के कारण

(Causes of the Defeat of Rajputs)

राजपूत वीर एव दुर्धर्ष योद्धा थे। मृत्यु का सहर्ष आलिंगन करते थे।[1] युद्ध क्षेत्र मे वीर गति प्राप्त करना अपना सौभाग्य समझते थे[2]। राजपूत सैनिको की सख्या भी मुसलमान सैनिको से कम नही थी। व्यक्तिगत शौर्य में राजपूत सैनिक

---

1 "There is not a petty state in Rajasthan that has had its Thermopylae and scarcely a city that has not produced its Leonidas" Tod, Vol I–Introduction Col C K M Walter writes, "The Rajput may well be proud of their ancient chivalry, for in no country in the world have we such a brave and glorious record, as is to be found in the description of those deeds of valour, which the Rajputs enacted in defence of their religious liberty and for the protection of their hearths and homes"

"राजस्थान मे ऐसा कोई छोटा राज्य नही है कि जिसमे थर्मोपली जैसी रणभूमि न हो और शायद ही कोई ऐसा नगर किले, लियानिडास के समान मातृभूमि पर बलिदान होने वाला वीर पुरुष उत्पन्न न हुआ।" (टॉड) "राजपूतो को अपने प्राचीन शौर्य पर गर्व करना सर्वथा उचित ही है। अपने धर्म की स्वाधीनता तथा कुल-मर्यादा की रक्षा के लिये राजपूतो ने जो वीर कार्य किये हैं तथा अपने वीरत्व व गौरव जैसा परिचय दिया है वैसा विश्व के किसी अन्य देश के इतिहास मे नही मिलता।"

—कर्नल वाल्टर

2 "A Rajput is condemned as a Kaput (Worthless son) who fails to retaliate or die in the attempt His very birth as a Rajput puts him under a debt, and his debt is to die (Marne Ka Rin) in Vindication of his personal and family honour in the first instance, and for his **Kula** and **gotra** whenever the call would come The debts of salt is also repayable by laying down life for the pay-master, no matter of whatever Country or Creed"

—Dr K R Quanungo *Studies in Rajput History*, P 68

राजपूतो की पराजय के यह कारण नहीं थे कि वे गर्म देश के निवासी थे अथवा युद्ध क्षेत्र मे हाथियो का प्रयोग करते थे ।

मुसलमानो से किसी रूप से कम नही थे । उन्हे धन-धान्य की कमी नही थी[1] । फिर भी राजपूत मुसलमानो द्वारा पराजित हो गये, यह आश्चर्य की बात है । यह कहना पर्याप्त नही होगा कि चूकि राजपूत गर्म देश के निवासी थे अत वे मुसलमानो की अपेक्षा कम सहनशील थे । काबुल के शाहिये भी प्राय वैसी ही जलवायु मे रहते थे जैसी गजनी की थी । इसी तरह यह भी कहा जाता है कि युद्ध-क्षेत्र मे हाथियो के प्रयोग के कारण राजपूतो की पराजय हुई । परन्तु महमूद गजनवी ने अपने मध्य एशियाई शत्रुओ के विरुद्ध हाथियो का प्रयोग करके ही विजय प्राप्त की थी । इसी प्रकार यह कहना भी सर्वथा पर्याप्त नही है कि पारस्परिक फूट के कारण राजपूतो की पराजय हुई । जिस प्रकार भारतवर्ष मे राजपूतो के अनेक राज्य थे उसी प्रकार मध्य एशिया और अफगानिस्तान मे भी मुसलमानो के अनेक राज्य थे जो एक दूसरे का नाश करने की टोह मे रहते थे । अत राजपूतो की पराजय के वास्तविक कारण अन्यत्र खोजने होगे ।

(1) **सैनिक कारण**—तुर्कों की अपेक्षा राजपूतो के सैनिक साधन उपयुक्त नही थे । उदाहरण के लिए राजपूतो के पास अच्छी नस्ल के घोडे नही थे । अत उनकी

राजपूतो के पास अच्छी नस्ल के घोडे नहीं थे

सेना मे घुडसवारो की अपेक्षा पैदल सवारो की सख्या अधिक होती थी । इसके अलावा राजपूतो की युद्ध-प्रणाली भी परम्परागत थी । राजपूत अपने हाथियो को सेना के हरावल मे इसलिये रखते थे कि वे शत्रु की अग्रिम सैन्य पक्तियो को ध्वस्त करें । अक्सर ऐसा होता था कि जब हाथी बिगड जाता था तो वह अपनी सेना को रौंदने लगता था । इस प्रणाली के विरुद्ध मुसलमान लोग हाथियो का प्रयोग शत्रु के किलो के द्वार तोडने के लिये अथवा शत्रु के हाथियो को बढाने से रोकने के लिये करते

राजपूत युद्ध की पैंतरेबाजियो से भी पूर्ण रूप से अवगत नहीं थे ।

थे । इसी प्रकार राजपूत सेनापति प्राय हाथी पर चढकर युद्ध करना अपना शौर्य समझते थे । इससे शत्रु सुगमता से सेनापति का पता चला लेते थे और जब वे लोग सेनापति को घायल कर देते थे तो सेना मे भगदड मच जाती थी । राजपूत सैनिक घमासान युद्ध करने मे दक्ष थे । वे तीरदाजी के प्रयोग मे इतने पारगत नहीं थे जितने तलवार और भाले के प्रयोग मे दक्ष थे । मुसलमान भागते हुये हिन्दू सैनिकों को तीरो से काफी नुकसान पहुँचाते थे राजपूतो को युद्ध की पैंतरेबाजी भी पूर्ण रूप से

1 यदि धन-धान्य की कमी पड जाती थी तो स्त्रिया अपने जेवर बेचकर राजा की सहायता करती थी ।

नही आती थी। राजपूतो के पास मजनिक और अर्रादा[1] आदि हथियार भी नही थे। राजपूतो की अपेक्षा मुसलमान अधिक चालाक भी थे। वह शत्रु के भेद जानने के लिये देश-द्रोही हिन्दुओ को अपनी सेना मे भरती करके उन्हे ही राजपूतो के विरुद्ध काम मे लाते थे। महमूद गजनवी को सेवकपाल और नरायणपुर के राजा ने सहायता दी थी। सोमनाथ की चढाई से भी उसे इस प्रकार की सहायता मिली थी। तुर्की सेना का खुफिया विभाग ऐसे देश-द्रोहियो का पता लगाकर उन्हे मुसलमान सेना मे भरती करने का सतत रूप से कार्य करता था। इसके अतिरिक्त राजपूतो की पराजय का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण यह था कि भारत मे क्षत्रिय ही युद्ध के लिये उपयुक्त समझे जाते थे जबकि तुर्की सेना मे भरती के लिये प्रत्येक नागरिक उपयुक्त समझा जाता था। निरतर आन्तरिक एव वाह्य युद्ध लडने के कारण राजपूत युवक सैनिको का क्रमश ह्रास होता जारहा था जबकि मुसलमान सेना मे नवीन शक्ति की कमी होती थी। राजपूत अपने स्वामी के नमक को हलाल करने के लिये ही लडते थे जब कि मुसलमानो मे धार्मिक जोश (जिहाद) था।[2] वह भौतिक सुख और पारलौकिक सद्गति की भावना को लेकर लडते थे। राजपूत सेना मे तो जाति भाव था और मिथ्या अहकार के कारण सामूहिक एकरूपता नही आती थी।[3] इसके विपरीत तुर्की सैनिक (दास एव स्वतत्र) इस उम्मीद पर लडते थे कि व्यक्तिगत पराक्रम और साहस के द्वारा वे सुल्तान पद तक पहुँच सकते हैं। व्यक्तिगत उन्नति की भावना सामूहिक सफलता को अधिक सुलभ बना देती थी।

राजपूतो की सैनिक-शक्ति जाति-प्रथा के कारण निरतर निर्बल होती जारही थी

---

1 इन हथियारो का प्रयोग मुसलमान लोग किलो की विजय के लिए करते थे। इन हथियारो की सहायता से मुहम्मद गौरी ने भटिण्डा के किले पर आसानी से अधिकार कर लिया था जब कि पृथ्वीराज चौहान को इसी किले पर अधिकार करने मे तेरह महीने लग गये थे।

2 राजपूतो मे (विशेष तौर पर चौहानो मे) धार्मिक जोश कम नही था। डा० दशरथ शर्मा के शब्दो मे "A careful perusal of epigraphic and literary sources of the period, whether Hindu or Muslim, would be lie the belief, populary entertained that the Muslims alone knew how to risk their lives and to make the heaviest sacrifice for their faith" (Page 322)

3 डा० दशरथ शर्मा ने अपने अनुसधान ग्रथ "Early Chouhan Dynasties" मे तत्कालीन जाति प्रथा को ही चौहानो की पराजय का अन्य महत्वपूर्ण कारणो मे से एक कारण बताया है। देखिये उनकी पुस्तक, पृष्ठ, 323।

राजपूत रक्षात्मक युद्ध मे विश्वास करते थे जब कि तुर्क आक्रमणात्मक लड़ाई करते थे। अत मुसलमान अपनी सफलता के लिये भारतीय प्रजा मे आतंक फैलाने मे नही चूकते थे। मुसलमान सैनिक अपने सेनापति के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी थे। र ाजपूतो की तरह वह सामतो के द्वारा भेजे हुये नही थे जो अपने सेनापति की अपेक्षा सामत के प्रति भक्ति रखे। राजपूत सेना के उन सैनिको से यह उम्मीद नही की जा सकती थी जो पेशेवर थे और जिनके हृदय मे किसी राजा अथवा सम्राट के प्रति भक्ति की भावना उत्पन्न हो ही नही सकती थी। यह कुछ ऐसी खामिया है कि जो राजपूतो मे थी और जिनकी वजह मे उनकी पराजय हुई। यद्यपि मुसलमानो की शासन प्रणाली दोष रहित नही थी लेकिन फिर भी उनके राजनैतिक ढाचे मे कुछ ऐसी विशेषतायें थी जिनसे कि उन्हे राजपूतो के विरुद्ध विशेष सफलता मिली। मुस्लिम कानून मे शासक निर्वाचित किया जाता है इसलिये प्रत्येक मुसलमान के लिये राजपक्ष प्राप्त करना सम्भव था और यह भी निश्चित था कि वही मुसलमान शासक राज सिहासन पर बना रह सकता था जो स्वय योग्य हो अथवा जिसे योग्य व्यक्तियो की स्वामी भक्ति प्राप्त हो। इसके विपरीत राजपूत शासक वश परम्परागत राजतन्त्रात्मक शासन प्रणाली मे विश्वास करते थे। राजपूत अपनी राज्य सेवा मे प्राय ब्राह्मण और क्षत्रियो को ही नियुक्त करते थे, यही लोग असैनिक कर्मचारियो के पद पर नियुक्त किये जाते थे और यदि किसी सैनिक अथवा सेनापति की मृत्यु हो जाती थी तो बाप के बाद उसके बेटे को उसके स्थान पर नियुक्त कर दिया जाता था। इस व्यवस्था से बहुत से लोगो को असतोष था जिसका परिणाम यह निकलता था कि किसी भी सेनापति को पूर्ण सहयोग प्राप्त नही हो सकता था। मुसलमानो न इसका फायदा उठाया। इसके अलावा राजपूतो के प्रशासन मे साधारण जनता को न तो शासन-कार्य मे हाथ बटाने का अधिकार था और न युद्ध मे भाग लेने का ही। इस कारण राजाओ और सामान्य प्रजा का घनिष्ट सम्पर्क नहीं रहता था। प्रजा राजनैतिक प्रश्नो पर उदासीन रहती थी। लोग यह समझते थे कि देश की रक्षा करना उनका कर्त्तव्य नही है। इस राजनैतिक उदासीनता ने मुसलमान आक्रमण-कारियो के कार्य को अधिक सुगम बना दिया। इसके अलावा प्रजा को अपने राजपूत शासको के प्रति कोई विशेष उत्साह नही था। इसका कारण यह था कि प्रत्येक राजपूत राजा वैदिक कालीन भारतीय आदर्श (चक्रवर्ती सम्राट) को प्राप्त करने के चक्कर मे

राजपूतो का राजनैतिक सगठन दोषपूर्ण सामन्त-प्रथा के कारण ईर्षा व द्वेष बना रहता था

---

1 डा० दशरथ शर्मा (पृष्ठ 325-26)

"Raw levies, coming together on the spur of the moment and fighting under the leadership of their different leaders, could not be the best means of beating back a determined enemy"

जन हित के कार्यो की ओर कोई विशेप ध्यान नही देते थे। इसका परिणाम यह निकलता था कि प्रत्येक राजपूत राज्य मे ऐसे लोग थे कि जो स्वामी भक्त होने के बजाय विद्रोह के अवसर की प्रतीक्षा करते रहते थे। यह भी कहा जाता है कि राजपूतो ने घरेलू झगडो मे अपनी शक्ति इतनी अधिक क्षीण कर ली थी कि जब मुसलमानो ने आक्रमण किया तो वह उनका डट कर मुकाबला भी नही कर सके।

राजपूतो की पराजय के कारण केवल उनकी राजनैतिक व्यवस्था अथवा सैनिक सगठन मे ही दोष नही थे उनका सामाजिक सगठन भी दोष पूर्ण था। राजपूत अनेक जाति व उपजाति मे विभाजित थे और उनके राज्यो मे सामन्तो का बोलबाला रहता था। इन सामन्तो मे ऊँच-नीच की भावना कूटकूट कर भरी हुई थी। इस लिये जब वह लोग मुसलमानो के मुकाबले मे लडे तो उनके समाज मे सगठन का सर्वथा अभाव पाया गया। वश की झठी मर्यादा मे विश्वास करने वाले सामन्त अहकारी हो गये थे और इसलिये इनका सगठित होना असम्भव था। मादक द्रव्यो के अधिक प्रयोग ने और बहु विवाह की कुरीतियो ने शक्ति-शाली राजपूतो के शारीरिक नैतिक स्तर को इतना अधिक गिरा दिया था कि वह मुसलमानो को पराजित नही कर सके। राजपूती शासन के सामाजिक ढाचे में राष्ट्रीय भावना का प्रादुर्भाव और विकास सम्भव नही था। वह लोग तो स्वय आपस मे युद्धरत रहा करते थे। इसका दुष्परिणाम यह निकला कि साहस, शौर्य, परायण, आन पर मिटने वाले राजपूत योद्धा एक के बाद एक करके मलेच्छो के समक्ष धरा-शायी हो गये।

सामाजिक सगठन में दोष

राजपूतो का सामाजिक सगठन दोषपूर्ण ही नही था बल्कि उनका धार्मिक जीवन भी अस्त-व्यस्त था। देश अनेक धार्मिक सम्प्रदायो मे बँटा हुआ था। इन धार्मिक सम्प्रदायो की शास्त्रीय भिन्नता और पारस्परिक ईर्षा कभी-कभी सीमायें लाघ कर राजनैतिक रगमच पर कुचक्र चलाने लगती थी। उदाहरण के लिये भाग्य मे अटूट विश्वास रखने वाले हिन्दू अकर्मठ हो गये थे। ज्योतिषियो की भविष्य-वाणी मे विश्वास रखने वाले यह हिन्दू इतने अधिक लापरवाह हो गये थे कि लक्षमण सेन की पराजय और इख्तायरुद्दीन की विजय इस प्रकार की भावना का स्पष्ट परिणाम था। इसके विपरीत मुसलमान लोक व परलोक को सुखी बनाने के लिये जिहाद करने भारत भूमि मे आये थे जहाँ हिन्दू और मुसलमानो के धर्म मे इस प्रकार का मूल-भूत मतभेद था, वहाँ अंधविश्वासी राजपूतो का सफल होने का प्रश्न ही नही पैदा होता। ऐसा भी कहा जाता है कि गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी के अहिंसा के उद्देश्य ने भारत की सैनिक शक्ति को निर्बल कर दिया था लेकिन यह कहना केवल आशिक रूप में ही सत्य है।

धर्म-प्रेरक नहीं रहा था

राजपूत मुसलमानो के मुकाबले मे इसलिये पराजित हुये कि उनका राजनैतिक व सैनिक सगठन दोषपूर्ण था अथवा उनके समाज मे कुछ दोष थे या उन्हे धर्म से किसी तरह की प्रेरणा नही मिल रही थी। राजपूतो की पराजय का प्रमुख कारण उनके राजाओ मे प्रभावशाली व्यक्तित्व का अभाव था। राजपूतो मे महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी और कुतुबुद्दीन जैसे उच्च कोटि के सेनानायक नही थे यद्यपि राजपूत सेनानायको से किसी भी रूप मे कम नही थे लेकिन अपने विपक्षियो के समान यह अनुभवी, दूरदर्शी और बुद्धि विचरण करने वाले नायक नही थे।

कतिपय राजपूत सेना नायकों का व्यक्तित्व उनके प्रतिद्वन्दी मुसलमानो के समान प्रभावशाली नहीं था

राजपूतो की पराजय का एक प्रमुख कारण आकस्मिक घटनाओ का घटित होना भी था। जब 986 ई० मे गजनी के सुबुक्तगीन और जयपाल के बीच युद्ध चल रहा था तो एकाएक भीषण वर्षा हुई। हिमपात के कारण सैनिक जयपाल का साथ छोड कर चले गये। सैनिक मृत्यु और रोग के शिकार हो गये। परिणाम स्वरूप जयपाल को अपमानजनक सधि करनी पडी। इसी प्रकार महमूद गजनवी के विरुद्ध आनन्दपाल जब लडा तो एकाएक उसकी सेना में हाथी बिगड खडा हुआ और आनन्दपाल पराजित हो गया। यदि चन्दवार की लडाई मे जयचन्द की आख मे तीर नही लगता तो कदाचित मुहम्मद गोरी उसको पराजित नही कर सकता था। इस प्रकार यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नही है कि कुछ आकस्मिक घटनाओ के कारण राजपूत अपने विपक्षियो के मुकाबले मे विजय प्राप्त नही कर सके।

राजपूतो की पराजय के कुछ आकस्मिक कारण भी थे

राजपूत मुसलमानो के मुकाबले मे विजयी नही हो सके लेकिन राजपूतो की बहादुरी ने उनके विपक्षियो का हठास्तम्भित जरूर कर दिया था राजपूतो के छापामार युद्धो के कारण मुसलमान बहुत वर्षों तक सुख की नीद नही सो सके। यह कुछ ऐसे कारण थे जिनकी वजह से राजपूत मुसलमानो के मुकाविले मे विजयी नही हो सके।

BIBLIOGRAPHY

1 हबीबुल्ला—The Foundation of Muslim Rule in India
2 मुहम्मद अजीद अहमद—Early Turkish Empire of Delhi
3 Cambridge History of India, Vol III

6

राजस्थान मे सामन्त-प्रथा

(Feudal-System in Rajasthan)

राजस्थान का प्रत्येक निवासी जानता है कि 1950 से पहले यहा केवल वश परम्परागत देशी राज्य ही नही थे वरन् प्रत्येक राज्य मे जागीरें भी थी। प्रारम्भ मे जागीरें राजा अपने छोटे भाइयो एव पुत्रो का प्रदान करता था। एक ही पिता की सन्तान होने के नाते राजा और उसके छोटे भाई मे केवल इतना ही सम्बन्ध होता था कि वह राजा को बडा भाई होने के नाते सम्मान देता था और आपत्तिकाल मे तन, मन एव धन से सहायता करता था।

कर्नल टॉड को छोडकर किसी भी विद्वान ने राजस्थान का इतिहास लिखते समय-सामन्त प्रथा के स्वरूप, इसकी उत्पत्ति इत्यादि के सम्बन्ध मे पृथक रूप से नही लिखा। कर्नल टॉड ने "Annals and Antiquities of Rajasthan" लिखते समय यूरोप की सामन्त प्रथा और राजस्थान की सामन्त प्रथा मे इतना अधिक सादृश्य पाया कि वह दोनो को एक समान ही समझ बैठे।[1]

> कर्नल टॉड भ्रम से यूरोप के सामन्तवाद और राजस्थान की सामन्त प्रथा मे सादृश्य समझ बैठे।

कुछ आधुनिक लेखको का विचार है कि यूरोप की 'Feudal Terminology' का प्रयोग भारतवर्ष के किसी भी Institution के लिए करना केवल असगत ही नही है अपितु भ्रमपूर्ण भी है।[2] यूरोप और राजस्थान की सामन्त प्रथाओ मे समानता अवश्य दिखाई देती है लेकिन दोनो मे मूलभूत अन्तर है।

टॉड का कहना है कि यूरोप और राजस्थान मे सामन्त प्रथा की उत्पत्ति समाज के पैत्रिक स्वरूप के कारण हुई।[3] लेकिन टॉड ने अपने ग्रथ मे यह भी स्वीकार

---

1 'This (Feudal System in Raj) is so analogous to the ancient feudal system of Europe, that I have not hesitated to hazard a comparison between them, with reference to the period when the latter was yet imperfect'

—Tod Annals and Antiquities of Raj, Vol I, P 107

2 Dr P Saran Studies in Medieaval Indian History, P 1

3 Tod Annals & Antiquities of Rajasthan, Vol I, P 155

सामन्त-प्रथा की उत्पत्ति के दो कारण थे ।

किया है कि सामन्त–प्रथा की उत्पत्ति Chance and barbarism के कारण भी हुई थी ।[1] इस प्रकार कर्नल टॉड ने सामन्त 'प्रथा की उत्पत्ति के दो कारण दिये हैं ।

यूरोप मे तो रोमन साम्राज्य के पतन के पश्चात् राज्य सरकारें इतनी निर्बल हो गई थी कि वे अपनी प्रजा के जान और माल की रक्षा भी नही कर सकती थी । अत प्रजा को आन्तरिक एव बाह्य खतरो से रक्षा करने के लिए ऐसी सस्था की आवश्यकता महसूस हुई जो उनके लिए अमन और शाति का वातावरण बनाये रखे । जान और माल की सुरक्षा की चिन्ता धनी व्यक्तियो को नही थी, केवल उन लोगो को थी जो भूमिहीन (Landless Freeman) थे अथवा जिनके पास कम मात्रा मे जमीन थी । अत उन लोगो ने अपनी सुरक्षा का आश्वासन पाकर मालदार व्यक्तियो के हाथो अपनी जमीनें सौंप दी ।[2] कालान्तर मे यह सौदा (Contract) एक ऐसे बधन (Camitatus) मे परिवर्तित हो गया कि जिसके अन्तर्गत प्रत्येक आश्रित व्यक्ति को अपने आश्रयदाता के प्रति स्वामिभक्त रहने की शपथ (Oath of fealty) लेनी पडती थी । समय के साथ साथ आश्रित एव आश्रयदाता दोनो के लिए अनिवार्य हो गया कि वे अपनी रक्षा के लिए घोडे (Cavalry) रखें । पहले आश्रयदाताओ पर चर्च का प्रभुत्व था, बाद मे **चर्च के अधिष्ठाताओ** का प्रभुत्व हो गया । उस समय आश्रित एव शाश्रयदाता दोनो के लिए जरूरी हो गया कि वे आपत्ति के समय अपने अधिष्ठाता की सहायता करें । इस प्रकार गिबन (Gibban) का यह कहना नितात सत्य है कि यूरोप मे सामन्त-प्रथा का जन्म Chance and barbarism के कारण हुआ था ।

लेकिन राजपूत समाज का ढाचा प्रारम्भ से ही पैतृक रहा है । छोटे भाइयो को जो जागीरें दी जाती थी वे उनका अधिकार समझ कर दी जाती थी । इसलिए यदि आपत्ति के समय यह 'छुटभइया' राजा की सैनिक सहायता करते थे तो यूरोप की तरह वचनबद्ध होने के नाते नही वरन् यह सोचकर कि वे दोनो एक ही पिता की सन्तान हैं ।

जब राजस्थान मे सामन्तवाद की उत्पत्ति Chance and barbarism के कारण नही हुई तो स्पष्ट हो जाता है कि राजस्थान के सामन्तो को यूरोप के सामन्तो के समान स्वतन्त्र रूप से सिक्के ढालने अथवा युद्ध प्रारम्भ और अन्त करने, स्वतन्त्र रूप से नियम बनाने अथवा सार्वजनिक सम्मान (Public Tribute) मे स्वतन्त्रता नही मिली हुई थी । राजस्थान मे कभी किसी सामन्त

राजस्थान के सामन्तो का सिस्टम

1 टॉड ने रोम के इतिहासकार Gibbon के विचारो को ही स्वीकार करके उन्हे राजस्थान पर भी घटित कर दिया है ।

2 This condition was called 'Precarium' which gave him protection during his life time

को सिक्के ढालने का अधिकार नही दिया गया ।[1] इसी प्रकार सामन्त को कर वसूल करने का भी अधिकार नही था । राजस्थान के सामन्तो को यह अधिकार नही था कि वे अपनी जागीरो मे अपना ही कानून लागू कर सके ।

इतना होते हुए भी कुछ बातें राजस्थान और यूरोप के Feudal System मे इतनी अधिक मिलती जुलती है कि यह मानना ही पडता है कि राजस्थान के 'छुट-भाइयो' को भी यूरोप के सामन्तो के समान अपने राजा के प्रति शाति और युद्ध के समय कुछ कर्त्तव्य अनिवार्य रूप मे निभाने पडते थे । उदाहरण के लिए मेवाड और दूसरे राजपूत राज्यो मे 'खड्ग बन्दी' की रस्म होती थी । जब एक सामन्त की मृत्यु हो जाती थी तब उसके पुत्र को 'नजराना' (Feudal Relief) देने पर ही उत्तराधिकारी स्वीकार किया जाता था । यह प्रथा खड्गबन्दी की प्रथा कहलाती थी । नजराना देने का तात्पर्य था कि सामन्त राजा के प्रासाद-पर्यन्त ही अपनी जागीर का स्वामी रह सकता था और राजा जब चाहे तब जागीर छीन सकता था । टॉड लिखता है कि राजा कभी भी सामन्त की जागीर नही छीनता था लेकिन ऐसे उदाहरण राजस्थान के भूतपूर्व राज्यो के इतिहास मे मिल जावेंगे जब कि सामन्तो को अपनी जागीरो से हाथ धोना पडा था ।

यदि कोई सामन्त सन्तानहीन होता तो उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी समस्त जागीर राजा की हो जाती थी । अत निसन्तान सामन्त अपने जीवन काल मे ही गोद ले लिया करते थे । यदि कोई सामन्त अपराध करता था तो उसकी सम्पूर्ण अथवा जागीर का कुछ भाग जब्त भी किया जा सकता था ।

राजा और सामन्त के सम्बन्ध

सामन्त की मृत्यु के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी नाबालिग होता था तो राज्य की ओर से कोर्ट आफ वार्ड नियुक्त किया जाता था और जागीर की देखभाल करने के लिए उच्च कर्मचारी नियुक्त कर दिये जाते थे ।

सामन्तो को केवल नजराने ही नही देने पडते थे, वरन् राजा की राजधानी मे कुछ दिनो के लिए रहना भी पडता था । राजधानी मे रहकर यह सामन्त राजा को परामर्श देते थे और प्रशासनिक कार्यों मे सहायता देते थे ।

सामन्त अपने राजा से बक्शीश भी स्वीकार करते थे । यह बक्शीश आपत्ति काल में और शादी विवाह के समय आर्थिक सहायता के रूप मे प्रदान की जाती थी।

---

1 'The privilege of coining money is a reservation of royalty No subject is allowed to coin gold or silver, though the Salumber Chief has on sufference a copper currency'
—Tod Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol I, P 169

इसके ऐवज मे सामन्तो को राजा की सैनिक सहायता करनी पडती थी। लेकिन इसका यह तात्पर्य है कि यूरोप के शासको के समान राजस्थान के राजा इतने अधिक निर्बल हो गये थे कि वे अपनी प्रजा की जान और माल की रक्षा नही कर सकते थे। 'रेखवाली' प्रथा राजस्थान मे अवश्य थी लेकिन यह सामन्त प्रथा की उत्पत्ति का कारण कभी नही रही। दसवी शताब्दी मे ही जबकि राजपूतो को यवनो के आक्रमण का मुकाबला करना पडा, उनके समाज मे "पांती पेखन" की प्रथा चल निकली थी। युद्ध के समय राजा केवल अपने सामन्त को ही नही वरन् अपने दूसरे सगे सम्बन्धी और पडौसी राजाओ को भी युद्ध मे शामिल होने का निमन्त्रण भिजवाता था और यह निमन्त्रण टाला नही जा सकता था।

राजस्थान मे दो प्रकार की जागीरें थी। **गिरासिया जागीरदार** वे कहलाते थे जिन्हे राज्य की ओर से पट्टा मिला हुआ था और उन्हे जागीर की ऐवज में राज्य मे अथवा उसके बाहर राजा की सेवा करनी पडती थी। **भूमिया** वे लोग कहलाते थे जो जमीन जोतते थे और राजा को कर देते थे।

सामन्त दो प्रकार के होते थे

दोनो ही सूरतो में किसान स्वय अपनी जमीन का स्वामी था, और वह जागीरदार अथवा राजा को लगान देने के लिए ही बाध्य होता था[1]। यद्यपि उन्नीसवी शताब्दी मे जागीरो मे कुछ दोष उत्पन्न हो गये थे जिसमे से बेगार (Free Service) उल्लेखनीय है और कतिपय सामन्तो ने अपनी जागीरो मे न्याय के अधिकारो का भी प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं समझना चाहिए कि राजस्थान के राजा भी यूरोप के शासको के समान निर्बल हो गये थे अथवा वे अपने सामन्तों के हाथ की कठपुतली बन गये थे। राज्यो के विलीनीकरण तक ऐसा उदाहरण नही मिल सकता जब कि किसी सामन्त ने अपने राजा की उपेक्षा करने की कोशिश की हो।

इस प्रकार राजस्थान मे सामन्तवाद का प्रारम्भ कई सामाजिक और नैतिक कारणो से हुआ था। यह स्मरणीय है कि यह यूरोप के समान राजनैतिक कारणो की वजह से नही हुआ। यही एक कारण था जिसकी वजह से सामन्त प्रथा बीसवी सदी तक बनी रही।

सामन्त प्रथा मे दोष[2] अठारहवी शताब्दी में आने लगे थे जबकि विदेशियो ने भारत पर अपना प्रभाव बढाना प्रारम्भ किया। सुरा और सुन्दरी मे लिप्त रहने वाले

1 'The Cultivator of Rajputana was never a Serf but a free man'—Dr P Saran

2 आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा लिखित 'गोली' नामक उपन्यास में सामन्तवाद के दोषो का विश्लेषण किया गया है।

कतिपय सामन्त अपने कर्त्तव्यो को भूल बैठे तथा उनका व्यवहार अपनी प्रजा के प्रति कठोर हो गया । प्रत्येक सामन्त अपनी जागीर मे अपने आपको राजा का प्रतिबिम्ब मानकर अनाधिकार पूर्ण कृत्य कर बैठता था जिसका मिला जुला परिणाम यह निकला कि स्वतन्त्रता के पश्चात पहले राजा और फिर सामन्तो का पतन हो गया ।

BIBLIOGRAPHY

1 Hanry Hallam Middle Ages

2 Tod Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol I

3 Dr P Saran Studies in Mediaeval Indian History, (Chapter I).

7

मेवाड़ का प्राचीन इतिहास–१५३० ई० तक

(Early History of Mewar up to 1530 A D)

किसी भी देश की भौगोलिक स्थिति उस देश के इतिहास को अवश्य प्रभावित करती है। मेवाड की भौगोलिक स्थिति ने इस देश के इतिहास को सर्वाधिक प्रभावित किया है। जिसे हम मेवाड अथवा उदयपुर कहकर पुकारते हैं और जिस भू-भाग का क्षेत्रफल 12,691 वर्गमील है वही भूभाग प्राचीन काल मे सिवि[1] देश कहकर पुकारा जाता था। तत्पश्चात् इसे 'मेदपाट'[2] कहकर पुकारा गया। मेदपाट का अपभ्रंश 'मेवाड' के नाम से यह प्रदेश सर्वप्रथम १०वी शताब्दी के लगभग पुकारा गया।

> मेवाड की भौगोलिक स्थिति ने यहा के इतिहास को सर्वाधिक प्रभावित किया है।

जिस प्रदेश को मेवाड कहकर पुकारा जाता है और जो प्रदेश 23 49′ से 25 58′ उत्तरी अक्षाश और 73 1′ से 75 49′ दक्षिणी देशान्तर रेखाओ के मध्य मे बसा हुआ है वही प्रदेश उत्तर पश्चिम और दक्षिण मे अरावली पर्वतमाला की शृखलाओं से घिरा हुआ है। पर्वतमालाओ की सबसे ऊँची चोटी आधुनिक कुम्भलगढ के नजदीक जरगास नामक स्थान पर है जो समुद्र की सतह से 4315 फुट ऊँची है। इसी तरह पूर्व मे भी यह पर्वत समुद्र की सतह से 2000 फीट के लगभग ऊँचे हैं। दक्षिण दिशा

---

1. बराह मिहिर ने 'वृहत सहिता' मे 'सिवि' जाति का उल्लेख किया है जो इस देश मे रहती थी। देखिए बृहतसहिता, अध्याय 34, श्लोक 12।

चितौड के 'निकट' नगरी नामक ग्राम से कुछ ताँबे के सिक्के प्राप्त हुए थे जिनपर "मझिमिकाय शिविजनपदस" लिखा मिलता है। इसी के आधार पर चित्तौड के आस-पास के प्रदेश को मध्यमिका और मेवाड को सिवि कहकर पुकारा गया है। जैन ग्रथो को पढने से पता चलता है कि आधुनिक नगरी (चित्तौड के निकट एक स्थान का नाम) का प्राचीन नाम 'मध्यमिका नगरी' था। बौद्ध ग्रथ 'वैसनर जातक' मे तथा पातजलि के 'महाभाष्य' मे भी मध्यमिका नगरी का उल्लेख मिलता है।

2 मेदपाट सस्कृत का शब्द है जिसका तात्पर्य मेवो का देश है। आधुनिक उदयपुर शहर के आहड नामक स्थान से विक्रम सम्वत् 1000 का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जिसमे आधुनिक मेवाड के लिए मेदपाट शब्द का प्रयोग किया गया है।

मे यह पर्वत अधिक ऊचे नही हैं लेकिन जगल अधिक हैं और छोटे पहाडो की घाटियो मे यातायात सुलभ नही है। इन पर्वतो ने मेवाड के लिए एक परकोटे का काम ही नही किया बल्कि कई प्रकार की धातुएँ तथा खनिज पदार्थ भी दिए जिनका प्रयोग करके मेवाड के राणा वर्षों तक शक्तिशाली शत्रुओ का मुकाबला करते रहे।

इन्ही पर्वतो से कई नदियो का भी उदगम हुआ है जिनमे खारी, बनास व गम्भीरी नदियाँ सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। इन नदियो ने मेवाड की भूमि को उपजाऊ बनाया अत मेवाड कृषि उत्पादन की दृष्टि से आत्मनिर्भर बन सका।[1]

मेवाड की जलवायु वहाँ के निवासियो के लिए सर्वथा अनुकूल है। लकिन विदेशियो के लिए वहाँ की जलवायु प्रतिकूल सिद्ध होती रही है इसलिए मेवाड़ मे विदेशियो ने स्थायी रूप से निवास करने की कभी कोशिश नही की।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है मेवाड मे सैनिक सुरक्षा के सभी साधन सुगमता से उपलब्ध हो सकते थे अतएव वहाँ के शासको ने पूर्व की दिशा मे कुछ प्रसिद्ध दुर्ग बना दिये जिनसे देश की रक्षा हो सके। इन दुर्गों मे रहने वाले निवासियो को सभी साधन दुर्ग मे उपलब्ध हो सकते थे।

मेवाड का अधिकाश भाग पहाडो से घिरा होने के कारण वहा के बहादुरो को अपनी रक्षा के लिए युद्ध के सरल तरीके अपनाने पडे। अकबर महान् के विरुद्ध राणा प्रताप ने हल्दीघाटी के युद्ध क्षेत्र मे 1576 ई० मे जो प्रसिद्ध युद्ध लडा था उस युद्ध मे मेवाड के निवासियो ने छापामार युद्ध नीति अपनाई थी। पहाडो से घिरा होने के कारण यह प्रदेश राजस्थान के दूसरे भागो से पृथक रहा और पृथक रहते हुए भी यहाँ के निवासियो ने अपने गौरव और परम्परा को सुरक्षित बनाए रखने के लिए अनुशासन सीखा, साहस और बहादुरी का पाठ पढा और अपने देश के लिए मर मिटने की परम्परा अपनाई।[2] इन सबका मिला जुला परिणाम यह निकला कि राजस्थान के

---

1 आधुनिक लेखको ने ठीक ही लिखा है —

'The river system afforded great facility for irrigation and contributed largely to the prosperity of the state Large tracts of comparitively unproductive soil have been brought under cultivation by erecting magnificient dams round vast sheets of water which go by the name of Samand or Sagarh'

2 'In such an isolation the mass of the people developed a spirit of Spartan simplicity, disciplined life and love for traditions and glory of their ancestors Virtues like courage, perseverance, straight-forwardness, sense of service and devotion to their clan and little patch of land became a second nature with them'

इतिहासज्ञ कर्नल जेम्स टॉड ने मेवाड निवासियो की स्पार्टा से तुलना की, यहाँ की युद्ध भूमि हल्दी घाटी को 'थर्मोपली' और यहाँ के निवासियो को 'लियोनिडास' कहकर पुकारा ।

मेवाड मे गुहिलोतो की उन्नति एव उत्थान
(Rise and Growth of Guhilots in Mewar)

गुहिलवश[1] के बापा रावल ने आठवी शताब्दी मे मेरों को मेवाड से निकाल कर वहा अपना राज्य स्थापित किया था ।
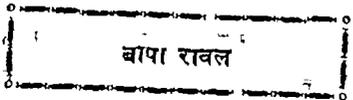
बापा रावल

सत्रहवी शताब्दी का 'राजप्रशस्ति महाकाव्य', नैणसी की ख्यात और कर्नल टॉड बापा का चित्तौड पर अधिकार का वर्णन करते है, लेकिन मेवाड से प्राप्त कतिपय शिलालेखों मे

1 चित्तौडगढ शिलालेख में बापा को 'विप्र' कहकर पुकारा गया है । यह शिलालेख 1274 ई० का है । आबू शिलालेख मे भी, जो 1285 ई० का लिखा हुआ है कि बापा ने ब्रह्म का रूप त्यागकर शस्त्र धारण कर लिए थे । अबुलफजल ने भी गुहिलो की उत्पत्ति बताते हुए लिखा है कि प्रारम्भ मे इनका लालन-पालन ब्राह्मणो ने किया था । अत इन्हे ब्राह्मण कहकर पुकारा जाता है । (देखिए आइने अकबरी, जिल्द II, पृ० 269) नैणसी ने इनके लिए लिखा है कि गुहिल वश की उत्पत्ति तो ब्राह्मण से हुई है, लेकिन इन्हे क्षत्रिय मानना चाहिये (ख्यात, जिल्द I, पृ० 11) अत डा० डी० आर० भण्डारकर ने मेवाड के गुहिल राणाओ की उत्पत्ति नागर ब्राह्मणो से बताई है। (Journal of Asiatic Society of Bengal, 1909, P 167) लेकिन दीवान बहादुर सी० वी० वैद्य और डा० गौरीशकर ओझा इन्हें क्षत्रिय मानते हैं और इनकी उत्पत्ति सूर्यवशी राजाओ से मानते हैं (The Problem of the origin of Guhils is an intricate one)

अत. यही मानकर चलना पडेगा कि 566 ई० मे गोहिल हुआ था और उसके वशज गुहिल वशी कहलाए । सस्कृत भाषा मे गुहिल को गुहिल पुत्र कहकर पुकारा जाता है और गुहिल पुत्र का राजस्थानी अपभ्र श गुहिलोत है (गुहिलोत नाम से मेवाड के राणा सम्बोधित किए जाते हैं) ।

बापा मेवाड मे आने से पूर्व विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिण मे रहता था (देखिए जगतनारायण शिलालेख, Epigraphia Indica, Vol XX मे प्रकाशित, तथा राज-प्रशस्ति) । अबुलफजल के अनुसार बापा के पूर्वज बरार के इलाके मे नरनाला के जमींदार थे । नैणसी का कहना है कि यह लोग नासिक से मेवाड आए थे । जहागीर भी अपनी आत्मकथा मे लिखता है कि बापा के पूर्वज दक्षिण मे रहते थे और वहा से आकर बापा ने मेवाड पर अपना राज्य कायम किया ।

बापा का चित्तौड पर अधिकार नहीं था

चित्तौड पर बापा का अधिकार नही बताया गया है ।[1] बापा[2] चित्तौड का स्वामी तो नही था लेकिन वह मेवाड के गुहिलवशी शासको मे एक प्रतिभाशाली शासक अवश्य था । आज भी मेवाड मे उसकी गौरव-गाथा की कहानिया सुनने को मिल सकती हैं ।

अपराजित

बापा उर्फ 'नरपति शिल' का उत्तराधिकारी अपराजित (राणा का नाम) हुआ जिसकी उदयपुर से 14 मील उत्तर मे स्थित कुण्डेश्वर मन्दिर से प्राप्त मार्गशीप सुदि 5, वि० स० 718 के शिलालेख मे पर्याप्त प्रशसा मिलती है । इस शिलालेख मे लिखा हुआ है कि इसने "अपने शत्रुओ को नष्ट किया । अनेक राजा उसके आगे झुकने थे ।" इसी शिलालेख मे 'अपराजित' के लिए राजा का प्रयोग किया गया है जबकि इसके सेनापति वराहसिह के लिए महाराज शब्द का प्रयोग किया गया है, यह विचित्र बात है ।

अपराजित का उत्तराधिकारी महेन्द्र हुआ । टॉड ने इसके शासन काल का एक शिलालेख नागदा मे देखा था । 1285 ई० के आबू शिलालेख मे इसके लिए

---

1 इनके अनुसार उस समय चित्तौड पर मोरी वश के शासक राज्य करते थे । अबुलफजल लिखता है कि बापा ने भीलो को पराजित करके चितौड पर अधिकार जमाया । लेकिन 971 ई० के एकलिंग शिलालेख मे बापा को केवल नागदडा का निवासी बताया गया है । 1274ई के चितौडगड शिलालेख, 1285 के आबू शिलालेख और 1460 के कुम्भलगढ शिलालेख मे कही भी बापा को चितौड का स्वामी नही लिखा गया है । इसके अलावा टाड 754 ई० मे चितौड पर गुर्जर प्रतिहार वशी कुकरेश्वर का अधिकार होना लिखता है । मेवाड के प्राचीन शिलालेख दक्षिण-पश्चिमी भाग मे नागदा और आहड से प्राप्त हुए हैं । चित्तौड से एक भी शिलालेख प्राप्त नही हुआ अत यही स्वीकार करना पडेगा कि बापा के अधिकार मे नागदा और आहड का प्रदेश ही था, उसने चित्तौड को विजय नही किया ।

2 'कुम्भलगढ प्रशस्ति' तथा मेवाड के अन्य प्रमाणित ग्रथो को पढने से प्रकट होता है कि राजा शिल और बापा एक ही व्यक्ति थे । चित्तौडगढ शिलालेख (1274 ई०) को पढने से भी जाहिर होता है कि बापा ने हरीतऋषि की कृपा से 'नवराज लक्ष्मी' प्राप्त की थी । बापा के पूर्वज नाग के शासन काल मे भीलो ने गुहिलो का राज्य समाप्त कर दिया था । टॉड का कहना है कि नाग का उत्तराधिकारी बापा था जिसके लिए मेवाड के रिकार्ड राजा शिल का प्रयोग करते है । अत यह सम्भव है कि बापा और शिल एक ही व्यक्ति थे ।

लिखा हुआ है कि "शील-स्वभाव और लीला सहित तलवार से विकराल हाथ दाल

महेन्द्र

उस राजा ने बाहुबल द्वारा शत्रुओ की श्री को अपने आधीन किया। वह राजा प्रत्यक्ष वीर रस का रूप था। चोल देश की नारियो को विधवा बनाने वाला राजाओ मे प्रकटमणि, राजनीतिज्ञ तथा कर्णाटेश्वर को दण्ड देने वाला था। उसका पुत्र नीति मान कालभोज, धनुष काल के समान दण्ड देने मे प्रचण्ड था।" इस शिलालेख मे इसे कर्नाटक के शासक की विजय करने वाला लिखा गया है। वातापी के चालुक्य शासक विनादित्य ने चोलो पर आधिपत्य स्थापित करके उत्तर भारत पर आक्रमण किया था। हो सकता है कि इसी विनादित्य के साथ अपराजित का युद्ध हुआ हो जिसमे उसने चोल और कर्नाटक की सयुक्त सेनाओ को पराजित किया हो।

महेन्द्र के उत्तराधिकारी राजा कालभोज को ही मेवाड के ख्याति-प्राप्त 'बापा' के नाम से पुकारा जाता है लेकिन यह ऐतिहासिक सत्य नही है। एक ओर तो आधुनिक इतिहासकार लिखता है कि "बापा रावल के समय का कोई शिलालेख और

कालभोज

ताम्रपत्र अब तक नही मिला है इसलिए उसके शासन काल का समय निश्चित करना कठिन है।" दूसरी ओर इसी बापा रावल की तस्वीरें आधुनिक ग्रन्थो मे छापी गई हैं। ऐसी परिस्थिति मे यह सत्य हो सकता है कि बापा और कालभोज एक ही व्यक्ति थे।

कालभोज का उत्तराधिकारी खुमाण प्रथम हुआ। कर्नल टॉड ने 'खुमाणरासो' के आधार पर इसके शासन काल का विस्तार से वर्णन किया है। 'खुमाण रासो' की

खुमाण प्रथम

रचना खुमाण की पाँचवी पीढी मे हुई थी। अत जो कुछ टॉड ने इसके लिए अपनी 'एनाल्स' मे लिखा सर्वथा सत्य नही हो सकता।[1]

---

1 स्वर्गीय ओझा जी ने 'राजपूताने के इतिहास' (जिल्द I, पृष्ठ 420-22) मे स्पष्ट रूप से लिखा है कि खुमाण रासो मे खुमाण के द्वारा मुस्लिम आक्रमणकारी सेनाओ को पराजित करना लिखा है। लेकिन यह खुमाण प्रथम नही खुमाण द्वितीय था जिसने खलीफा अबासीद के द्वारा अलमामून के नेतृत्व मे भेजी गई सेना का सामना करके राजस्थान को मुसलमानो के विनाश से बचाया था।

खुमाण रासो (देखिये डा० कृष्णचन्द्र श्रोत्री द्वारा राज० विश्वविद्यालय को समर्पित खुमाण रासो की पाडुलिपि) मे मुस्लिम सेना का आधुनिक मारवाड, उज्जैन, भडौंच व मालव प्रदेश पर आक्रमण करना लिखा है। अत एक आधुनिक इतिहासकार ने टॉड के कथन की पुष्टि करते हुए लिखा है कि खुमाण I ने ही मुसलमानो की सेना का मुकाबला किया था।

खुमाण के पुत्र और उत्तराधिकारी मत्तट के सम्बन्ध मे जानकारी 1274 के चित्तौड़गढ शिलालेख से प्राप्त होती है जिसमे इसकी विजयो का वृत्तान्त है। इसी शिलालेख को पढने से प्रकट होता है कि राजा मत्तट ने राष्ट्रकूटो और गुर्जर प्रतिहारो की बढती हुई शक्ति का सामना किया था।

मत्तट

गुर्जर प्रतिहारो ने 494 ई० से 814 ई० के बीच के समय मे मेवाड के पूर्वी भाग पर अधिकार कर लिया था।[1] कृष्ण तृतीय के नेतृत्व मे राष्ट्रकूटो का उत्कर्ष होने तक चित्तौड पर गुर्जर प्रतिहारो का अधिकार रहा लेकिन राष्ट्रकूटो का अधिक समय तक अधिकार नही रह सका और प्रतिहारो ने भोज प्रथम के नेतृत्व मे पुन चित्तौड को अपने अधिकार मे कर लिया। दसवी शताब्दी के बाद चित्तौड गुर्जर प्रतिहारो के हाथ से निकल गया। गुहिल वशी राजा भर्तृभट्ट

भर्तृभट्ट II

द्वितीय[2] ने अपने पिता खुमाण के द्वारा विजित[3] प्रदेशो को सगठित करके 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की। भर्तृभट्ट की महारानी महालक्ष्मी राष्ट्रकूट वश की थी। अत यह सम्भव है कि इसने अपने समकालीन राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय से सहायता प्राप्त करके पहले गुर्जर प्रतिहारो को मेवाड से निकाला और फिर राष्ट्रकूटो के प्रभाव से मेवाड को मुक्त कर लिया।[4] इसके द्वारा ही आदिवराह का मदिर बनवाया गया था। मन्दिर का निर्माण यह सिद्ध करता है कि भर्तृभट्ट ने अपनी शक्ति को सगठित करके मेवाड मे शांति और व्यवस्था स्थापित कर दी थी।

---

1 "Pratihars not only occupied Chitor, but also brought under their sway the small principality of the Guhils which was then confined to the S–W of Mewar and had its Capital probably at Nagda"

—Fleet Kanarese Distt, pp 394–95

2 मत्तट और भर्तृभट्ट II के बीच पाच पीढिया गुजर गई। मत्तट का उत्तराधिकारी भर्तृभट्ट था। भर्तृभट्ट का उतराधिकारी राजसिंह हुआ। तत्पश्चात् खुमाण II, महायक और खुमाण III, मेवाड की गद्दी पर बैठे।

3 1274 के चित्तौडगढ शिलालेख के अनुसार खुमाण ततीय ने कतिपय राजाओ को पराजित किया। कुम्भलगढ प्रशस्ति मे खुमाण की दिग्विजय का वर्णन करते समय उन पराजित राजाओ के नाम दिए गए हैं जिन्हे खुमाण ने पराजित किया था।

4. 977 ई० के अतपुर शिलालेख मे भर्तृभट्ट को Lokitrayakatilaka तथा 942 ई० के प्रतापगढ शिलालेख मे इसे महाराजाधिराज कहकर पुकारा गया है। (Epigraphia Indica, XIV, P. 187)

भर्तृभट्ट की मृत्यु के साथ-साथ मेवाड के इतिहास का नवीन अध्याय प्रारम्भ होता है। चूंकि गुहिलवंशी शासको को गुर्जर प्रतिहारो व राष्ट्रकूटो से छुटकारा मिल गया था, अत उन्होने अपने राज्य का प्रशासन सुव्यवस्थित किया। आहड के सारनेश्वर मन्दिर से भर्तृभट्ट के उत्तराधिकारी अल्लट के समय का वैशाख सुदि 7 वि० स० 1010 का शिलालेख प्राप्त हुआ है।[1] इस शिलालेख से यह प्रकट होता है कि मेवाड मे दुर्लभ राजा, सधिविग्रह (रक्षा-मन्त्री), मौर्य और समुद्र अक्षयापटालिक (पुरालेखा विभाग का मन्त्री) थे, नाग, भीषागर्ज, रुद्रादित्य बन्दीपति (बन्दीगृह का मन्त्री) थे। यशोपुष्प प्रतिहार (द्वारपाल) था और सामन्त आमात्य (परामर्शदाता) के पद पर था। भीषागर्ज राजा का वैद्य भी था। इनमे से कतिपय मन्त्रियो के पद वश परम्परागत थे।[2] मेवाड का प्रशासन गुप्तवशीय शासन प्रबन्ध के Pattern पर था। अल्लट के शासन काल मे नागदा मेवाड की राजधानी थी। उस समय आहड व्यापार का केन्द्र था जहा करनाटा, मध्यदेश, लता (दक्षिणी गुजरात) और टक्का (पजाब) के व्यापारी आते थे। व्यापार ऊँटो के द्वारा होता था। इस प्रकार गुहील राजधानी आहड व्यापार और वाणिज्य का केन्द्र बिन्दु बन गया था क्योंकि अल्लट अपना अधिकाश समय आहड मे व्यतीत करता था। अल्लट धर्म परायण शासक था। इसके शासन काल मे ही राजमाता महालक्ष्मी ने सारणेश्वर का मन्दिर 952 ई० मे बनवाया था।

अल्लट

प्राचीन मेवाड का प्रशासन

लेकिन अल्लट के उत्तराधिकारियो को पडोसी राज्यो की आकाक्षावादी कामनाओ से उत्तेजित आक्रमणो का मुकाबिला करना पडा। कल्याणी के चालुक्य, गुजरात के चालुक्य, साम्भर के चौहान व दाहाला के कालाचुरी शासक मेवाड पर आक्रमण किया करते थे। अल्लट के प्रपौत्र शक्तिकुमार के शासन काल मे मेवाड के गुहिल शासक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुके थे।[3] इसके शासन काल मे ही मालवा के परमार शासक वाकपति मुज ने चित्तौड

शक्तिकुमार

1 Bhavnagar Inscriptions, p p 67

2 मौर्य की मृत्यु पर उसके पुत्र श्रीपति को अक्षयपटासिक के पद पर अल्लट ने नियुक्त किया था। (Vide Fragmentary Ahar Inscription of the Time of Allata's son Nararahana)

3 Saktikumara is described in the Atpur Inscription of 977 A D as being possessed of three elements of power (Sakti Krayorji tah) namely probhusakti (majesty), mantrasakti (counsel) and utsahasakti (energy)

पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार मे कर लिया। मुञ्ज के पुत्र और उत्तराधिकारी भोज का भी गुहिल देश पर बराबर अधिकार बना रहा।

शक्तिकुमार के पुत्र और उत्तराधिकारी अम्बाप्रसाद ने विद्रोही भृगुपति क्षत्रियो का विनाश किया। लेकिन यह स्वय साम्भर के चौहान शासक वाक्पति के द्वारा युद्ध मे मारा गया।[1] अम्बाप्रसाद के उत्तराधिकारियो के सम्बन्ध मे विश्वसनीय

अम्बाप्रसाद

ऐतिहासिक सामग्री अब तक उपलब्ध नही हो सकी है। मेवाड के शासको की जो वशावलिया चित्तौडगढ व आबू के शिलालेखो मे दी गई है वे कुम्भलगढ प्रशस्ति की वशावली से भिन्न हैं। अत यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अम्बाप्रसाद के वशजो ने कुछ वर्ष तक ही शासन किया था।

इन निर्बल उत्तराधिकारियो के शासनकाल मे चित्तौड के दुर्ग पर गुजरात के भीमदेव प्रथम ने भोज को पराजित करके अधिकार कर लिया। वैरीसिह ने जो

वैरीसिह

अम्बाप्रसाद की आठवी पीढी मे हुआ था परमारो के हाथ से आहड को पुन छीन लिया। उसके चारों ओर शहर-पनाह बनवाई। वैरीसिंह के उत्तराधिकारी विजयसिह ने मालवा के शासक उदादित्य की पुत्री श्यामल देवी के साथ विवाह से जो पुत्री उत्पन्न हुई उसकी शादी कालाचुरी वश के राजकुमार गयाकर्ण के साथ की। इसके शासन-काल की प्लेट कडमाल से प्राप्त हुई है जिसमे इसे महाराज' कहकर सम्बोधित किया गया है।[2]

विजयसिह गुजरात के प्रतिभाशाली शासक सिद्धराज जयसिंह का समकालीन था। सिद्धराज ने राजस्थान का अधिकाश भाग अपने अधिकार मे कर लिया था।[3] सिद्धराज के उत्तराधिकारियो का मेवाड, पर भी अधिकार हो गया था। तेरहवी शताब्दी के प्रारम्भ तक गुजरात के चालुक्यो का मेवाड पर अधिकार रहा।

विजयसिह ने चालुक्यो के प्रकोप से बचने के लिए राजवशीय विवाह किए थे लेकिन वह मेवाड को उनके कोप से नही बचा सका। जब चालुक्यो का मेवाड पर अधिकार था तब ही जालौर मे सोनगरा चौहानो की बढती हुई शक्ति ने गुहिलवश के शासक को अपने शेष राज्य से भी निर्वासित कर दिया। अत तेरहवी शताब्दी के प्रारम्भ तक मेवाड के शासक गुजरात के चालुक्यो के सामन्त बने रहे।

---

1 डा० ओझा द्वारा उद्धरित 'जयनक द्वारा रचित पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' (राजपूताने का इतिहास, जिल्द प्रथम, पृष्ठ 439)।

2 डा० ओझा राजपूताने का इतिहास, जिल्द प्रथम पृ० 445।

3. H C Ray Dynastic History of Northen India, आधुनिक कोटा, बासवाडा, जोधपुर व जयपुर के प्रदेश इसके अधिकार मे थे।

पदमसिंह के उत्तराधिकारी जैत्रसिंह के राज्याभिषेक के साथ-साथ मेवाड के इतिहास का अन्धकार-युग भी समाप्त होता है।

एकलिंग मन्दिर से प्राप्त शिलालेख के अनुसार जैत्रसिंह का राज्याभिषेक 1213 ई० मे हुआ था। जैत्रसिंह का मालव, गुजरात, मेड, जागल देश और मलेच्छो के सुल्तान के साथ युद्ध हुए लेकिन वह पराजित नही हुआ।[1] 'In his struggle with the Sultans of Delhi or their Captains the ruler of Mewar may have suffered some grievous losses, but on the whole, he successfully piloted the vessel of State during this difficult period The later Prasastikaras therefore did not err when they described him as Tumskasanyarnavakumbha-yonih'.[2]

जैत्रसिंह

जैत्रसिंह मेवाड के गुहिलवशी शासकों मे प्रतिभाशाली शासक हुआ है। इसने आधुनिक मेवाड के अधिकाश भाग पर, जिसमे डूंगरपुर और बांसवाडा के प्रदेश भी शामिल थे, अधिकार करके शक्ति सगठित की। चित्तौड का दुर्ग भी इसके अधिकार मे आ गया था।[3] अत जैत्रसिंह के उत्तराधिकारी तेजसिंह को स्वतन्त्र शासक (Sovereign Ruler) बनने मे कोई कठिनाई नही हुई। तेजसिंह अपने आपको अनिहलवाडा के शासक के समान समझता था।[4] तेजसिंह को भी नासिरुद्दीन महमूद की सेनाओ का 1255–56 मे सामना करना

तेजसिंह

---

1 Vide Ghagasa Inscription of V S 1322 (1265 A D.) and Chirwa Inscription published in Annual Report of Rajputana Museums (1926–27, p 3) and Epigraphia India, Vol XXII, p 285) मलेच्छो से तात्पर्य मुसलमानो से है। जैत्रसिंह का सिन्ध के मुसलमानो व इल्तुतमिश की सेनाओ के साथ युद्ध हुआ था (See Tod I, p 305 and Ojha History of Raj, I, p 403)

2 Bhavnagar Inscriptions, p 86, quoted by Dr G C Raychaudhary in his 'History of Mewar'

3. Chirwa Inscription & Jagat Narain Inscription 1234) A D) जैत्रसिंह का पुत्र महाराज सिहाडदेव को वागड का शासक बताया गया है।

4. Vide his epithets 'Maharajadhiraj Paraneshvara, Parambhattarak–Unapati vara labdha–Prandha–Pralapasamalam-kista–Sri Tejasimhadera'

पडा था।[1] तेजसिंह को अनहिलवाडा के शासक विसलदेव के विरुद्ध भी युद्ध करना पडा था गुहिलो के साथ चालुक्यो की वश परम्परागत शत्रुता थी। तेजसिंह के शासन-काल मे मेवाड मे दो नये कर्मचारी नियुक्त किए गए थे। एक विल्हण था जो सचिवालय (श्रीकर्ण) का इन्चार्ज था और दूसरा समुद्धर था जो राजा की मोहर (seal) सम्भालता था।[2]

तेजसिंह के पुत्र और उत्तराधिकारी समरसिंह के काल के कई शिलालेख प्राप्त हुए हैं जो 1273 से 1302 ई० के बीच मे लिखे हुए हैं। इनमे से ही एक

समरसिंह

कुम्भलगढ से प्राप्त शिलालेख भी है जिसमे लिखा है कि समरसिंह ने विजय करके 'साम्राज्यलक्ष्मी' को बढाया। आबू के शिलालेख मे लिखा हुआ है कि समरसिंह ने वश-परम्परागत वैमनस्य को भूलकर गुजरात के बघेला शासक सारगदेव की सहायता की थी। कदाचित यह सहायता उस समय की गई होगी जबकि बलबन ने गुजरात पर आक्रमण किया था।[3] समरसिंह के दो पुत्र थे—रतनसिह और कुम्भकर्ण। अत रतनसिह उनकी मृत्यु के पश्चात चित्तौड के शासक हुए।

रतनसिह (1302–1303) अलाउद्दीन खिलजी के समकालीन थे। अलाउद्दीन ने चित्तौड पर आक्रमण किया। आक्रमण के अनेक कारण थे। पहला कारण तो यह

रतनसिह

था कि खिलजी सुल्तान स्वभाव से, महत्वाकाक्षी शासक था। वह 'सिकन्दर सानी' बनने के स्वप्न देखा करता था। दूसरा कारण यह था कि वह समस्त भारतवष मे मुसलमानो का शासन स्थापित करके अपनी शक्ति को सगठित करना चाहता था। चूंकि चित्तौड का राजा सारे हिन्दू राजाओ मे श्रेष्ठ समझा जाता था और हिन्दुस्तान के सभी शासक उसकी श्रेष्ठता को स्वीकार करते थे, अत अलाउद्दीन के लिए चित्तौड को विजय करना आवश्यक हो गया था।[4] किवदतियो के अनुसार अलाउद्दीन ने रतनसिह की सुन्दर स्त्री पद्मिनी को हस्तगत करने की अभिलाषा से भी चित्तौड पर आक्रमण किया था।[5] लेकिन यह एक

1 Tabaqat-i-Nasiri (English Translation by Raverty), Ferishta (English Trans by Briggs), Vol I, p 242, Indian Antiquary (1928) pp 33-34

2 Dr Ojha History of Rajputana, Vol I, pp 473-74

3 Indian Antiquary, Vol XVI, p 350, Ojha History of Rajputana, Vol I, P 475

4 देखिए अमीर खुसरो कृत 'खजाइन-उल फुतुह'।

5 इस विवादास्पद प्रश्न का विस्तारपूर्वक वर्णन Historicity of Padmini Legend में किया गया है।

विवादास्पद प्रश्न है। अलाउद्दीन के लिए चित्तौड को विजय करना इसलिए आवश्यक था कि यह किला मालवा और दक्षिण के मार्ग मे पडता था। इसे विजय किये बगैर अलाउद्दीन भारत को विजय करने का स्वप्न साकार नही कर सकता था।

अलाउद्दीन ने चित्तौड पर आक्रमण किया और लगभग आठ महीने की कोशिश के बाद 26th August, 1303 के दिन किले पर अधिकार कर लिया। मुसलमानो के अधिकार करने से पहले राजपूत स्त्रियो ने अपने सतीत्व की रक्षा मे जौहर किया। अत 1303 की घटना, मेवाड के इतिहास मे 'प्रथम शाका' के नाम से प्रसिद्ध है। अलाउद्दीन ने चित्तौड का प्रबन्ध अपने पुत्र खिज्रखां को सौंप दिया।

दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी की चित्तौड-विजय (1303) के साथ एक अत्यन्त रोमाचकारी घटना सम्बन्धित की जाती है। पद्मावत् महाकाव्य के रचयिता मलिक मुहम्मद जायसी ने 1540 मे लिखा कि सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड की रानी पद्मिनी को प्राप्त करने की लालसा से 1303 मे चित्तौड पर आक्रमण किया था। काव्य के लेखक ने पद्मिनी को लका की राजकुमारी बताया है जिसका विवाह चित्तौड के राजा रतनसिंह के साथ 12 वर्ष की कठोर तपस्या और इन्तजार के बाद हुआ था। जायसी लिखता है कि एक बार राघव नाम का भिखारी भिक्षा लेते समय पद्मिनी के अनुपम सौन्दर्य को देखकर मूर्छित हो गया। इसी भिखारी ने दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन को रानी के अप्रतिम सौन्दर्य के बारे मे बताया था। जिस पर सुल्तान ने रतनसिंह के पास सन्देश भेजा कि वह पद्मिनी को शाही हरम मे भेज दे। जब रतनसिंह ने सुल्तान की इस माग को ठुकरा दिया तो जायसी लिखता है कि अलाउद्दीन ने चित्तौड पर घेरा डाल दिया और जब आठ साल तक युद्ध लडने पर भी सुल्तान चित्तौड को अपने अधिकार मे नही कर सका तो अपनी कठिनाइयो और विवशता का अनुभव करके "सुल्तान ने इस शर्त पर दिल्ली लौट जाने का वायदा किया कि राजा रतनसिंह उसे सुन्दरी का प्रतिबिम्ब दिखा दे।" जब सुल्तान चित्तौड के किले से लौट रहा था तब रतनसिंह शिष्टाचार के नाते उसे द्वार तक छोडने गया। उस समय अलाउद्दीन ने कपटपूर्वक राजा को बन्दी बना लिया और उसे अपने साथ दिल्ली ले गया तत्पश्चात् पद्मिनी के पास सदेश भेजा गया कि उसके शाही हरम मे आने के बाद ही रतनसिंह को मुक्त किया जा सकेगा। दिल्ली मे रतनसिंह को भिन्न-भिन्न प्रकार की यातनायें दी जा रही थी जिनके विषय मे जानकारी मिलने पर पद्मिनी ने अपने दो सरदार गोरा और बादल से परामर्श किया और दिल्ली जाने का निश्चय किया। 1600 बन्द पालकियो मे ऐडी से चोटी तक शस्त्रों से सुसज्जित राजपूत योद्धा बैठे और यह समाचार फैला दिया गया कि पद्मिनी अपनी सखियो और सेविकाओ के साथ शाही महल मे आ रही है। दिल्ली पहुंच कर रानी ने सुल्तान के पास

पद्मिनी की कहानी की ऐतिहासिकता

पार्थना भिजवाई कि वह अपने स्वामी से अन्तिम बार मिलना चाहती है। सुल्तान ने प्रार्थना स्वीकार करली और रतनसिंह के महल में पहुँचते ही वह दोनो (रतनसिंह व पद्मिनी) तो चित्तौड की तरफ रवाना हो गये तथा गोरा के नेतृत्व मे राजपूतो ने शाही सेना का मुकाबला किया। रतनसिंह और पद्मिनी सुरक्षित चित्तौड पहुँच गए।

जायसी की इस कथा ने जिसमे प्रेम, क्रीडा, साहस और विषाद, सुन्दरता से सजोये गए हैं शीघ्र ही जन-साधारण के मस्तिष्क मे स्थान बना लिया और यहाँ-वहाँ हर जगह पद्मिनी की कथा कही और दोहराई जाने लगी। मलिक मुहम्मद जायसी के बाद जितने भी फारसी के इतिहासकारो (फरिश्ता, हाजी-उद्बीर इत्यादि) ने अपनी कृतिया रची, सभी ने इस कहानी को ऐतिहासिक तथ्य मानकर उसका अपने ग्रथो मे वर्णन किया। राजपूतो की स्थानीय परम्परा और उनके चारणो पर विश्वास करते हुए कर्नल टॉड ने पद्मिनी की कथा को ओजपूर्ण शब्दो मे दुहरा दिया। इस प्रकार इस रोमाचकारी कहानी ने ऐतिहासिक घटना का रूप धारण कर लिया।

जायसी ने अपना महाकाव्य चित्तौड की विजय के 237 वर्ष बाद लिखा था। उस महाकाव्य मे अनेक हास्यास्पद और अशुद्ध बातें भी लिखी हुई हैं जो ऐतिहासिक सत्य नही हैं। उदाहरण के लिए जायसी लिखता है कि सिर्फ एक साल तक चित्तौड पर राज्य करने के बाद राजा रतनसिंह लका की ओर रवाना हो गए और पद्मिनी को प्राप्त करने के लिए वहाँ बारह वर्ष तक रहे। कवि ने लका के शासक का नाम गोवर्धन लिखा है और टॉड ने उसका नाम हम्मीर सक दिया है। स्वर्गीय ओझाजो ने लका के शासक का नाम प्रक्रमबाहु IV लिखा है जो रतनसिंह का समकालीन था। इसी प्रकार जायसी का यह लिखना भी सरासर गलत है कि रतनसिंह और सुल्तान अलाउद्दीन के बीच आठ साल तक युद्ध चला।

मलिक मुहम्मद जायसी के 10 वर्ष बाद फरिश्ता ने अपना फारसी भाषा का ग्रन्थ लिखा जिसमे पद्मिनी की कहानी को दोहराया गया है। फरिश्ता का कथन असगतियो से भरा पडा है। उदाहरणार्थ, वर्णन करते समय इतिहासकार को यह निश्चय नही था कि पद्मिनी रनतसिंह की पुत्री थी या पत्नी। इसी तरह वह लिखता है कि सुल्तान ने चित्तौड का प्रबन्ध रतनसिंह के एक भानजे को सौप दिया।

हाजी–उद्–बीर ने पद्मिनी का जो वर्णन किया है वह भ्रमोत्पादक है। वह कही पर भी रतनसिंह के नाम का उल्लेख नही करता और पद्मिनी का उल्लेख कुछ विशेष गुणो वाली स्त्री के रूप मे करता है। किसी विशेष स्त्री की ओर सकेत नही करता। उसके वर्णन से यह भी स्पष्ट रूप से जाहिर नही होता कि पद्मिनी को अलाउद्दीन ने चित्तौड को अधिकार मे कर लेने के पश्चात् मागा था अथवा रतनसिंह के बन्दी कर लेने के बाद। हाजीउद्बीर खिजरखाँ का कही पर भी उल्लेख नही करता।

जायसी, फरिश्ता और हाजीउद्बीर के वर्णन भी एक दूसरे से मेल नही खाते। जिन पालकियो मे राजपूत योद्धा दिल्ली गए थे उनकी सख्या जायसी ने

1600 लिखी है जब कि फरिश्ता 400 और हाजीउद्दबीर 500 लिखता है। जायसी और फरिश्ता कहते हैं कि रतनसिंह को बन्दी बनाने के पश्चात् दिल्ली मे रक्खा गया जबकि हाजीउद्दबीर का ख्याल है कि राणा कभी दिल्ली गया ही नही और रानी को अलाउद्दीन के पास जाने के लिए मनाने हेतु अपने राज्य मे ही सैनिको के पहरे मे बन्दी रक्खा गया था। जायसी लिखता है कि रतनसिंह को बन्दीगृह से मुक्त कराने की युक्ति पद्मिनी ने निकाली थी जबकि फरिश्ता के अनुसार रतनसिंह की पुत्री ने यह युक्ति निकाली थी। हाजीउद्दबीर का कहना है कि स्वय रतनसिंह ने निकल भागने की विचित्र युक्ति नियोजित की थी। इस प्रकार तीनो समकालीन लखको के वर्णनो मे भिन्नता मिलती है।

राजस्थान के चारण भाटो ने राजपूतानी के शौर्य की प्रशसा करने के उद्देश्य से पद्मिनी की कथा का मूल कथानक जायसी के पद्मावत से ले लिया और उसे अपनी गौरव-गाथाओ द्वारा प्रचलित कर दिया। उन लोगो ने इस बात की ओर गौर नही किया कि जायसी ने पद्मावत लिखते समय चित्तौड की रानी पद्मिनी की जीवन कथा लिखने की सोची थी लेकिन कवि अपनी पुस्तक के अन्त मे स्वय कहता है—

तन,चित उर, मन राजा कीन्हा। हिम सिघल बुद्धि पद्मिनी चिन्हा।
नागमती यह दुनिया धन्धा। बाया सोई न एहिचित बाधा।
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउद्दीन सुलतानू।
प्रेम कथा एहि भाति विचारहु। बूझ लेहु जो बूझै पारहु।

अर्थात् "इस कथा मे चित्तौड देह का, राजा रतनसिंह मस्तिष्क का, सिहल द्वीप हृदय का, पद्मिनी चातुर्य का और अलाउद्दीन माया का प्रतिरूप है। बुद्धिमान लोग समझ सकते हैं कि इस प्रेमकथा का तात्पर्य क्या है। जायसी के इन शब्दो से स्पष्ट है कि वह तो एक दृष्टाँत कथा लिख रहा था कोई ऐतिहासिक घटना नही। यह सम्भव है कि कथानक की प्रेरणा कवि को चित्तौड मे 1534 मे होने वाले जौहर से मिली हो जो गुजरात के सुलतान बहादुरशाह के आक्रमण के समय किया गया था।

पद्मावत् के लिखे जाने के पहिले किसी भी फारसी अथवा राजस्थान के इतिहास मे इस कहानी के सम्बन्ध मे पढने को नही मिलता। बरनी, इसामी, इब्नबतूता और तारीख-ए-मुहम्मदी तथा तारीख-ए-मुबारकशाही के लेखक समकालीन थे जो पद्मिनी की तथाकथित रोमाचकारी कहानी की ओर इगित भी नही करते। इन सब इतिहासकारो पर चुप्पी साधने का, षडयन्त्र करने का एकाएक आरोप नही लगाया जा सकता।

एक आधुनिक इतिहासकार (डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव) का कहना है कि अलाउद्दीन खिलजी का दरबारी कवि और इतिहासकार अमीर खुसरो सुल्तान के साथ चित्तौड के घेरे मे मौजूद था और इसने अपने ग्रथ खजाइन-उल-फुतूह मे चित्तौड की पद्मिनी की कहानी का वर्णन एक रूपक मे किया है। अमीर खुसरो चित्तौड की उपमा सेबा से देता है जहां कि सुन्दर रानी बिलकिस के प्रेम से मोहित होकर सुले-

मान उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। इस रूपक मे कवि ने अपने आपको 'हुद-हुद पक्षी' के रूप मे वर्णित किया है। डा० श्रीवास्तव का कहना है कि अमीर खुसरो का चित्तौड अभियान के प्रसग मे यह वर्णन इस बात की ओर सकेत करता है कि पद्मिनी की ओर सुल्तान अलाउद्दीन की आसक्ति थी और पद्मिनी को प्राप्त करने की लालसा सुल्तान के चित्तौड-अभियान का एक कारण हो सकता है। डा० श्रीवास्तव के गुरू डा० कालिकारजन कानूनगो ने अमीर खुसरो के रूपक का पूर्ण रूप से विवेचन करने के बाद अपनी पुस्तक *'Studies in Rajput History'* मे लिखा है कि वह और उनके परम शिष्य डा० श्रीवास्तव पद्मिनी की कथा की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध मे एक दूसरे से मतभेद रखते हैं। साराश यह है कि डा० कानूनगो अमीर खुसरो के इस रूपक को कहानी की ऐतिहासिकता सिद्ध करने का एक सबल प्रमाण मानने को तैयार नही हैं।

एक दूसरे आधुनिक इतिहासकार (डा० ईश्वरीप्रसाद) का कहना है कि "मेवाड की परम्परा जो इस कहानी को स्वीकार करती है, अत्यन्त पुरानी है और यदि पद्मिनी की कथा एक साहित्यिक रचना मात्र थी तो उसका राजपूताना मे इतना विस्तृत प्रचलन कैसे हो गया?" परम्परा इतिहास का अधिक प्रामाणिक स्रोत नही होती। यह कहना भी सरल नही है कि मेवाड की परम्परा कितनी प्राचीन है यह परम्परा जायसी के पद्मावत से अधिक प्राचीन है अथवा नही, यह विवादास्पद विषय है। चारणो के वृत्तात जायसी और फरिश्ता के बहुत बाद मे (लगभग अठारहवी शताब्दी मे लिखे गए थे। हो सकता है कि चारणो ने अपने वर्णनो का कथानक) पद्मावत से लिया हो और चारणो के इन वर्णनो ने इस रोमाचकारी कहानी को विस्तृत रूप दे दिया हो। भारतवासी स्वभाव से इस प्रकार की कहानियो को सुनने व दुहराने मे रुचि रखते हैं। पद्मिनी की रुमानी कथा भी भारत मे इतनी अधिक प्रचलित हो गई कि सत्रहवी शताब्दी मे भारत की यात्रा करने वाले विदेशी यात्री मनूसी ने भी इसकी घटनाओ का वर्णन अकबर के चित्तौड आक्रमण के सिलसिले मे कर दिया। वह लिखता है कि पद्मिनी राजा जयमल की रानी थी जिसे शाही बदीगृह से पालकियो की योजना द्वारा मुक्त किया गया था। डा० के० एस० लाल लिखते हैं कि "परम्परा निसन्देह इतिहास का एक स्रोत है किन्तु यह स्रोत निश्चयत निर्बलतम होता है और जब तक इसका समर्थन समकालीन साहित्य, शिलालेख, तवारीख अथवा मुद्रा से नही हो जाये उसे सच्चे इतिहास के रूप मे स्वीकार नही किया जा सकता ।" पद्मिनी की कहानी को सिर्फ इसलिए स्वीकार नही किया जाता कि यह इतने लम्बे समय तक और इतनी अधिक लोकप्रिय रही है। कथा इतनी प्रचलित हो गई कि आज से कुछ वर्ष पहले भारत मे स्थित लका के राजदूत चित्तौड पधारे। वे सिर्फ सुनी-सुनाई कहानी के आधार पर पद्मिनी के आभूषणो की तलाश मे आये थे। डा० गोपीनाथ शर्मा उनके साथ भेजे गए। लेकिन उन्हे चित्तौड के किले पर कही पर भी पद्मिनी के आभूषण प्राप्त होने के चिन्ह भी नही मिले।

अत निष्कर्ष यही निकलता है कि 1303 में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड पर आक्रमण किया और आठ मास के विकट सघर्ष के बाद वह उस पर अधिकार करने मे सफल हुआ तो उस समय चित्तौड की राजपूतनियो ने जौहर किया जिसमे राजा रतनसिंह की एक रानी भी थी और जिसका नाम पद्मिनी था। इसके अतिरिक्त और सब साहित्यिक कल्पनायें हैं जिनके लिए ऐतिहासिक समर्थन नही है।

रतनसिंह की मृत्यु और चित्तौड के 'पहले शाके' के साथ-साथ मेवाड की पाटवी शाखा का भी अन्त हो गया। अत सीसोदे का सामन्त हम्मीर जो लक्ष्मणसिंह सीसोदे का पौत्र था, अपने पैतृक राज्य को पुन प्राप्त करने की कोशिश करने लगा। अलाउद्दीन का पुत्र खिज्रखा 1313 तक चित्तौड मे रहा। लेकिन वह सुचारु रूप से व्यवस्था नही कर सका। अत जालौर के बागी सरदार मालदेव सोनगरा को चित्तौड दे दिया गया।

अलाउद्दीन ने चित्तौड का नाम खिजराबाद रख दिया और उसका प्रबन्ध अपने पुत्र खिज्र-खाँ को सौंप दिया।

अलाउद्दीन का अन्त 'गुस्से मे अपना ही मास नोचते हुए' 1316 मे हो गया। उसकी मृत्यु के कुछ समय पूर्व ही सल्तनत मे स्थान-स्थान पर विद्रोह की अग्नि भडक चुकी थी। परिस्थिति से लाभ उठाने के अभिप्राय से हम्मीर ने भी उत्पात मचाना प्रारम्भ कर दिया। अलाउद्दीन के निर्बल उत्तराधिकारी मालदेव और उसके पुत्र को कोई सहायता नही कर सके। अत हम्मीर ने निरन्तर प्रयत्नो के पश्चात् 1340 ई० के लगभग मेवाड पर अपना अधिकार कर लिया। उसने चित्तौड़ मे राजतिलक उत्सव भी मनाया और 'महाराणा' की उपाधि धारण की। तब से ही 1950 तक मेवाड मे सीसोदिया वश के गुहिल राजपूत राज्य करते रहे और वे 'महाराणा' की उपाधि से सम्बोधित किए जाते रहे हैं।

हम्मीर एक वीर, साहसी, निडर और स्वाभिमानी शासक था। इसने चेला खापुर (आधुनिक भीलवाडा) को भीलो से जीत कर अपने अधिकार मे किया। ईडर और पालनपुर के राजाओ को पराजित किया। महाराणा कुम्भा की कीर्ति-स्तम्भ-प्रशस्ति मे हम्मीर को 'विषय घाटी पचानन' कहकर पुकारा गया।

महाराणा हम्मीर

हम्मीर केवल एक विजेता ही नही था बल्कि उसने आस-पास के जागीरदारों को एकत्रित करके मेवाड की शक्ति को भी सगठित किया था। इसके अतिरिक्त इन बनवाया था।
चित्तौड के दुर्ग मे अन्नपूर्णा का मन्दिर और एक तालाब भी

हम्मीर की बढती हुई शक्ति ने बूदी के हाडा शासको के हृदय में ईर्ष्या की भावना जाग्रत कर दी। अत हम्मीर के पुत्र और उत्तराधिकारी क्षेत्रसिंह को इनसे शासन-काल में हाडा राजपूतो के साथ युद्ध लडने पडे। इसी प्रकार लाखा के

दिलावरखा के विरुद्ध भी युद्ध लडने पडे। हम्मीर ने ईडर के शासक रणमल को भी पराजित करके उसे बन्दी बनाया।[1] इस प्रकार लगभग 27 वर्ष शासन करने के पश्चात् क्षेत्रसिह 1405 ई० मे मृत्यु को प्राप्त हुआ।

क्षेत्रसिह ने अपने पिता हम्मीर के द्वारा सचालित सगठन-कार्य को जारी रखा। उसे व उसके पिता को मेवाड की दक्षिणी-पूर्वी तथा दक्षिणी सीमा विकसित करने का सौभाग्य प्राप्त हो गया क्योकि फीरोज तुगलक की मृत्यु (1388 A D) के पश्चात् दिल्ली सल्तनत अशक्त हो चुकी थी। तैमूर के आक्रमण (1398) ने इसे अधिक निर्बल कर दिया था। अत मेवाड के राणा को राज्य विस्तार तथा अपनी विजयो को सुसगठित करने का पर्याप्त सुअवसर प्राप्त हो गया।

महाराणा क्षेत्रसिह

क्षेत्रसिह का पुत्र और उत्तराधिकारी लाखा (लक्षसिह) केवल 15 वर्ष तक ही शासन कर सका क्योकि क्षेत्रसिह सौ वर्ष पूरे करके मृत्यु को प्राप्त हुआ था[2] और राज्याभिषेक के समय लाखा की काफी बडी आयु हो चुकी थी। लाखा का समकालीन मारवाड का राव चूँडा था। चूँडा ने मेवाड मे मैत्री सम्बन्ध बनाये रखने के उद्देश्य से अपनी पुत्री हसा का विवाह लाखा के पुत्र चूडा से करना चाहा। जब चूडा ने विवाह करने से इन्कार कर दिया तो लाखा स्वय विवाह करने के लिए तैयार हो गया। इसी हसाबाई के गर्भ से मोकल उत्पन्न हुआ जो लाखा की मृत्यु के पश्चात् मेवाड का शासक बना। हसाबाई का भाई रणमल अपनी बहिन के विवाह के पश्चात् मेवाड मे रहने लगा था।

लाखा

लाखा के शासन-काल मे मगरा के गाव जावर मे सोने और चादी की खानो का पता लगा। इन खानो ने मेवाड की आर्थिक स्थिति को सुदृढ किया। मेवाड पन्द्रहवी व सोलहवी शताब्दी मे इसी सोने और चादी के बल पर अपने शत्रुओ के विरुद्ध लडाईया लड सका। मेवाड मे जो सुन्दर-सुन्दर स्मारक (Monuments) बने हुए मिलते है वे इन्ही खानो की देन हैं। लाखा के शासन-काल मे व्यापार और वाणिज्य की भी अभिवृद्धि हुई[3]। कई विदेशी व्यापारी मेवाड मे आकर बस गए जिनमे से किसी एक ने पिछोला झील का निर्माण कराया।

---

1 Kumbhalgarh Inscription of 1460 A D—Ojha Raj ka Itihas, Vol I, Part I, P 257

2 See Rana Kumbha's Commenting on Jayadeo's Gita Govinda, P 2, Verse—9

3 1429 ई० के एकलिगजी शिलालेख से जाहिर होता है कि लाखा के शासन-काल मे नए बाट (Weights and Measures) आरम्भ कर दिए गए थे।

अलाउद्दीन खिलजी के अभियान के समय चित्तौड के किले मे जो महल और मंदिर नष्ट हो गए थे उन्हें लाखा ने पुन बनवाया। इसके अलावा कई और मंदिर व तालाब भी बनवाए गए। हिन्दुओ पर जो तीर्थ-यात्रा-कर लगा हुआ था उसे लाखा की प्रार्थना पर ही दिल्ली के सुलतानो ने बन्द किया था।[1] कहने का तात्पर्य यह है कि लाखा के शासनकाल मे मेवाड के भावी गौरव व प्रतिमा का मार्ग प्रशस्त हुआ।

महाराणा मोकल

लाखा का उत्तराधिकारी मोकल केवल 13 वर्ष ही राज्य कर सका। जब लाखा की मृत्यु हुई तब वह नाबालिग था। अत उसकी ओर से पहिले उसका सौतेला भाई चूंडा और बाद मे मामा रणमल राज्य की देखभाल करते थे। मोकल की हत्या ने मेवाड पर कठिनाइयो के पहाड ढहा दिये। नव विजित प्रदेशो के राजा और सामन्त स्वतन्त्र होने की कोशिश करने लगे। मालवा व गुजरात के सुलतान भी मेवाड की अस्त-व्यस्त आन्तरिक स्थिति से लाभ उठाने की टोह मे थे। अत मोकल के पुत्र और उत्तराधिकारी कुम्भा को प्रारम्भ से ही कठिनाइयो का सामना करना पडा।

महाराणा कुम्भा

मोकल की असामयिक हत्या ने मेवाड में अस्त-व्यस्तता फैलादी। मोकल को चाचा और मेरा नाम के दो सरदारो ने मारा था। इनमे से एक ने अपने को राणा घोषित कर दिया। मेवाड के कतिपय सामन्तो ने भी स्वतन्त्र होने के लिए विद्रोह किए। इसी समय गुजरात व मालवा के सुल्तान भी अपनी गिद्ध दृष्टि मेवाड पर लगाए बैठे थे।

प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

अत मोकल का साला रणमल राठौड सेना के साथ तुरन्त मेवाड आया। उसने अपहरणकर्ता को हटाकर अपने भानजे कुम्भा को गद्दी पर बैठाया। मेवाड के कतिपय असन्तुष्ट सरदारो ने मालवा मे जाकर शरण ली। लेकिन जब मालवा का सुल्तान ही युद्ध मे पराजित हो गया, तो विद्रोही सरदारो को गुजरात मे जाकर शरण लेनी पडी। रणमल्ल ने उन सरदारो का गुजरात तक पीछा किया, और जब गुजरात के सुल्तान ने उन सरदारो को अपनी सल्तनत से निकाल दिया तब रणमल्ल ने चैन की सास ली। बूंदी के हाडाओ ने भी विद्रोह किया और उनको भी रणमल्ल ने तुरन्त पराजित करके मेवाड मे शान्ति और व्यवस्था कायम की।

चूंकि कुम्भा प्रारम्भिक कठिनाइयो पर रणमल्ल की सहायता से ही विजय

1 Bhavanagar Inscriptions Vol I, p 98, Verse 38

प्राप्त कर सका था। अत स्वाभाविक रूप से रणमल्ल का प्रभाव बढने लगा। मेवाड की ख्यातो से तो जाहिर होता है कि रणमल्ल इतना अधिक प्रभावशाली हो गया था कि वह राणा के समान बर्ताव करने लगा और मेवाड के लोग समझने लगे थे कि एक न एक दिन रणमल्ल कुम्भा को मार कर मेवाड की गद्दी पर अधिकार कर लेगा। लेकिन मारवाड की ख्यातो को पढने से जाहिर होता है कि रणमल्ल के बढते हुए प्रभाव से मेवाड के सरदार इतने अधिक सशकित हो गए कि उन्होने रणमल्ल के विरुद्ध षड्यन्त्र करना शुरू किया षड्यन्त्रकारियो का नेता कुम्भा का ताऊ चूंडा था जो इस समय मालवा मे रह रहा था। चूंडा का छोटा भाई राघवदेव रणमल्ल की आज्ञा से मौत के घाट उतार दिया गया था। मेवाड तथा मारवाड की ख्यातें स्पष्ट रूप से स्वीकार करती हैं कि राघवदेव ने रणमल्ल के विरुद्ध विद्रोह का झडा उठाया था। अत राघवदेव की हत्या के पश्चात मेवाड के सरदारो ने रणमल्ल की भी (1438 ई०) मे हत्या कर दी।

मडोवर (मारवाड) के राव रणमल्ल का कुम्भा की नाबालिगी के जमाने मे मेवाड मे प्रभाव बढ़ने लगा

यहा यह बात स्पष्ट करनी आवश्यक है कि रणमल्ल की अभूतपूर्व सेवाओ के उपरान्त भी मेवाड की ख्यातो मे उसकी बुराई तथा चूंडा की प्रशसा की गई है। यदि चूंडा के चरित्र का सही विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि उसकी सेवाए कदापि इस योग्य नही थी कि उसकी तुलना महाभारत के भीष्मपितामह से की जाए। अपने पिता लाखा की हसाबाई के साथ शादी के समय चूंडा ने मोकल के हक मे गद्दी अवश्य त्याग दी थी। लेकिन इसका यह तात्पर्य नही है कि चूंडा के और सब भाइयो ने भी उत्तराधिकार त्याग दिया था। मोकल के राज्याभिषेक के समय किसी ने विरोध नही किया। यह इस बात को स्पष्ट करता है कि प्राचीन मेवाड मे दूसरे राजपूत राज्यो के समान उत्तराधिकार का नियम नही था। अत लाखा हसाबाई की औलाद के हक मे अपने सब पुत्रो को उत्तराधिकार से वचित कर गया और चूंडा तथा उसके भाई महाराणा लाखा के इस निर्णय के विरुद्ध कोई आवाज नही उठा सके फिर भी चूंडा को इससे असन्तोष अवश्य बना रहा अन्यथा उसे मेवाड के शत्रु मालवा के सुल्तान के पास जाकर रहने की क्या आवश्यकता थी ? क्या इससे यह स्पष्ट नही होता कि चूंडा भी मेवाड के सरदारो के साथ साठ-गाठ में था जिन्होने पहले मालवा मे तथा फिर गुजरात मे जाकर शरण ली थी ? यदि चूंडा को असन्तोष नही था तो वह कुम्भा की मदद के लिए मेवाड क्यो नही आया ? उसने विद्रोहियो को दबाने मे राणा की सहायता क्यो नही की ?

चूंडा के चरित्र का विश्लेषण

मडोवर के राव रणमल्ल की हत्या मेवाड और मारवाड के राज्यो मे एक

महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी जिसके परिणामस्वरूप लगभग 75 वर्ष तक इन दोनो का सघर्ष चलता रहा। स्पष्ट है कि मोकल के उत्तराधिकारी कुम्भा को विरासत मे कठिनाइयाँ ही प्राप्त हुई लेकिन प्रारम्भिक आठ वर्षों मे कोई विशेष परिस्थिति का उसे सामना नही करना पडा। अत उसे मेवाड को सुव्यवस्थित करने का अवसर प्राप्त हो गया। इस बीच मे कुम्भा ने कई किले व मदिर बनवाये।

राव रणमल्ल की हत्या

कुम्भा आकाक्षावादी शासक था। अत 1456 मे नागौर की गद्दी के लिए सघर्ष चला तो कुम्भा ने एक दावेदार का साथ देना मजूर कर लिया। दूसरे पक्ष को गुजरात के सुल्तान कुतुबुद्दीन का समर्थन प्राप्त था। अत उत्तराधिकार के संघर्ष मे कुम्भा को जो युद्ध लडने पडे उसमे गुजरातकी सेना को पराजित करके उसने नागौर को अपने अधिकार मे कर लिया।[1]

इसी समय मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी और गुजरात के सुल्तान कुतुबुद्दीन मे साठ-गाठ हो गई जिसका परिणाम यह निकला कि मेवाड को मालवा व गुजरात की सेनाओ का एक-साथ सामना करना पडा। इसी समय रणमल्ल के उत्तराधिकारी जोधा ने भी कुम्भा के विरुद्ध मुसलमानो के साथ सधि कर ली थी। केवल वाह्य शत्रु ही नही थे, वरन् कुम्भा के लघु भ्राता क्षेम ने भी राजा के विरुद्ध विद्रोह का झडा उठा दिया था।

गुजरात की सेनाओ ने सिरोही और कुम्भलमेर पर अधिकार कर लेने के बाद चित्तौड पर घेरा डाल दिया था। कुम्भा ने सुल्तान को पैसा दिया और वह लौट गया। लेकिन मालवा की सेना तो अपने सैनिको के आन्तरिक असन्तोष के कारण स्वय ही वापस लौट गई। कुम्भा ने अपनी पराजय का बदला लेने के लिए पुन सिरोही और नागौर पर अधिकार जमा लिया। अत 1457–58 मे कुतुबुद्दीन ने पुन कुम्भलगढ पर चढाई की। लेकिन इस बार मालवा का महमूद खिलजी तो मारवाड के साथ युद्ध रत था अत कुतुबुद्दीन को भी सफलता प्राप्त नही हो सकी और उसे वापस लौट जाना पडा।

महाराणा कुम्भा ने गुजरात और मालवा के सुल्तानो का दमन किया था।

---

1 To direct their efforts against Kumbha Mahmmud should assail him on one side and Qutubuddin on the other They would utterly destroy him divide his coun'ry between them all the town laying contaguous to Gujrat were to be attached

इस प्रकार 1459 ई० तक कुम्भा के जीवन का एक कठिन भाग समाप्त हो चुका था। उसने गुजरात व मालवा के मुसलमानो को पराजित कर दिया था।[1]

चित्तौड, रणपुर, आबू और कुम्भलगढ से प्राप्त महाराणा कुम्भा के शिलालेख बतलाते हैं कि इसने हाडा राजपूतो के सम्पूर्ण राज्य को अपने अधिकार मे कर लिया था। मेवाड मे माडलगढ, जहाजपुर, जावर, बदनोर पर अधिकार कर लिया। आमेर मे टोडा, मालपुरा, खाटू, जूना और चाटसू के प्रदेशो पर अधिकार कर लिया और अजमेर इसके अधिकार मे पहले ही आ चुका था। महाराणा कुम्भा ने सपालदक्ष के चौहानो को भी पराजित किया था और कोटा स्थित गागरोन का दुर्ग अपने अधिकार मे ले लिया। सम्पूर्ण मारवाड व अमरादरी (आमेर) पर कुम्भा का अधिकार हो गया था।

समस्त राजस्थान कुम्भा के अधिकार मे आ चुका था।

उसने सारगपुर पर अधिकार करके मालवा के सुल्तान के घमड को चूर किया। डूंगरपुर, बासवाडा पर अधिकार करके अपने राज्य की दक्षिणी-पूर्वी सीमा सुरक्षित की। जागल-प्रदेश को अधिकार मे करके उत्तर मे राज्य-विस्तार किया। रणथम्भौर पर अधिकार करके मेवाड की सीमाओ का विस्तार दिल्ली के निकट पडौस तक कर लिया। इस प्रकार लगभग समस्त राजस्थान पर एकछत्र शासन स्थापित किया।

लेकिन इन चमत्कारपूर्ण सैनिक विजयो का यह तात्पर्य नही है कि कुम्भा व्यर्थ मे खून-खराबी करने का शौकीन था। मेवाड की सुरक्षा के लिए सैनिक विजय बहुत अधिक आवश्यक थी। उसे कुछ युद्ध उन लोगो के विरुद्ध भी लडने पडे कि जिन्हे वह षड्यन्त्रकारी समझता था।[2]

महाराणा कुम्भा का साहित्यिक पराक्रम

कुम्भा केवल एक प्रतिभाशाली सेनानायक ही नही था वरन् वह स्वय एक अच्छा विद्वान एव कवि भी था। कविता के अतिरिक्त वह नाटक लिख सकता था और सगीत-शास्त्र पर निबन्ध भी। 'एकलिग महात्म्य से जाहिर होता है कि वह वेदो का ज्ञाता था और सस्कृत भाषा का विद्वान था। जयदेव के गीत-गोविन्द पर इसने जो

1 कुम्भलगढ शिलालेख (1460 ई० का) श्लोक 265
चित्तौड कीर्ति स्तम्भ शिलालेख, श्लोक 7

2 See- Maharana Kumbha by Pt H B Sarda, P 113

"Kumbha abhorred all unnecessary bloodshed, ruin and destruction, and he undertook only such military operations as were absolutely necessary for the protection of his country or as duty enjoined to punish evil doers"

टीका लिखी थी वह इसका सबल प्रमाण है। कीर्ति-स्तम्भ शिला-लेख से जाहिर होता है कि इसने जो चार नाटक लिखे थे उनमे तीन प्रातीय-भाषाओं (कर्नाटिकी, मेदपाटी, महाराष्ट्री) का प्रयोग किया गया था।

इसके अतिरिक्त वह स्वय एक सफल सगीतज्ञ था। वीणा बहुत अच्छी बजा सकता था। कई गीतों की स्वय उसने रचना की थी जिनमे राग और ताल का पूर्ण ध्यान रखा गया था।

महाराणा कुम्भा ने स्थापत्य-कला (Architecture) को भी पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। अत: उसके दरबारी (Architect) मडन के द्वारा वास्तु-शास्त्र पर कई ग्रन्थ लिखे गये। महाराणा ने स्वय कीर्ति-स्तम्भ के निर्माण पर एक ग्रन्थ की रचना की थी। यह सब उदयपुर की सरस्वती भवन पुस्तकालय तथा बीकानेर के अनूप सस्कृत पुस्तकालय मे सुरक्षित हैं।

कुम्भा के शासन-काल मे वास्तु-शास्त्र पर जो अनुपम ग्रन्थ लिखे गये वे इस बात के प्रमाण हैं कि महाराणा स्वय वास्तु-शास्त्र के विकास मे रुचि रखता था ऐसा

कलात्मक पराक्रम

माना जाता है कि मेवाड के 84 दुर्गों मे से 32 दुर्गों का कुम्भा ने ही निर्माण करवाया था। चित्तौड के किले की प्राचीर मे कतिपय बुर्ज इसके द्वारा बनवाये गये थे। किले तक पहुँचने की सडक तथा सातो दरवाजे महाराणा कुम्भा के द्वारा बनवाए माने जाते हैं। इसी किले मे कीर्ति-स्तम्भ तथा कुम्भा स्वामी व आदि बराह के मन्दिरो का निर्माण कुम्भा ने ही कराया था। एक-लिंगजी के मन्दिर का एक भाग जो का कुम्भा-मण्डप के नाम से विख्यात है, इसने ही बनवाया था।

उस युग मे 'यथा राजा तथा प्रजा' वाली कहावत पूर्णरूप से चरितार्थ होती थी। कुम्भा का अनुकरण करके साधारण व्यक्तियों ने भी कई मदिरो का निर्माण करवाया। सिरोही मे रणपुर का जैनमदिर तथा चित्तौड का शृगार-चौरी मदिर इसी शासनकाल में बनवाए गए थे।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि महाराणा कुम्भा केवल मेवाड के ही नहीं वरन् मध्ययुगीन भारत के एक महानतम शासक थे। उनके कार्य यह सिद्ध करते हैं कि राजपूत शासक केवल योद्धा ही नही अपितु साहित्य और कला के आश्रयदाता भी होते थे। सौभाग्य से महाराणा कुम्भा तो स्वय एक अच्छे विद्वान, कवि, सगीतज्ञ तथा वास्तु-शास्त्र के ज्ञाता थे।

नैणसी की ख्यात से जाहिर होता है कि कुम्भा अपने अंतिम दिनों मे पागल

कुम्भा के उत्तराधिकारी-उदय

हो गये थे। एक दिन वह कुम्भलगढ़ के पास तालाब के किनारे बैठे हुए थे तो उनके बड़े पुत्र उदय ने छुरा भोंक कर हत्या कर दी। शीघ्र गद्दी प्राप्त करने की लालसा पितृ-हत्या का एकमात्र कारण हो सकती है।

ऐसा माना जाता है कि जब उदय ने दरबार किया तो एक भी सरदार मुजरा करने के लिए उपस्थित नही हुआ। इससे यह स्पष्ट है कि मेवाड के सरदारो ने उदय के द्वारा कुम्भा की हत्या का विरोध किया था। साथ ही इससे यह भी स्पष्ट होता है कि मेवाड के सरदार पन्द्रहवी शताब्दी के अन्तिम चरण मे इतने शक्तिशाली हो गये थे कि वे शासक का विरोध भी कर सकते थे। अत उदय को पडोसी राजाओ से समर्थन प्राप्त करना पडा। समर्थन प्राप्त करने के लिए बहुत से प्रदेशो को छोडना पडा। सरदारो ने एकत्रित होकर उदय के छोटे भाई रायमल को बुला भेजा जो ईडर के किले को सम्भाले हुए थे। राजधानी से उदय की अनुपस्थिति मे रायमल को सरदारो ने गद्दी पर बैठा दिया। उदय ने भागकर कुम्मलगढ़ के किले मे शरण ली लेकिन वह शीघ्र ही रायमल के द्वारा पराजित कर दिया गया।

रायमल के द्वारा पराजित किए जाने पर उदय चुप नही बैठा। वह अपने दोनो पुत्रो को लेकर मालवा के सुल्तान गयासुद्दीन खिलजी के पास गया और उसे मेवाड पर चढाई करने के लिए तैयार कर लिया।[1] अत मे उदय के दोनो पुत्र थक कर बैठ गए और मेवाड छोडकर बीकानेर की ओर चले गये।

रायमल ने लगभग 36 वर्ष तक मेवाड पर राज्य किया। अपने शासनकाल के

रायमल

प्रारम्भ मे उसे कुम्भा के छोटे भाई क्षेम के विद्रोहो का सामना करना पडा, मालवा के सुल्तान के विरुद्ध युद्ध लडना पडा और आदिवासियो का दमन करना पडा। रायमल के जीवन-काल मे ही उसके तीनो पुत्रो (पृथ्वीराज, जयमल व सागा) के बीच उत्तराधिकार के लिए सघर्ष हुआ जिसमे विजयश्री सागा की ही रही और अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् सागा 1509 मे मेवाड की गद्दी पर बैठा।

सागा के पिता महाराणा रायमल के ग्यारह रानिया थी जिनसे 14 पुत्र और

महाराणा सागा

3 पुत्रियाँ हुई थी। जेष्ठ पुत्र पृथ्वीराज था और तीसरा पुत्र सागा था यह दोनो राजधर झाला की पुत्री रतनकुँवर के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। सागा का जन्म वैशाख बदी 9 विक्रमी सवत् 1539 मे हुआ था। 27 वर्ष की

---

1 टॉड का कहना है कि उदय मुसलमानो की सहायता लेने गया और अपनी लडकी का विवाह सुल्तान के साथ तै करके उसे अपनी सहायता के लिए तैयार कर लिया। फरिश्ता और नैणसी के वर्णनो से प्रकट होता है कि मालवा के सुल्तान ने मेवाड पर चढाई भी की थी। युद्ध मे रायमल ने सुल्तान को पराजित कर दिया। उदय युद्ध से पहले ही उलकापात के कारण मृत्यु को प्राप्त हो चुका था। लेकिन उसके दोनो पुत्रो ने रायमल के विरुद्ध युद्ध किया।

—टॉड, जिल्द प्रथम, पृष्ठ 233, नैणसी, जिल्द प्रथम, पृष्ठ 39, फरिश्ता

आयु मे जेष्ठ सुदि 5 वि० स० 1566 (4 मई 1508 ई०) के शुभ दिन चित्तौड के दुर्ग मे इनका राज्याभिषेक सस्कार हुआ था।

1508 मे राजस्थान मे चार राजपूत वशो के राज्य थे। मेवाड मे गुहिलोत वश के सीसोदिया राणा राज्य कर कर रहे थे। मडोर के आस-पास मारवाड मे राठौड अपनी शक्ति बढा रहे थे। बूँदी के हाडा शासक मेवाड का आधिपत्य स्वीकार कर चुके थे। आम्बेर के कछवाहो ने यद्यपि ढूढर के प्रदेश पर अपना अधिकार जमा लिया था लेकिन इनकी गणना शक्तिशाली शासको मे नही की जाती थी।

कुम्भा के राज्यकाल मे मेवाड सर्व-शक्तिमान राज्य बन चुका था। उसकी हत्या के पश्चात् कुछ प्रदेश उदय के हाथ से निकल गये थे[1] जिन्हे पुन प्राप्त करने का रायमल ने कोई प्रयत्न नही किया। अत राणा सागा का पहला कार्य उन प्रदेशो को पुन प्राप्त करना था जो कुम्भा की मृत्यु के पश्चात् मेवाड के अधिकार मे नही रहे थे।

इसके अतिरिक्त सागा को दिल्ली, मालवा व गुजरात के मुस्लिम सुल्तानो से भी लोहा लेना पडा। ये लोग सागा के विरुद्ध सगठित हो गए थे। अत सागा को एक-साथ बहुत से शत्रुओ का सामना करना पडा। लेकिन सागा को अपने शत्रुओ पर विजय प्राप्त हुई क्योकि दिल्ली के लोदी सुल्तान इब्राहीम लोदी की अविश्वासी और दमनकारी नीति ने उसके सरदारो को ही सुल्तान से अलग कर दिया था। दिल्ली सल्तनत की इस गिरती हुई स्थिति से सागा ने पूरा पूरा लाभ उठाने की कोशिश की। सौभाग्य से इस समय मालवा की आन्तरिक स्थिति भी ठीक नही थी। सुल्तान नासिरउद्दीन के शासन-काल मे मालवा का शासन-प्रबन्ध बिगड चुका था। उसका उत्तराधिकारी महमूद II बिगडती हुई स्थिति को नही सम्भाल सका। लेकिन सागा के राज्याभिषेक के समय गुजरात अपनी चरम सीमा पर था। वहाँ के सुल्तान मुजफ्फर-शाह द्वितीय के साथ सागा का सर्वप्रथम सघर्ष हुआ। ईडर मे राठौर राजपूतो का राज्य था। वहाँ का राव भान मृत्यु को प्राप्त हो चुका था। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र सूरजमल ईडर का राव हुआ लेकिन उसकी $1\frac{1}{2}$ साल बाद ही मृत्यु हो गई। उसके नाबालिग पुत्र रायमल को भीम ने ईडर को गद्दी से हटा दिया। रायमल सहायता के लिए चित्तौड पहुँचा। इसी बीच मे भीम की भी मृत्यु हो गई और उसका पुत्र

सागा का मालवा, गुजरात व दिल्ली के सुल्तानो के साथ सघर्ष

1 उदय ने आबू सिरोही के देवडा शासको को दे दिया था, अजमेर मे स्थित तारागढ के दुर्ग पर जोधा ने अधिकार कर लिया। जोधा के पुत्र [illegible] ने महाराणा की सेना को निकाल कर साम्भर पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार पडौसियो का समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से उदय ने मेवाड के प्रदेशो को [illegible] से निकल जाने दिया। 'महाराणा सागा' के लेखक हरबिलास शारदा, p [illegible] और 5।

जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह I
1800 ई० के लगभग बने चित्र का फोटोग्राफ
(कुमार सग्रामसिंह जी नवलगढ़ के सग्रह से)

जोधपुर नरेश महाराजा अजीतसिंह
1725 ई० के लगभग बूदी मे बने चित्र का फोटोग्राफ
(कुमार सग्रामसिंह जी नवलगढ़ के सग्रह से)

भारमल ईडर का राव हो गया । सागा ने रायमल की सहायता की और भारमल के स्थान पर उसे 1514 मे ईडर का शासक बनाया । भारमल सहायता के लिए मुजफ्फरशाह के पास पहुँचा । सुल्तान ने भारमल की सहायता के लिए निजाम-उलमुल्क के नेतृत्व मे सेना भेजी । पहले तो रायमल पराजित कर दिया गया लेकिन महाराणा सागा की सहायता के बल पर पुन 1517 मे ईडर का राज्य प्राप्त किया । तत्पश्चात् सुल्तान ने दो बार और सेनाएँ रायमल को पराजित करने के लिए भेजी लेकिन कोई सफलता प्राप्त नही हो सकी ।

जब ईडर के प्रश्न पर सागा और गुजरात के बीच युद्ध छिडा हुआ था उस वक्त मालवा के सुल्तान महमूद II ने भी गुजरात का साथ देकर सागा पर धावा बोल दिया था । लेकिन सागा ने पहले तो महमूद खिलजी को गुजरात की सेनाओ से पृथक किया और फिर गुजरात के सुल्तान के साथ भी सधि कर ली ।

सुल्तान मुजफ्फरशाह के साथ सधि करना इसलिए आवश्यक था कि 1517 मे सागा का दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी के साथ युद्ध छिड गया था । युद्ध का

सागा और इब्राहीम लोदी

कारण यह था कि मालवा की सल्तनत से इब्राहीम लोदी और राणा सागा दोनो ही लाभ उठाना चाहते थे । दूसरा[1] कारण यह था कि जब इब्राहीम लोदी अपने भ्राता जलालखाँ के विद्रोह का दमन करने मे व्यस्त था उस वक्त राणा सागा ने दिल्ली सल्तनत के प्रदेश पर ब्याना तक अपना अधिकार कर लिया था ।[2] अत विद्रोहो का दमन करने के पश्चात् सुल्तान ने सागा पर आक्रमण कर दिया । दोनो सेनाओ का खातौली के स्थान पर मुठभेड हुई । मुश्किल से दो पहर (पाच घटे) तक युद्ध लडा गया । इब्राहीम लोदी भाग खडा हुआ लेकिन इस युद्ध मे राणा सागा का एक हाथ कट गया था । अगले वर्ष 1518 मे इब्राहीम लोदी ने अपनी पराजय का बदला लेने के लिए पुन एक शक्तिशाली सेना सगठित की । धौलपुर के निकट दोनो सेनाओ मे युद्ध हुआ और इस युद्ध मे भी इब्राहीम लोदी की पराजय हुई ।[3]

इब्राहीम लोदी को दो बार युद्ध मे पराजित कर देने के बाद स्वभाविक रूप से सागा राजस्थान का सर्व शक्तिशाली शासक हो गया था । पहले खातौली और फिर धौलपुर के निकट इब्राहीम की सेनाओ के साथ युद्ध होना यह सिद्ध करता है कि सागा का राज्य हाडावती और मेवात पर स्थापित हो चुका था । उसने धौलपुर के युद्ध-

---

1 Dr A B Pandey First Afghan Empire in India, P 180

2 Pt H B Sarda Maharana Sanga, p 56

3 "Many brave and worthy men were made martyrs and the others were scattered" Elliot, v, P 19 (Tariki-Salatini Afghana)

स्थल से भागे हुए इब्राहीम के सैनिको का बयाना तक पीछा किया था। इस विजय के बाद आमेर के प्रदेश पर अधिकार करना महाराणा के लिए सुगम हो गया था।

इसमे सदेह नही कि राणा सागा अपने वश का सर्वाधिक आकाक्षावादी और शक्तिशाली राणा था। इसने एक साथ तीन शत्रुओ का सामना किया। वह मुसलमानो की बिगडती हुई स्थिति से लाभ उठाने का इच्छुक था। ऊपर कहा जा चुका है कि वह मेवाड के खोए हुए प्रदेशों को भी प्राप्त करने का इच्छुक था और साथ ही अपनी सेना को सगठित करने के लिए लालायित था। उसने अपने राज्य की सीमाएँ बयाना तक विकसित करली थी। सिरोही पर उसका दामाद राज्य कर रहा था। डूगरपुर और बाँसवाडा के शासक उसका आधिपत्य स्वीकार करते थे। रायसीन, काल्पी और चदेरी के राज्य उसके Vassals थे। अत उसे 'हिन्दूपत' (Chief of the Hindus) कहकर पुकारा जाता था तो इसमे कोई अतिशयोक्ति नही थी।

> सांगा राजस्थान का सर्वशक्तिशाली शासक था।

एक आधुनिक लेखक का कहना है कि अपने प्रतिद्विन्दियो को पराजित करने के सफल प्रयास मे राणा सागा ने स्वय उत्तर भारत के समकालीन शासको मे प्रथम स्थान प्राप्त कर लिया था। इब्राहीम लोदी को पराजित करके उसने दिल्ली के तख्त पर भी अपना हक कायम कर लिया था। राणा सागा की इस चमत्कारपूर्ण विजयो के साथ ही मेवाड के शासको की साम्राज्यवादी भावना अपनी चरम सीमा पर पहुच गई थी।[1]

अत इब्राहीम लोदी के विजेता जहीरउद्दीन मुहम्मद बाबर के साथ राणा सागा का 1527 मे सघर्ष होना अवश्यम्भावी था।

बाबर का राणा सागा के साथ सम्बन्ध
(Babar's Relations with Rana Sanga)

भारत मे मुगल साम्राज्य के सस्थापक जहीरउद्दीन मुहम्मद बाबर के सम्मुख पानीपत के युद्ध मे दिल्ली के शासक इब्राहीम लोदी को पराजित करने के पश्चात् भी दो शत्रुओ का दमन करना शेष था। अतएव आगरा पहुचने के पश्चात उसने कौंसिल आफ वार (१५२७) बुलाई। इस कौंसिल ने अफगानो का दमन करना राजपूतो की अपेक्षा अधिक आवश्यक समझा क्योकि नासिर खा लोहानी और मारूफ खाँ फरमूली के नेतृत्व मे ४०–५० हजार अफगान कन्नौज के निकट सगठित हो गए

---

1. "In getting the better of his rivals, Rana Sanga had secured for himself the leading position in Northern India, and in inflicting a crushing defeat upon the occupant of the imperial throne of Delhi, he advanced a claim upon that throne itself."
—Delhi Sultanate (Bhartiya Vidya Bhawan) p 344

थे। कौंसिल के सदस्यो ने राणा सागा की शक्ति को ठीक प्रकार नही समझा था। लेकिन वावर की आत्म-कथा को पढने से प्रकट होता है कि वह राणा सागा के नेतृत्व मे बढती हुई राजपूत सेना को आगरा के निकट वयाना तक पहुँचना अपने राज्य के लिये हानिकारक समझता था। वह अपनी आत्मकथा मे लिखता है कि "जब हम काबुल मे थे तो राणा सागा ने एक अपना दूत हमारे पास भेजा और उसके द्वारा हमे कहलाया गया कि यदि हम दिल्ली पर आक्रमण करेगें तो वह (सागा) स्वय आगरा पर धावा बोल देगा। हमने इब्राहीम लोदी को पराजित किया और दिल्ली व आगरा पर अपना अधिकार जमाया। लेकिन वह काफिर (Pagan) अभी तक नही आया है।"

आमतौर पर वावर ने अपनी आत्म-कथा मे अतिश्योक्ति नही की है। उसने कही कही सत्यो को छिपाया अवश्य है लेकिन सरासर झूंठ लिखने की भी कोशिश नही की है। इस प्रकार बाबर के वर्णन से जाहिर होता है कि राणा सागा ने उसके साथ वायदा-खिलाफी की थी और इसलिये वह उसकी बढती हुई शक्ति का दमन करना चाहता था। लेकिन वावर के इस वर्णन के ठीक विपरीत मेवाड का सक्षिप्त इतिहास नामक पाडुलिपि मे लिखा हुआ है कि "जब वादशाह बाबर काबुल मे राज्य करता था तो उसने विचारा कि भारतवर्ष का राज्य लोदी वादशाह करते हैं। उनको नष्ट कर दिल्ली मे अपना राज्य स्थापन करो, परन्तु अज्ञात देश मे जाना वहा के किसी प्राचीन राज्य की मित्रता से अच्छा है। जब उसने दिल्ली से इब्राहीम लोदी और मेटपाटेश्वर की वैमनस्यता श्रवण करी तव अपना एक अमात्य चित्र कूटाचल प्रेरणा किया उस पत्र मे वावर ने यह लिखा था इस ओर से तो मैं आकर दिल्ली पर अपना अधिकार करूंगा और उस ओर से आप आनकर आगरे मे अपना राज्य स्थापन करें" यद्यपि यह ग्रथ बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे पडित अक्षयनाथ के द्वारा लिखा गया था लेकिन इसका महत्व इसलिये अधिक है कि प० अक्षयनाथ के एक पूर्वज वागेश्वर खानवा क युद्ध मे राणा सागा के साथ थे। राणा सागा के दैनिक कार्यो को यह पुरोहित नोट करते थे और अपने पूर्वजो की डायरी के पन्नो के आधार पर ही प० अक्षयनाथ ने मेवाड के सक्षिप्त इतिहास की रचना की। दो अनुसधान ग्रथो के लेखको (Mewar and Mughal Emperors and Marwar and Mughal Emperors) ने इसे विश्वसनीय मान कर प्रयोग मे लिया है अत मेवाड के सक्षिप्त इतिहास को एकाएक असत्य कह कर नही पुकारा जा सकता है।

हो सकता है कि राणा सागा के विरुद्ध अपने अभियान को न्यायोचित करने के लिये वावर ने अपनी आत्म कथा मे सागा पर वायदा-खिलाफी का आरोप लगा दिया हो। लेकिन यह स्पष्ट है कि राणा सागा अपने समय का शक्तिशाली हिन्दू शासक था। जिस समय इब्राहीम लोदी के नेतृत्व मे दिल्ली सल्तनत डगमगा रही थी उस समय राणा सागा ने अपने आपको राजस्थान का सर्वशक्तिमान शासक वना लिया

था। कर्नल टॉड लिखता है कि आमेर और मारवाड के शासक उसके समक्ष नत-मस्तक होते थे। बाबर के लिये राणा सागा एक खतरा था। उसने रणथम्भोर के निकट खण्डार के दुर्ग को विजय कर लिया था और अब वह बयाना के युद्ध मे वहा के मुस्लिम किलेदार को पराजित करके आगरा की तरफ बढ रहा था। अत हो सकता है कि बाबर ने अपनी युद्ध-कौंसिल के सदस्यो को खामोश करने की गरज मे राणा सांगा पर वायदा-खिलाफी का आरोप लगा दिया हो। फिर भी यह सोचने की बात है कि राणा सागा तो स्वय इब्राहीम लोदी को अकेला ही खातौली के युद्ध मे पराजित कर चुका था। 1518 के बाद तो उसकी शक्ति और अधिक बढ गई थी। अत सागा को इब्राहीम के विरुद्ध एक विदेशी की सहायता मागने की अधिक आवश्यकता नही होनी चाहिये थी। लेकिन बाबर भारत-भूमि मे प्रविष्ट हो रहा था। उसने इब्राहीम लोदी के चाचा दौलत खा लोदी के साथ भी गठबधन किया था। हो सकता है कि उसी वक्त राणा सागा के साथ भी इब्राहीम के खिलाफ गठबधन करने का प्रयत्न किया हो। बाबर की आत्मकथा के अलावा और किसी भी ऐतिहासिक ग्रथ मे राणा सागा के द्वारा बाबर के पास दूत भेजना लिखा हुआ नही मिलता (देखिये Marwar and Mughal Emperors Pages, 21–22)।

लेकिन यह स्पष्ट है कि बाबर और राणा सागा के बीच का सघर्ष Clash of expectations था। राणा सागा यह समझता था कि अन्य दूसरे आक्रमण-कारियो के समान बाबर भी वापस लौट जायगा। लेकिन जब पानीपत की विजय के पश्चात् बाबर बढ़ता हुआ आगरे तक आ गया तो सागा को तैयारी करनी पड़ी। इधर पानीपत की पराजय के पश्चात् कतिपय अफगान नेता भी राणा सागा मे आ मिले थे। इनमे हसन खां मेवाती और महमूद लोदी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। अत जब तक बाबर और इब्राहीम लोदी के बीच सघर्ष चलता रहा तब तक राणा सागा तटस्थ रहा लेकिन इसी बीच उसने अपनी सैनिक-शक्ति बढाली थी। सैनिक शक्ति बढाने के साथ साथ खण्डार तथा बयाना के मुस्लिम किलेदारो को अपने अपने किले से निकाल बाहर करके राणा सागा ने बाबर को युद्ध के लिये उत्तेजित किया। बाबर इसको बर्दास्त नही कर सकता था। एक धर्मान्ध मुसलमान की तरह वह अपनी आत्मकथा मे लिखता हैं कि 'Infidel Standards dominated some two hundred towns in the territories of Islam, in them mosques and shrines fell into ruin From them the wives and children of the faithful were carried away captive "[1]

इस प्रकार एक ओर बाबर अपने-आपको इस्लाम का सरक्षक मानता था तो दूसरी ओर राणा सागा अपने आपको हिन्दू धर्म और सस्कृति का पोषक समझता था।

---

1 श्रीमती बेवरीज कृत (बाबरनामा का अंग्रेजी अनुवाद, जिल्द २, पृ ५६२)

2 "Thus religious hatred added to political and economic causes brought about a complete rupture between the two indomitable rivals'
— G N Sharma, Page 26

बाबर को यह भी डर था कि यदि वह राणा सागा को पराजित करने मे देर करेगा तो हो सकता है कि उसकी पूर्व-विजय निष्फल हो जाय और उस हालत मे वह सुरक्षित अपने निवास स्थान (काबुल) तक नही पहुच सके। राणा सागा के साथ युद्ध से पहले बाबर और सागा की सेनायें एक दूसरे के आमने-सामने चार दिन तक (13 मार्च से 16 मार्च तक) पडी रही। इस समय बाबर के सैनिक इतने अधिक हतोत्साहित और निराश थे कि उनमे स्फूर्ति उत्पन्न करने के लिए बाबर को एक जोशीला भाषण देना पडा और काबुल से आई हुई मदद को रात मे ऐसे ढग से परेड करवानी पडी कि उसके निराश सैनिको मे पुन नया जोश उमड आया लेकिन कर्नल टॉड का कहना सत्य हो सकता है कि युद्ध से पहले भी बाबर ने राणा सागा के पास सदेश भिजवाया था कि यदि वह उसका आधिपत्य स्वीकार कर ले तो युद्ध टल सकता है। युद्ध से कुछ समय पहले ही काबुल से एक ज्योतिषी आया जिसने बाबर के विरुद्ध नक्षत्र बतलाये। ज्योतिषि की इस भविष्यवाणी ने बाबर जैसे योद्धा के मन मे भी हलचल उत्पन्न कर दी थी और उसने सागा के पास सन्देश भिजवाया। यह स्पष्ट है कि अपने हतोत्साहित सैनिको को धर्म-युद्ध (जिहाद) का सदेश देकर बाबर ने राणा सागा के विरुद्ध लडने के लिये उत्तेजित किया। बाबर की दृष्टि मे खानवा का युद्ध-धर्म युद्ध हो सकता है लेकिन सागा के साथ तो खानवा के मैदान मे मुसलमान और हिन्दू दोनो एक झडे के नीचे लडे थे। बाबर ने विजय के पश्चात् काफिरो के मुण्डो (heads) की मीनार जरूर बनवाई लेकिन यह कहा गारन्टी है कि मीनार जिन मुण्डो की बनवाई गई थी वह सभी मुड केवल हिन्दुओ के ही थे ? अत खानवा के युद्ध को धर्म-युद्ध कहना एक ऐतिहासिक असत्य होगा।

खानवा का युद्ध

बाबर और राणा सांगा के बीच खानवा का सुप्रसिद्ध युद्ध आधुनिक भरतपुर जिले की रूपबास तहसील के खानवा नामक ग्राम के मैदान मे शनिवार तदनुसार 16 मार्च, 1527 के दिन लडा गया था।

खानवा के युद्ध मे (offensive) आक्रमण राणासागा की सेना द्वारा किया गया और सुबह लगभग 9½ बजे पहला गोला राणा की सेना के बाम पक्ष की ओर से मारवाड की सेना ने दागा। दोपहर तक युद्ध जोरो पर रहा। ऐसा प्रतीत होता था कि कभी भी बाबर की पराजय हो सकती है लेकिन धीरे धीरे राजपूत सेनानायक धराशाही होते गये और बाबर की सेना को नया उत्साह मिलता गया। अचानक राणा के एक तीर का घातक घाव लगा और बेहोश होकर गिर पडा। बेहोशी की हालत मे ही उसे बसवा के सुरक्षित स्थान पर आमेर के शासक पृथ्वीराज कछवाहा व जोधपुर की सेना के अधिनायक मालदेव ने पहुचाया। लेकिन राणा के पश्चात् सलूम्बर का जागीरदार रतनसिह और अज्जा अधिक समय तक बाबर की तोपो का मुकाबला नही कर सके और राजपूत सेना बुरी तरह पराजित

हुई। विजयी बाबर ने गाजी की उपाधि धारण करके सिद्ध कर दिया कि उसने काफिरो के विरुद्ध जिहाद किया था।

खानवा के युद्ध मे राजपूतो की पराजय के कारण

कर्नल टॉड, हरविलास शारदा और कवि राजा श्यामलदास के ग्रन्थो के अनुसार खानवा के युद्ध मे रायसिह के शासक सल्हदी तँवर के द्वारा विश्वासघात ही राणासागा की पराजय का प्रमुख कारण था। लेकिन सल्हदी तँवर तो उस समय युद्ध-स्थल से भागा था जब राणा सागा घायल होकर बसवा पहुँच चुके थे। बाबर उसके भागने से पूर्व दो युद्ध विजय कर चुका था इसलिये केवल सल्हदी के विश्वासघात को राणा की पराजय का कारण मानना युक्तिसगत नही है।

राणा सागा ने खानवा के युद्ध से पहले 'पाती पेरवन' की राजपूत परम्परा को पुनर्जीवित करके राजस्थान के प्रत्येक सरदार को युद्ध मे शामिल होने का निमत्रण दिया था। इस प्रकार खानवा के युद्ध-क्षेत्र मे राणा की जो लम्बी चौडी सेना थी उसमे एकरूपता नही थी। भिन्न-भिन्न राजपूत सैनिक अपने सरदारो के झडो के नीचे ही लड सकते थे। स्वाभाविक तौर पर सेना मे अनुशासन भी नही था।

इसके अतिरिक्त राणा के अधिकाश सैनिक पैदल थे। उनके विरोधी तेज घोडो पर सवार थे। अत बाबर के मुकाबले राणा की सेना का विजयी होना असम्भव था।

राणा के पास तोपखाना (Artillery) नही था जब कि बाबर की सारी शक्ति तोपखाने पर ही निर्भर थी और वही उसकी विजय का प्रमुख कारण थी। किसी ने बिल्कुल ठीक कहा है "Arrows could not answer bullets."

राणा सागा ने बाबर की शक्ति का ठीक प्रकार से अनुमान नही लगाया था अन्यथा उन्हे अपनी परम्परागत युद्ध-प्रणाली को छोडकर नवीन रीति अपनानी चाहिये थी। इसके विपरीत बाबर ने विभिन्न युद्धो के अनुभव के आधार पर तुगुलुमा को अपना सीधा साधन बना लिया था। अपनी सेना का [illegible] क्षेत्र मे सजाकर उसकी बैलगाडियो के द्वारा रक्षा करने की युद्ध-प्रणाली [illegible] वह सफलता के साथ पानीपत के युद्ध मे कर चुका था। इन सब बातो मे [illegible] और उनके सैनिक अवगत नही थे।

बाबर ने युद्ध के समय अपनी पैनी दृष्टि सेना के हर भाग पर रखी [illegible] वह व्यक्तिगत रूप से अपने सैनिकोकी देखभाल कर रहा था जबकि [illegible] साधारण सैनिक के समान राजपूत परम्परा के अनुसार युद्ध करने [illegible] थे जिसका परिणाम यह निकला कि वह घायल होकर [illegible]।

राणा सागा की पराजय का सबसे बडा कारण यह था कि [illegible] का सदुपयोग नही किया। उस समय जबकि बाबर [illegible] पर अधिकार नही कर लिया इसका दुष्परिणाम यह निकला कि [illegible]

के युद्ध-क्षेत्र मे पराजय हुई। "Rana was completely out witted by Babar in diplomacy and war" प्रो० शत्रु विलियम्स लिखते हैं कि "The consequence of the battle of Khanva were most momentious the-Mughal Empire in India was now firmly established Babar had definitely seated himself upon the throne of Ibrahim - His days of wandering in search of a fortune now passed away And it is significant of the new stage in his career which this battle marks that never afterwards does he have to stake his throne and life upon the issue of a stricken field" (See An Empire Builder of the Sixteenth Century, P 156-157)

खानवा के युद्ध का परिणाम

खानवा के युद्ध क्षेत्र मे राजपूतो की पराजय अवश्य हुई लेकिन इसने भी मुगलो के दाँत खट्टे कर दिये। यह स्पष्ट है कि विजयी बाबर अपने जीवन-काल मे राजस्थान की ओर बढ़ने का इरादा भी नही कर सका पर इस युद्ध ने राजस्थान को नेतृत्वहीन कर दिया। राणा सागा की पराजय के पश्चात् राजस्थान का नैतिक पतन प्रारम्भ हो गया। मेवाड शक्तिहीन होता गया और इसके स्थान पर मालदेव के नेतृत्व मे मारवाड शक्ति-सम्पन्न हो गया। खानवा के युद्ध में हर परिवार का एक योद्धा मारा गया था। इससे भी यह स्पष्ट है कि राजपूत इस युद्ध के पश्चात भविष्य मे सगठित होकर शत्रु का मुकाबला करने की बात ही नही सोच सके। लेनपूल ने ठीक ही लिखा है कि "The Battle of Panipat had utterly broken the power of the Afghans in India the battle of the Khanva crushed the great confederacy of the Hindus" (See Babar by Lanepool page, 182)

खानवा के युद्ध-क्षेत्र से महाराणा को मूर्छित अवस्था मे आमेर के पृथ्वीराज और जोधपुर के मालदेव ने बसवा नामक स्थान पर पहुचाया था। वहा पहुँचने पर महाराणा की मूर्छा उड गई। 'महाराणा यश प्रकाश' नामक ग्रन्थ को पढने से प्रकट होता है कि महाराणा को इतना अधिक दुःख हुआ कि वे रणथम्भोर के दुर्ग मे एकाँतवास मे चले गए। बडी कठिनाई से एक चारण[1] उनसे भेंट करने मे सफल हुआ। उसकी जोशीली कविता ने राणा को एक बार फिर से अपने विजेता बाबर का मुकाबला करने का प्रोत्साहन दिया।

साँगा के अन्तिम दिन

इसी समय महाराणा को मालूम हुआ कि बाबर चन्देरी पर आक्रमण करने

1 'महाराणा यश प्रकाश' मे चारण का नाम सोढा जमनाजी दिया हुआ है। पडित हरविलास शारदा ने उसका नाम टोडरमल चचलिया लिखा है।

के लिए काल्पी तक पहुच गया है (दिसम्बर 1527 ई०) बाबर एरिच[1] के मार्ग से गुजरने वाला था अत. राणा सागा पहले ही अपनी सेना सहित ऐरिच पहुच गए लेकिन युद्ध छिडने से पर्व ही महाराणा का उनके मन्त्रियो द्वारा विष दे दिया गया क्योकि वे लोग पुन युद्ध के लिए तैयार नही थे। इस प्रकार 21 वर्ष शासन करने के पश्चात् 30 जनवरी 1528 ई० को महाराणा का देहावसान हुआ। राणा सागा की मृत्यु कहा हुई, यह निश्चित नही कहा जा सकता है। राणा सागा के एरिच तक पहुँच जाने तथा काल्पी मे उनकी मृत्यु होने के बाद माण्डलगढ मे दाह-क्रिया करने की बात स्वीकार करना भौगोलिक, सामरिक एव ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा भ्रमपूर्ण है।"[2]

महाराणा सागा मझौले कद के हृष्ट-पुष्ट योद्धा थे। उनका श्वेत वर्ण, लम्बे हाथ और बडी-बडी आखें थी। यद्यपि मृत्यु के समय उनकी एक आख, एक हाथ और एक टाग[3] ही थी और उनके शरीर पर 80 घावो के निशान भी मौजूद थे लेकिन फिर भी उनका यश, प्रभुत्व और जोश कम नही हुआ था।
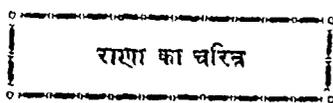
राणा का चरित्र

इनको सेना मे एक लाख योद्धा और पाचसौ हाथी थे। सात बडे बडे राजा 9 राव व 104 रावत उनके आधीन थे। जोधपुर और आमेर के शासक इनका सम्मान करते थे। ग्वालियर, अजमेर, सीकरी, रायसीन, काल्पी, चदेरी, बूदी, गागरोन, रामपुरा और आबू के राजा इनके सामन्त थे।[4] बाबर ने स्वय उनकी प्रशसा करते हुए आत्म–कथा मे लिखा कि "राणा सागा अपनी बहादुरी और तलवार के बल पर बहुत बडा हो गया था। मालवा, दिल्ली और गुजरात का कोई अकेला सुल्तान उसे हरा नही सकता था।" उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मेवाड के महाराणाओ मे महाराणा सागा सबसे अधिक प्रतापी शासक हुए थे जिन्होंने अपने पुरुषार्थ के द्वारा मेवाड को उन्नति के शिखर पर पहुचा दिया था, यद्यपि वे भारत से तुर्कों को निकाल कर एकछत्र हिन्दू राज्य स्थापित करने मे सर्वथा असफल रहे थे।[5]

---

1 एरिच काल्पी के दक्षिण पूर्व मे 28 880 N व 78 8°E मे है।

2. डा० रघुवीरसिंह 'पूर्व आधुनिक राजस्थान' पृ० 21 (टिप्पणी)

3 आख अपने भाई पृथ्वीराज के साथ सघर्ष करते समय फूट गई थी और एक बाहु व एक टाग इब्राहीम लोदी के साथ सघर्ष मे खो चुके थे।

—H B Sarda Maharana Sanga, P 1[illegible]

4 Tod Annantiquities of Rajasthan, I,

5. H B Sarda Maharana Sanga P 3
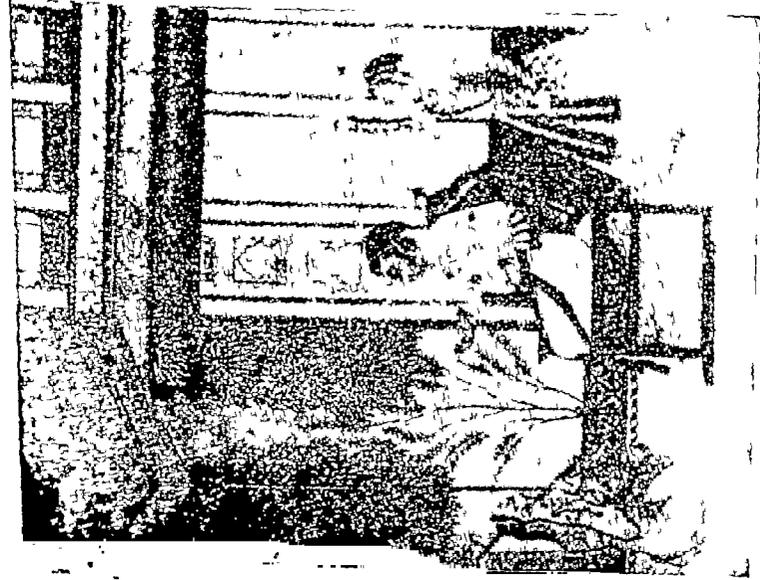
नागौर के राव इन्द्रसिंह, 1725 ई० के लगभग बने चित्र का फोटोग्राफ (कुमार सग्रामसिंहजी नवलगढ के सग्रह से)
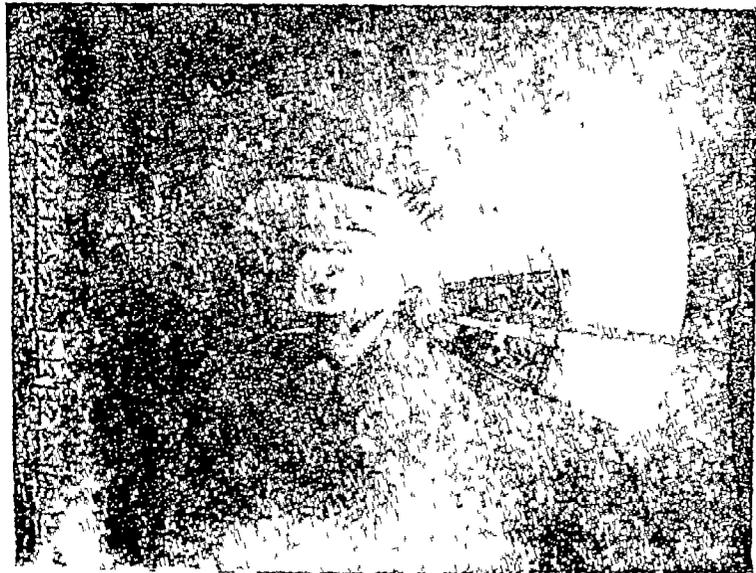
कीरतसिंह कच्वाहा, 1698 के लगभग अजमेर मे बने चित्र का फोटोग्राफ (कुमार सग्रामसिंहजी नवलगढ के सग्रह से)

Jodha Bai, Wife of Jahangir
(Early 17th Century)

सागा का ज्येष्ठ पुत्र भोजराज, जो जगत-प्रसिद्ध भक्त–शिरोमणी मीराबाई का पति था, अपने पिता के जीवन-काल मे ही मृत्यु को प्राप्त हो चुका था। अत सागा की मृत्यु के पश्चात् रतनसिह मेवाड का शासक हुआ। रतनसिह का जन्म धनसी के गर्भ से हुआ था जा मारवाड के राव गगा की बहिन थी।

महाराणा सांगा के निर्बल उत्तराधिकारी 1528–1536

सागा ने अपने जीवन-काल मे ही छोटे पुत्रो–विक्रम और ऊदा को रणथम्भोर की अर्द्ध-स्वतन्त्र जागीर प्रदान कर दी थी।[1] इस जागीर मे साठ लाख की वार्षिक आय होती थी। रतनसिह ने शासन-सत्ता सभालते ही रणथम्भोर की जागीर वापस लेनी चाही। विक्रम और ऊदा की नाबालिगी के जमाने मे जागीर का प्रबन्ध उनकी माता रानी कर्णवती[2] कर रही थी जो बू दी के राजा सूरजमल की बहिन थी अत रतनसिह उसकी विमाता कर्णवती के विरोध मे उठ खडा हुआ। अपने बडे पुत्र विक्रम को मेवाड की गद्दी दिलाने के प्रयत्न मे मेवाड के कट्टर शत्रु बाबर से सहायता मागने मे भी कर्णवती को कोई हिचकिचाहट नही हुई। यद्यपि बाबर तो इस झगडे मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही कर सका लेकिन इस प्रश्न को लेकर रतनसिह और कर्णवती के बीच विरोध बढता ही गया जिसका परिणाम यह निकला कि राणा रतनसिह राणी कणवती के भ्राता सूरजमल के हाथो बू दी मे 1531 मे मारा गया। रतनसिह की मृत्यु के साथ ही हाडा और सिसोदियो के उस वैर का प्रारम्भ हुआ जो शताब्दियो तक निरन्तर चलता रहा।

रतनसिह के बाद विक्रम मेवाड की गद्दी पर बैठा। लेकिन यह मेवाड की बिगडती हुई स्थिति को कतई नही सभाल सका। उसमे छिछोरापन था। अत सरदार अप्रसन्न होकर अपने अपने ठिकानो मे चले गए। मेवाड मे सवत्र अव्यवस्था फैल गई।

इसी समय गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह ने मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी को पराजित करके (मार्च-अप्रैल, 1531) अपनी शक्ति बढा ली। बहादुरशाह ने रायसीन पर धावा किया। विक्रमाजीत ने वहा के शासक सलहदी तवर की सहायता करनी चाही। सहायता करने के चक्कर मे विक्रमाजीत ने बहादुरशाह से वैर मोल ले लिया। मेवाड के कतिपय असन्तुष्ट सरदार भी बहादुरशाह के दरबार मे पहुँच

---

1 राणा सागा के इस कार्य की भर्त्सना करते हुए एक आधुनिक इतिहासकार ने लिखा है कि स्वर्गीय महाराणा की इस भूल के कारण मेवाड मे ईर्षा और द्वेष का वातावरण उत्पन्न हुआ जिसका परिमाण यह निकला कि मेवाड का विकास अवरुद्ध हो गया। (See Mewar and the Mughal Emperors by Dr G N Sharma, p 46)

2 इसे कर्मवती कहकर भी पुकारा जाता था।

गये और बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर हमला बोल दिया। विवश होकर राजमाता कर्णवती के सुझाव पर विक्रमाजीत को बहादुरशाह के साथ 24 मार्च, 1533 के दिन संधि करनी पड़ी जिसके परिणामस्वरूप राणा सांगा के द्वारा विजय किये गये मालवा के समस्त परगने तथा विजयोपहार बहादुरशाह को सौंपने पड़े।

बहादुरशाह इससे ही सन्तुष्ट नहीं हुआ। गागरोन और रणथम्भौर के किले पहले ही मेवाड़ के अधिकार से निकल चुके थे। अब बहादुरशाह को अजमेर पर अधिकार करने की इच्छा पुनः जाग्रत हो गई। अतः उसने पुनः चित्तौड़ का घेरा डाल दिया। इस समय राणी कर्णवती ने बहादुरशाह के शत्रु मुगल सम्राट् हुमायूं से सहायता चाही। पदमशाह नामक दूत के साथ राणी ने मुगल सम्राट के पास 'राखी' भेजी। हुमायूं ने दूत का उचित सत्कार करके उसे तो भेंट सहित लौटा दिया लेकिन रानी की इच्छानुसार मेवाड़ की गुजरात की सेनाओं के विरुद्ध कोई सहायता नहीं की। हुमायूं ने मेवाड़ की सहायता नहीं की, इसके कारण निम्नांकित थे—

(i) जब कभी एक मुस्लिम शासक हिन्दू राजा पर आक्रमण करता था तो दूसरे हिन्दू तो उसकी इस भय से सहायता नहीं करते थे कि उनकी भी बारी आ जायेगी और एक मुसलमान के विरुद्ध दूसरा मुसलमान सुल्तान मदद नहीं करता था। यही सोचकर हुमायूं ने भी मेवाड़ की सहायता नहीं की।

(ii) जिस समय रानी कर्णवती का दूत सहायतार्थ हुमायूं के पास पहुंचा था ठीक उसी समय बहादुरशाह ने मुगल सम्राट् के पास एक पत्र भेजा। उसमें लिखा कि बहादुरशाह जिहाद में व्यस्त है, उसके विरुद्ध मेवाड़ की सहायता करना हुमायूं को शोभा नहीं देता। इसका मिला-जुला परिणाम यह निकला कि हुमायूं आगरा से ग्वालियर तक आया और फिर वापस लौट गया।

अतः रानी कर्णवती को अप्रसन्न सरदारों की सहायता पर ही निर्भर होना पड़ा। रानी के आमन्त्रण पर अप्रसन्न सरदार चित्तौड़ की रक्षा के लिए उपस्थित हुए। विक्रमाजीत और उदयसिंह को तो उनके ननसाल बूंदी भेज दिया गया और राणा कुम्भा के छोटे भाई खेमा के पौत्र रावत बाघा के नेतृत्व में चित्तौड़ के दुर्ग की रक्षा का असफल प्रयास किया गया। रावत बाघा मारा गया और उसके बाद 8 मार्च 1535 के दिन चित्तौड़ पर बहादुरशाह का अधिकार हो गया। यह घटना चित्तौड़ के इतिहास में 'दूसरे साके' के नाम से प्रसिद्ध है।

हुआ । परिणाम यह निकला कि 1536 के अन्तिम महीनो मे राणा रायमल के कुवर पृथ्वीराज के अनौरस पुत्र बणवीर ने विक्रमाजीत को मार कर गद्दी पर अधिकार कर लिया । अपने रास्ते के काटे उदयसिह, विक्रमाजीत के छोटे भाई को फना करने के प्रयत्न मे बणवीर असफल रहा । स्वामिभक्त पन्ना धाय ने उदयसिह की बणवीर से रक्षा की । मेवाड राजघराने के हितैषी उदयसिह को लेकर कुम्भलगढ पहुचे और वही 1537 A D मे उसे मेवाड का शासक घोषित किया गया । यही उदयसिह मेवाड शिरोमणी महाराणा प्रताप के पिता थे जिन्होने उदयसागर और उदयपुर बसाये थे । बडी कोशिश के बाद उदयसिह अपहरणकर्ता बणवीर को चित्तौड से तीन वर्ष के बाद निकाल बाहर करने मे सफल हो सके (1540 A D) ।

राणा सागा की मृत्यु के पश्चात् आपसी झगडो और बाहरी आक्रमणो के फल-स्वरूप मेवाड राज्य की शक्ति क्षीण हो गई थी । अत जब शेरशाह मारवाड पर अधिकार करने के बाद चित्तौड की तरफ बढ रहा था, तब उदयसिह ने किले की चाबिया स्वत ही सूर सुल्तान के पास जहाजपुर के मुकाम पर भिजवा दी । लेकिन मेवाड पर सूर सुल्तानो का अधिक दिनो तक अधिकार नही रहा । शेरशाह के उत्तराधिकारी इस्लामशाह ने राजस्थान के स्वाधीन राज्यो मे हस्तक्षेप करने का कोई प्रयास नही किया । अत मेवाड के प्रशासन को सुव्यवस्थित करने का उदयसिह को पर्याप्त अवसर प्राप्त हो गया । इसी समय (1559 A D) राणा ने उदयपुर की स्थापना की और 7 फरवरी 1559 के दिन उदयसागर[1] की नीव रक्खी ।

उदयसिह के यह कार्य तो प्रशसनीय थे लेकिन ईर्ष्यावश मारवाड के शासक मालदेव के विरुद्ध शेरशाह के सेनानायक हाजीखा पठान की सहायता करके तथा फिर उसी हाजीखा के साथ रगराय पातर नामक सुन्दरी को प्राप्त करने की राणा की लालसा ने मेवाड को हरमाडा के युद्ध मे धकेल दिया । यह युद्ध 24 जनवरी 1557 के दिन लडा गया था । इस युद्ध मे राणा उदयसिह पराजित हुए । हरमाडा के युद्ध के पश्चात् समकालीन मुगल-सम्राट अकबर का ध्यान राजस्थान की ओर आकर्षित हुआ । उदयसिह और उसके उत्तराधिकारियो को इसके बाद निरतर दिल्ली और आगरा के मुगल बादशाहो के साथ सघर्ष करना पडा । स्पष्ट है कि उदयसिह का शासन-काल मेवाड के इतिहास मे एक महत्वपूर्ण काल था जहा से मेवाड और मुगलो के सघर्षमय इतिहास का प्रारम्भ होता है ।

---

1 यह स्थान आधुनिक उदयपुर शहर से 8 मील पूर्व मे है । उदयसागर झील 2½ मील लम्बी व 1½ मील चौडी है ।

BIBRIOGLAPHY

1 Tod . Annals of Mewar
2 G H. Ojha History of Rajputana, Vol I (Hindi)
3. J S Gehlot History of Rajputana, Vol I (Hindi)
4 G C Raychaudhary History of Mewar (up to 1303 A D)
5 The Delhi Sultanate (Bhartiya Vidya Bhawan, Bombay)
6 H B Sarda Maharana Kumbha
7 H B Sarda Maharana Sanga
8 G N. Sharma Mewar and the Mughal Emperors
9 Dr K S Lal : History of Khiljis
10. Rushbrook Williams An Empire Builder of the Sixteenth Century.
11. Dr M L. Mathur Early History of Mewar (unpublished)
12 Dr J P Strattan Chittor & the Mewar Family

8

मारवाड़ का इतिहास (सन् 1562-तक)

(History of Marwar (up to 1562 A D)

राजस्थान का पश्चिमी भाग मारवाड के नाम से विख्यात है। चूंकि यह प्रदेश रेतीला है अत प्राचीन काल से ही यह 'मरुस्थल'[1] 'मरुकातार'[2] और 'मरु'[3] कहकर पुकारा जाता रहा है। जिस प्रकार मारवाड का प्राचीन नाम 'मरु'[4] है उसी प्रकार जैसलमेर के पूर्वी भाग का प्राचीन नाम 'माड' है। मरु और माड की सीमायें परस्पर मिली हुई थी। कालान्तर मे यह दोनो देश सयुक्त हो गए और यह सयुक्त प्रदेश 'मरुमाड' (रेगिस्तान से रक्षित देश) के नाम से पुकारा जाने लगा। मरुमाड का अपभ्र श मारवाड है। मारवाड को 'मुरधर देश'[5] भी कहकर पुकारा जाता है।

मारवाड का प्राचीन इतिहास

प्राचीन काल मे मरु देश का विस्तार समुद्र से सतलज नदी तक था[6]। अकबर के दरबारी इतिहासकार अबुलफजल ने इस प्रदेश की लम्बाई चौडाई 100 × 60 कोस लिखी है।[7] लेकिन स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् देशी राज्यो के विलीनीकरण के समय यह देश 24°37' और 27°42' उत्तर अक्षाश तथा 70°5' और 75°22' पूर्व देशान्तर के बीच फैला हुआ था और इसकी लम्बाई 320 मील व चौडाई 170 मील तथा क्षेत्रफल 35016 वर्गमील

मारवाड़ की भौगोलिक स्थिति

---

1 भर्तृहरि ने 'नीतिशतक' (श्लोक 49) मे इस प्रदेश को 'मरुस्थल' कहकर पुकारा है।

2 बाल्मीकीय रामायण (युद्धकाण्ड, सर्ग 22), मे राजपूताना के सम्पूर्ण रेगिस्तान के लिए 'मरुकातार' शब्द का प्रयोग किया गया है।

3 भागवत (प्रथम स्कन्ध, अध्याय 10) मे इसे मरुधन्व कहकर पुकारा गया है जिसका अर्थ 'मरु' नाम का रेगिस्तान है।

4 मालानी का प्रदेश माड कहकर पुकारा जाता था। माड का शाब्दिक अर्थ वितान अथवा चँदवा है।

5 मुरधर शब्द मरुधरा का अपभ्र श है। मरुधरा का अर्थ मारवाड की भूमि है।

6 टॉड एनाल्स एन्ड एन्टीक्वीटीज आफ राजस्थान, जिल्द द्वितीय।

7 आइने अकबरी, जिल्द I।

था। इसके पूर्व मे जयपुर और किशनगढ के भूतपूर्व राज्य, अग्निकोण मे अजमेर व मेवाड, दक्षिण मे सिरोही और पालनपुर (पाकिस्तान), पश्चिम मे कच्छ की खाडी और आधुनिक पाकिस्तान का सिन्ध प्रात, वायव्य कोण मे जैसलमेर तथा उत्तर मे बीकानेर के भूतपूर्व राज्य स्थित हैं।

मारवाड पर क्रमश नागवशी क्षत्रियो, मोरियो और प्रतिहारों का राज्य रहा था। प्रतिहारो का तीन-सौ वर्ष प्राचीन राज्य ग्यारहवी शताब्दी मे परमारो के अधिकार में चला गया। इस जमाने मे मडोर मारवाड की राजधानी रही थी।

आठवी शताब्दी से ग्यारहवी शताब्दी के बीच पश्चिम की दिशा से (सिन्ध की तरफ से) मारवाड पर विदेशियो के निरन्तर आक्रमण हुए। खलीफा हशाम की सेनायें 739 ई० के लगभग जुनैद के नेतृत्व में भीनमाल तक आ गई थी। इसी प्रकार 756 ई० मे बलोची मुसलमानो की सेनायें मारवाड के दक्षिणी भाग पर चढ आई थी। महमूद गजनवी सोमनाथ जाते समय नाडोल की तरफ से होता हुआ गया था। मुहम्मद गौरी का भी प्रथम आक्रमण नाडोल पर हुआ था। कहने का तात्पर्य यह है कि पश्चिम में सिन्ध के प्रदेश से लगा होने के कारण मारवाड विदेशी आक्रमणकारियो का प्रारम्भ से ही प्रहार सहता रहा।

यह प्रदेश रेगिस्तान है अत वर्षा अधिक नही होती। फसल भी बडी मुश्किल से पैदा होती है। अकाल अक्सर पड जाता है लेकिन फिर भी मुहम्मद गौरी के द्वारा पराजित किए जाने पर कन्नौज के गहढवाल शासक जयचन्द्र के वशज सीहा ने 1212 ई० मे इस प्रदेश को अपने निवास-स्थान के लिए चुना। इसका कारण यह हो सकता है कि पूर्व मे अरावली पर्वत-शृखलाओ तथा पश्चिम मे रेगिस्तान से 'रक्षित प्रदेश' सुरक्षित समझकर सीहा ने तीर्थ यात्रा पर जाते समय मारवाड मे अपने डेरे डाल दिए और उसके वशजो ने कालान्तर मे सम्पूर्ण मारवाड को अपने अधिकार मे करके स्वतन्त्र राठौड राज्य की स्थिति सुदृढ की। मारवाड की स्वास्थ्यप्रद जलवायु भी एक कारण हो सकती है जिससे प्रभावित होकर सीहा ने इस भाग को चुना हो।

रेगिस्तान होने के कारण यहाँ जगलो का अभाव है। केवल [illegible] पश्चिमी ढाल मे जगल है। अत यहाँ इमारती लकडी [illegible] सदैव अभाव रहा है। अनावृष्टि [illegible] मारवाड की इस भौगोलिक स्थिति [illegible] इतिहास को विशेष [illegible] है। [illegible] यहा के निवासी [illegible]

> मारवाड की भौगोलिक स्थिति ने यहा के इतिहास को प्रभावित किया है

अनावृष्टि और अकाल ने यहा के लोगो को [illegible]
उपार्जन के चक्कर मे मारवाडी केवल [illegible]

बस गए वरन् वे लोग मालवा एव गुजरात के सरसब्ज प्रदेशो की ओर भी आकर्षित हुए । लेकिन बाहर जाकर बसने वाले मारवाडियो ने अपने Sweet home का मोह कभी भी नही त्यागा । इसी प्रकार मारवाडी कही भी हो वह अपनी भाषा को नही छोड सकता । उसका खान-पान, रस्म-रिवाज, रहन-सहन कभी नही बदल सकता । आतिथ्य–सत्कार मे मारवाडी से बढकर आपको कोई दूसरा व्यक्ति मुश्किल से ही मिलेगा । यह कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जिनका प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मारवाड के इतिहास पर पडा है ।

मारवाड मे राठौड राज्य के सस्थापक सीहा के वशजो एव उसके मूल निवास-स्थान के सम्बन्ध मे विद्वान एकमत नही है । मारवाड की ख्यातो के अनुसार सीहा कन्नौज के गहडवाल शासक जयचन्द्र का वशज था । वशावलिया भी यही बताती हैं । लेकिन स्वर्गीय डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा ने राठौड और गहडवाल दो भिन्न जातियां सिद्ध करने का प्रयास किया और उसे जयचन्द्र का वशधर मानने के लिए किसी प्रकार भी तैयार नही थे । डा० ओझा सीहा को बदायू के राठौरो का वशधर मानते थे ।[1] परिणाम यह निकला कि एक ऐसा विवाद खडा हो गया जिसका सन्तोषप्रद उत्तर हमे कुमारी रोमा नियोगी के अनुसधान ग्रन्थ History of the Gahadawal Dynasty मे भी नही मिल सका ।

सीहा कन्नौज के जयचन्द्र का वशज था

सीहा मारवाड मे 1212 ई० के लगभग आया था ।[2] उस समय इस प्रदेश पर चौहान, मोहिल और गोहिल लोग राज्य कर रहे थे । वे पाली[3] के पल्लिवाल ब्राह्मणो को बहुत सताया करते थे । अत पल्लीवाल ब्राह्मणो के मुखिया जशोधर ने सीहा से बालेचा चौहानो के विरुद्ध सहायता चाही और सीहा वही बस गया । इसी समय सिंध की तरफ से मुसलमानो का आक्रमण हुआ और सीहा उनका मुकाबला करता हुआ 1230 मे मारा गया । सीहा के पुत्र और उत्तराधिकारी आस्थान ने गोहिलो से खेड को छीन कर उसे अपनी राजधानी बनाया । पाली के आसपास के 84 गांवो पर भी आस्थान ने ही अपना अधिकार जमाया था । इसने ही ईडर के भीलो को पराजित करके वहा अपने छोटे

आस्थान

1 डा० ओझा जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ 135–146

2 डा० वी० एस० भार्गव *Marwar and the Mughal Emperors,* P 4 and f n 7

3 उन दिनो पाली व्यापार का केन्द्र था । पाली के व्यापारियो के फारस और अरब के लोगो के साथ भी व्यापारिक सम्बन्ध थे । पल्लीवाल ब्राह्मण वहा धनाढ्य जाति के लोग थे ।

भाई सोनिग के नेतृत्व में राठौड राज्य स्थापित किया । जब नौहा खेड को केन्द्र बिन्दु बना कर मारवाड मे राठौड राज्य का विस्तार करने मे जुटा हुआ था, उसी समय खिलजी सुल्तान जलालउद्दीन का मडोर पर आक्रमण हुआ । सम्भव है जलालउद्दीन मडोर से पश्चिम की ओर भी बढा क्योकि ख्यातो के अनुसार आस्थान जलालउद्दीन खिलजी को सेनाओ का मुकाबला करते हुए खेत रहा था । जलालउद्दीन के इस आक्रमण ने कुछ समय के लिए राठौडो के विस्तारवादी कार्यक्रम को स्थगित कर दिया ।

अत आस्थान का पुत्र और उत्तराधिकारी धूहड कुछ नही कर सका । कर्नल टॉड लिखता है कि उसने कन्नौज जीतने की असफल कोशिश की, लेकिन वह मडोर पर अधिकार करने के चक्कर मे मृत्यु को प्राप्त हो गया । इसी समय अलाउद्दीन खिलजी ने जालौर और सिवाना पर आक्रमण करके वहा के स्वतन्त्र राज्यो का अन्त कर दिया लेकिन इस आक्रमण के कारण जालौर और सिवाना की दिशा मे राठौड राज्य के विस्तार की सम्भावना भी कुछ समय के लिए स्थगित हो गई ।

धूहड

धूहड और उसके उत्तराधिकारी निरन्तर रूप से मडोर को अधिकार मे करने की कोशिश करते रहे । लेकिन 1383 ई० से पहले वे लोग मडोर पर स्थायी रूप से आधिपत्य जमाने मे सफल नही हो सके । इसका पहला कारण तो यह था कि 1383 ई० तक दिल्ली की गद्दी पर तुगलक वश के प्रतिभाशाली सुलतान शासन कर रहे थे । अत राठौड मडोर, सिवाना और जालौर पर अपना अधिकार स्थापित नही कर सके । दूसरा कारण यह था कि जैसलमेर के भाटी शासको तथा राठौडो के बीच भी संघर्ष चलता रहा । भाटियो की मदद पर सिंघ के मुसलमान भी आ जाया करते थे । आक्रमणकारी सेनाओ का मुकाबला करते हुए कतिपय राठौडो (बाला तथा जालणसी) को अपनी जानें भी खोनी पडी ।

1383 ई० तक राठौड मारवाड मे विस्तार नहीं कर सके

से पहले उसके पूर्वज यत्रतत्र Raids करके अपना गुजारा चलाते थे। लेकिन 1383 के बाद राठोडो ने नियमित रूप से विस्तारवादी कार्यक्रम अपना लिया था। चूडा और उसके उत्तराधिकारी दिल्ली सल्तनत की निर्बल स्थिति से पूरा-पूरा लाभ उठाने मे पूर्ण सफल हुए। सौभाग्य से इस समय मेवाड की गद्दी पर भी कुम्भा जैसा शक्ति सम्पन्न शासक नही था। अत चूडा का मारवाड[1] का विस्तार करने का पूरा पूरा अवसर प्राप्त हो गया।

राव चूडा ने मारवाड राज्य का गठन किया और सबको अधीन करके अपने राज्य को (Compact) बनाया। 1423 मे मारवाड पर मुल्तान की दिशा से मुस्लिम सेनाओ का आक्रमण हुआ। आक्रमणकारी सेना का सेनापतित्व सलीम खा कर रहा था। इसी युद्ध मे भाटियो और साखलाओ ने मिलकर धोखे से राव चूंडा को मार डाला।

चूंडा की मृत्यु के पश्चात् चार वर्ष के भीतर दो निर्बल शासक मारवाड की गद्दी पर बैठे। यह दोनो चूंडा के छोटे पुत्र थे और इनके नाम क्रमश कान्हा और साता थे। अत चूंडा के ज्येष्ठ पुत्र रणमल्ल[2] ने मडोर पर अधिकार कर लिया। रणमल्ल ने मेवाड की सेना की सहायता से नागोर पर भी अधिकार कर लिया। सोनगरा चौहानो से नागोर छीन लिया, सिधलो से जैतारण, दूलो से सोजत छीन कर अपने अधिकार मे किया, जालोर के हुसनखाँ मेवानी को भी पराजित किया। इस प्रकार सैयद वशीय दिल्ली के निर्बल सुल्तानो की स्थिति से लाभ उठाकर रणमल्ल ने केवल मारवाड राज्य की सीमाओ का ही विस्तार नही किया वरन् उसे सुसगठित भी किया। मेवाड के इतिहास मे लिखा जा चुका है कि रणमल्ल को वहा के सरदारो ने 1438 ई० मे धोखे से मार दिया था। उसकी मृत्यु के साथ ही मारवाड पर मेवाड की सेनाओ ने अधिकार कर लिया। अत रणमल्ल के पुत्र और उत्तराधिकारी को 15 वर्ष का समय पुन राठोडो का राज्य स्थापित करने मे लगा। जोधा ने ही शनिवार 12 मई 1459 ई० के दिन मडोर से 6 मील दक्षिण

राव रणमल्ल
1427–1438 A D

राव जोधा 1438–1489 A D

---

1 Rao Chunda consolidated the principality of Mewar by bringing under his rule the scattered territories and making his domain compact

2 मडोवर का राव रणमल्ल जिसका वर्णन प्रसगवश सातवें अध्याय मे किया जा चुका है।

मे जोधपुर शहर एव किले की नीव रखी थी।[1] जोधा के बाद से जोधपुर मारवाड़ राज्य की राजधानी बन गई। जोधपुर मारवाड़ मे राठौड़ो की तीसरी राजधानी है। पहले आस्थान ने खेड़ को केन्द्र बिन्दु बनाकर विस्तार किया, तत्पश्चात चूडा ने मडोर पर अधिकार स्थापित करके उसे राजधानी बनाया और फिर जोधा ने प्रान्तिर जोधपुर का शिलान्यास किया।

जोधपुर का शिलान्यास
12 May 1549 A D

इस समय अजमेर और उसके आसपास का प्रदेश मुसलमानों के अधिकार मे था। अत. जोधा के पुत्र वरसिंह और दूदा ने मडता के आस पास के 360 गांव जीतकर मेडता मे एक स्वतत्र राज्य की नीव रखी।

इस समय मेवाड की गद्दी पर कुम्भा का निर्बल पुत्र और उत्तराधिकारी उदयसिंह था। उसने जोधा को चुप रखने के खातिर अजमेर और साम्भर पर उसका सरलता से अधिकार हो जाने दिया। इसी समय जोधा ने नागौर का प्रदेश तथा द्रोणपुर तक मुसलमानो से छीनकर अपने आधिपत्य मे कर लिया। उसके पुत्र बीका ने जागल देश को विजय करके वहाँ राठौड़ो का एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया जो उसके पीछे बीकानेर कहलाया।

एव शक्ति प्रदान कर रही थी । इस समय तक सीहा के वशज 'मरुभूमि' मे सर्वत्र फैल चुके थे । उनमे से कतिपय ने अपने स्वतत्र राज्य भी स्थापित कर लिये थे । यह लोग अपने-आपको जोधपुर नरेश के समान समझते थे । लेकिन उसका केवल इसलिए सम्मान करते थे कि वह बडा भाई था । अत निर्बल शासको के शासनकाल मे यह 'छुटभइये' शक्ति ग्रहण करके जोधपुर की राजगद्दी प्राप्त करने का कभी-कभी प्रयास करते थे ।[1]

सूजा के उत्तराधिकारी गागा के राज्याभिषेक के समय मारवाड

एक ओर तो 1515 मे मारवाड छोटे-छोटे राज्यो मे बटा हुआ था और दूसरी ओर राठौडो की राजधानी मडोर के पडौस मे नागौर के मुसलमानो का राज्य था । दक्षिण पश्चिम मे जालौर मे भी बिहारी पठान शासन कर रहे थे । इसी समय राणा सागा के नेतृत्व मे मेवाड का राज्य तीव्र गति मे शक्ति ग्रहण करता जा रहा था । दिल्ली सल्तनत निर्बल होती जा रही थी । गुजरात का स्वतत्र मुस्लिम राज्य शक्तिशाली हो गया था । गागा को गद्दी पर बैठे ग्यारह वर्ष ही हुए थे कि मध्य एशिया के आक्रमणकारी बाबर ने दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी को पानीपत के युद्ध मे पराजित करके भारत मे एक नए राजवश स्थापना की । अत सूजा के उत्तराधिकारी गागा के लिए मारवाड की राजगद्दी फूलो की सेज नही थी ।

राव गागा 1515-1531 A D

राव गागा अपने पिता वाधा का छोटा लडका था । वीरम इसका वडा भाई था । लेकिन मारवाड सरदारो ने गद्दी प्राप्त करने मे गागा की सक्रिय रूप से सहायता की । उस समय सरदारो के कहने से गागा ने सोजत अपने वडे भाई वीरम को दिया था । यह घटना दो बातें स्पष्ट करती हैं—

(1) अन्य राजपूत राज्यो के समान मारवाड के राठौड-राज्य मे भी उत्तराधिकार नियम (Law of Primogeniture) का अभाव था ।

(11) 1515 मे मारवाड के सरदार काफी शक्तिशाली हो चुके थे ।

गागा के राज्याभिषेक के समय मारवाड की स्थिति सुरक्षित नही थी । सरदार शासक के साथ बराबरी का दावा करते थे । आसपास मेडता, नागौर, जालौर और साचोर मे स्वतन्त्र राज्य थे । मेडता मे वीरम दूदावत शासन कर रहा था, नागौर पर सरखेल खा का शासन था, जालौर और साचोर सिकन्दरखा के आधिपत्य

---

1 "It (the Rathor state of Marwar) was a conglomeration of smaller units, each being ruled by a chieftain of its own who was more often than not of the Rathor clan In fact, the ruling faction of the state belonged to only one particular clan"

—Marwar and the Mughal Emperors

मे थे । सिकन्दरखा गुजरात के सुल्तान का सामन्त था । इस प्रकार राज्याभिषेक के समय स्थिति दृढ नही होते हुए भी गागा ने मारवाड की सीमाओ को बढाने का प्रयास किया था और उसमे उसे काफी हद तक सफलता भी मिली थी ।

गागा को राज्य-विस्तार का सुअवसर प्राप्त हुआ । इसके दो कारण थे । पहला कारण तो यह था कि सौभाग्य से दिल्ली की गद्दी पर लोदी वश का निर्बल सुल्तान इब्राहीम शासन कर रहा था जो अपनी समस्याओ को ही नही सुलझा सका था। अत गागा की विस्तारवादी योजनाओ के बीच मे रुकावट डालना उसके लिए सम्भव नही था । दूसरा कारण यह था कि समकालीन राजस्थान मे मेवाड को छोड कर और कोई राज्य इतना शक्तिशाली नही था कि वह गागा का मुकाबला करने की हिम्मत करता । मेवाड का राणा सागा राव गागा का बहनोई था । इसके अतिरिक्त गागा ने सागा को ईडर व खानवा के युद्धो मे सैनिक सहायता देकर उसे इतना अधिक अनुग्रहित कर दिया था कि वह मारवाड के साथ छेडछाड करने की नही सोच सकता था । इन युद्धो मे मेवाड की सहायता करके मारवाड ने तथा गागा ने अपनी व्यक्तिगत रूप से व अपने राज्य की ख्याति एव प्रतिष्ठा को बढाया ।

गागा ने सागा की व्यस्तता से लाभ उठाकर जालोर के मुस्लिम राज्य के उत्तराधिकार के सघर्ष मे सक्रिय रूप से भाग लेकर 1525 मे अपने समर्थित उम्मीदवार गाजी खा को जालोर की गद्दी दिलाने मे सहायता की । इस सहायता के द्वारा गागा ने अपना राजनैतिक प्रभुत्व बढाया ।

खानवा के युद्ध मे मारवाड की सेनाओ ने कम महत्वपूर्ण भाग नही लिया था । शनिवार 16 मार्च 1527 के दिन प्रात काल साढे नौ बजे के लगभग जब युद्ध प्रारम्भ हुआ तो पहला गोला मारवाड की सेना ने ही दागा था । युद्ध क्षेत्र मे मारवाड की सेना राणा की सेना के वामपक्ष का नियत्रण कर रही थी । दोपहर बाद जब राणा सागा मूर्छित हो गया तो उस समय मारवाड की सेना के सामन्तो ने राजकुमार मालदेव ने दूसरे साथियो के साथ सुरक्षित स्थान तक पहुँचाया था । खानवा के युद्ध मे मारवाड की सेनायें एक सामन्त की सेना के रूप मे नही लड़ी गई थी ।

गागा के पुत्र और उत्तराधिकारी राव मालदेव के शासनकाल मे मारवाड का राज्य अपनी चरम पर पहुँच गया था। समकालीन फारसी के इतिहासकारो ने राव मालदेव को हिन्दुस्तान का 'हशमतवाला शासक' कहकर पुकारा है।

राव मालदेव 1531-1562A D

जिस समय मालदेव का राज्यतिलक हुआ उस समय जोधपुर मारवाड की राजधानी थी और केवल मडोर और सोजत के प्रदेश पर ही मारवाड के राव का अधिकार था। लेकिन सौभाग्य से मालदेव को अपनी आकाक्षा के अनुकूल ही राजनैतिक परिस्थितियाँ प्राप्त हुई। सागा की मृत्यु के पश्चात् मेवाड का राज्य अपनी कठिनाइयो मे उलझ गया था। भारत मे नवस्थापित मुगल साम्राज्य का सस्थापक बाबर मर चुका था। बाबर का पुत्र और उत्तराधिकारी हूमायू गुजरात के बहादुरशाह और शेरखा के साथ सघर्ष मे व्यस्त था। इन परिस्थितियो से लाभ उठाने के विचार से मालदेव ने सिहासनारूढ होते ही राज्य-विस्तार का कार्यक्रम प्रारम्भ कर दिया। सर्वप्रथम उसने भाद्राजूण के सिघलो को पराजित किया। तत्पश्चात् जालौर के पठानो की ओर कदम बढाया। इसी समय उसने सिवाना और साचोर के सुदृढ दुर्गों को अपने अधिकार मे कर लिया। मेडता के स्वतन्त्र शासक वीरमदेव को पराजित करके तथा बीकानेर के शासक जैतसी को युद्ध मे मौत के घाट उतार कर मालदेव ने अपने राज्य की सीमाओ का विस्तार किया। अठारहवी शताब्दी मे रचित 'राजरूपक' नामक ग्रन्थ मे राव मालदेव की इन विजयो का वर्णन करते हुए रतनूचारण वीरभाण ने ठीक ही लिखा है—

माल गग गादी राव मार
सबला किया आपरै सार

एनाल्स एण्ड एण्टेक्वीटीज ऑफ राजस्थान का लेखक कर्नल जेम्स टाड लिखता है कि 'लूनी के आस-पास का प्रदेश जिस पर उसके पूर्वजो ने सर्वप्रथम अधिकार किया था और जो प्रदेश स्वतत्र हो चुके थे उन्हे पुन अपने अधिकार मे किया तथा उनको अपना आधिपत्य स्वीकार करने व सैनिक सहायता देने के लिए बाध्य किया।'[1]

इसी बीच मे बहादुरशाह की मृत्यु (1537 A D) हो गई गुजरात के सुल्तानो का मारवाड के प्रदेश से गहरा सम्बन्ध रह चुका है। अत मालदेव को बहादुरशाह की ओर से भय बना रहता था। यद्यपि सुल्तान बहादुरशाह मेवाड और

---

1 "The tracts on the Luni, the earliest possession of his house, which had thrown off all independence, were subjugated by him and the ancient allodial tenantry was compelled by him to hold him as their chief and to serve him with their quotas"

—Tod Annals and Antiquities of Rajasthan II, Vol P 19

दिल्लीधिपति हूमायूँ के साथ सघर्ष मे इतना अधिक व्यस्त था कि उसे मारवाड की ओर ध्यान देने की फुरसत ही नही थी। उसकी मृत्यु के पश्चात मालदेव के मस्तिष्क मे से गुजरात के विरोध का भी डर जाता रहा। अत उसने निश्चिन्त होकर मारवाड की सीमाओ को लाँघकर अपने राज्य का विस्तार करने की कोशिश की।

सर्वप्रथम उसने नागौर के पठानो को पराजित किया। तत्पश्चात् सांभर, फतेहपुर, उदयपुर (शेखावाटी), चाटसू, टौक, टोडा, मालपुरा, रिवाडा, जैतारण, डीडवाना, व पचभदरा के शासको को पराजित किया। इस प्रकार दस वर्ष के अल्प समय मे मालदेव ने मारवाड की सीमाओ को विस्तृत करके दिल्ली और आगरा के निकट पडौस तक अपना राज्य स्थापित कर लिया था। अत जब 1540 मे बाबर के पुत्र और उत्तराधिकारी हूमायू को शेरखाँ ने बिलग्राम के युद्ध मे पराजित किया उस समय तक मालदेव भारत का एक शक्तिशाली हिन्दू राजा बन चुका था। राजस्थान के राजाओ मे तो उसकी प्रमुख स्थिति थी। अत निर्वासित मुगल सम्राट् हुमायू का अपहरणकर्त्ता शेरशाह के विरुद्ध सहायता देने का आश्वासन देते हुए मालदेव ने हुमायू को मारवाड मे आने का निमत्रण भिजवाया। निमत्रण भिजवाना यह सिद्ध करता है कि मालदेव अपने आपको इतना अधिक शक्तिशाली समझने लगा था कि वह शेरशाह से हुमायू का मददगार बन कर युद्ध मोल लेने के लिए तत्पर था।

जोहर द्वारा लिखित तजकिरात–उल–वाके पात और हूमायू की बहन गुलबदन बेगम के द्वारा रचित "हुमायू नामा" प्रमुख माने जाते है) कि जब हूमायू मालदेव की सहायता चाहता था उस वक्त मालदेव ने बेरुखी से काम लिया और उसकी सहायता नही की। गुलबदन बेगम लिखती है कि सैनिक सहायता देने के स्थान पर मालदेव ने केवल बहुमूल्य भेटें हूमायू के पास भिजवाई और उसे बीकानेर देने का आश्वासन दिया। लेकिन जब मालदेव की सेवा मे रहने वाले हूमायू के भूतपूर्व पुस्तकाध्यक्ष (मुल्ला मुर्ख) ने जोधपुर से बादशाह को लिखकर भेजा कि मालदेव के इरादे ठीक नही है तो तुरन्त हूमायू मारवाड छोडकर वापस सिंध की तरफ चला गया। गुलबदन बेगम और जोहर ने जिस रूप मे हूमायू की मारवाड यात्रा का वर्णन किया है उसे पढने से यह स्पष्ट रूप मे जाहिर होता है कि मालदेव ने हूमायू के पास स्वय निमत्रण भेजकर उसकी सहायता नही दी, यह उसकी गद्दारी थी। वापस लौटते समय जैसलमेर के शासक मालदेव की वजह से हूमायू को काफी कठिनाइयो का सामना करना पडा। जोहर के अनुवादक Stewart ने जैसलमेर के मालदेव को मारवाड के मालदेव के साथ confuse कर दिया जिसका दुष्परिणाम यह निकला कि आधुनिक सभी इतिहासकारो ने मालदेव पर धोखेबाजी का आरोप लगाया है।

"मारवाड एव मुगल सम्राट्" नामक अनुसधान ग्रन्थ मे इस प्रश्न पर पूर्ण रूप से खोज की गई है। इस ग्रन्थ के लेखक ने मालदेव के इरादो का भी जिक्र किया है कि जिनका ध्यान मे रखकर उसने 1541 मे हूमायू का मारवाड मे आने का निमन्त्रण दिया था। इसमे कोई सन्देह नही है (जैसा कि सभी आधुनिक इतिहासकार मानते हैं) कि मालदेव एक आकांक्षावादी शासक था जो सोलहवी शताब्दी मे मारवाड का वही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कराना चाहता था जो मेवाड को राणासागा के शासन-काल मे प्राप्त हो चुका था। इसके अलावा मालदेव यह भी जानता था कि उसके और शेरशाह के बीच एक न एक दिन युद्ध होना अनिवाय है। अत जब उसने देखा कि उसके द्वारा पदच्युत किये गये बीकानेकर और मेडता के शासक (क्रमश कल्याण और वीरमदेव) शेरशाह के पास सहायता के लिए चले गये हैं तो मालदेव भी हूमायू को दिल्ली की गद्दी का वास्तविक दावेदार समझता था। डा० कानूनगो का यह कथन बहुत हद तक सत्य प्रतीत होता है कि "Maldeo wanted to use Humayun as a pawn in the game of diplomacy that he hoped to play against Shershah"। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है जिसे आधुनिक सभी इतिहासकारो ने (Dr S K Banerjee, Dr K R Kanungo, Iswari Prasad, Dr A L Srivastava & Dr R P Tripathi) स्पष्ट नही नही किया है कि मालदेव ने 1541 मे जब हूमायू के पास निमन्त्रण भेजा था उस समय राजनैतिक परिस्थिति अनुकूल थी। शेरशाह स्वय बगाल की तरफ गया था। उसकी सेना गक्खरो के विरुद्ध युद्ध करने मे व्यस्त थी। मालवा के जमींदार अब भी बगावत पर तुले हुए थे और ग्वालियर मे शेरशाह का सेनानायक शुजातखा युद्ध-

रत था । यदि उस समय हूमायू सिंध में अपनी शक्ति नष्ट करने के बजाय मारवाड़ आ जाता तो मालदेव अपने वायदे के मुताबिक अवश्य मदद करता । लेकिन निमन्त्रण भेजने के एक साल बाद जब हूमायू मालदेव की सहायता चाहता था उस समय परिस्थितियां बदल चुकी थी । शेरशाह बंगाल विजय करके लौट आया था । कालिंजर उसके अधिकार मे आ चुका था और यदि तबकाते अकबरी का वर्णन सही है तो जिस समय हूमायू मालदेव के राज्य मे था ठीक उसी समय शेरशाह की सेना ने मालदेव की राजधानी जोधपुर से सिर्फ 80 मील दूर नागौर पर हमला किया था । इसके पश्चात 1542 में जब हूमायूँ मारवाड आया उस समय उसकी शक्ति भी क्षीण हो चुकी थी । जौहर और गुलबदन के अनुसार उस समय हूमायूँ के साथ मुश्किल से 300 साथी थे । ऐसी परिस्थिति मे यदि मालदेव ने हूमायू को कोई सक्रिय मदद नहीं दी तो इसे उसकी Treachery कहकर नही पुकारा जा सकता । यदि मालदेव के इरादे नेक नही होते तो वह हूमायू के पास मारवाड पहुँचने पर क्यो बहुमूल्य भेंटें भिजवाता अथवा उसे बीकानेर देने को क्यों भेजता ? (देखिये गुलबदन बेगम का हुमायूंनामा) इसके अलावा मालदेव हूमायूँ को बंदी बनाकर शेरशाह के हवाले भी कर सकता था लेकिन उसने ऐसा नही किया बल्कि अमनचैन के साथ हूमायूँ को मारवाड से चले जाने दिया। यह भी हो सकता है जैसा कि वीर-विनोद का लेखक लिखता है कि जब हूमायू के साथियो ने मालदेव की सीमा मे गाय काट दी तो राजपूत सरदारों की नाराजगी के कारण मालदेव को हूमायू के प्रति Cold नीति अपनानी पड़ी । [illegible] है कि हूमायू और मालदेव के सम्बन्धो का अध्ययन और [illegible] मालदेव को धोखेबाज समझना अथवा उस पर दगाबाजी का आरोप लगाना [illegible] नही है ।

इसी समय शेरशाह की सेनाएँ नागौर तक ग्रा गई थीं। नागौर जोधपुर से सिफ 80 मील के फासले पर है। लेकिन शेरशाह ने जब तक रायसीन के शासक पूरणमल तोमर को पराजित नही कर दिया तब तक मारवाड का मोर्चा नही खोला। रायसीन की विजय के पश्चात् जब शेरशाह ने अपने ग्रमीरो की गोष्ठी बुलाई तब उन लोगों ने सुल्तान को दक्षिण विजय का परामर्श दिया परन्तु शेरशाह ने उन्हे बताया कि मारवाड के शासक माल्देव को पहले पराजित करना ग्रवश्यक है क्योंकि उसने न केवल नागौर ग्रौर ग्रजमेर तक ही अपने राज्य की सीमाग्रो को बढा लिया है, ग्रपितु मुसलमानो को तग भी कर रहा है। ग्रत काफिर को सजा देने के लिए शेरशाह ने मारवाड पर ग्राक्रमण करने का फैसला किया। सौभाग्य से इसी समय मेडता का निर्वाचित शासक वीरमदेव ग्रौर बीकानेर के निर्वाचित शासक कल्याणमल का मन्त्री नगराज शेरशाह के पास पहुंचे ग्रौर उन लोगों ने सुल्तान की ग्रपने शत्रु माल्देव के विरुद्ध मदद चाही। शेरशाह के लिए माल्देव का पराजित करना राजनैतिक दृष्टि से भी ग्रावश्यक था क्योंकि उसके राज्य की सीमाएँ दिल्ली से केवल 50 मील दूर तक फैल चुकी थी। माल्देव ने शेरशाह की इच्छा का उल्लघन करके हुमायू को बन्दी नही बनाया। इससे शेरशाह ग्रसन्तुष्ट हो गया।

मारवाड पर ग्राक्रमण करने के पर्याप्त कारण होते हुए भी शेरशाह माल्देव जैसे शक्तिशाली राजा पर एकाएक ग्राक्रमण नही करना चाहता था। उसे पता था कि माल्देव की सेना मे 50,000 घुडसवार सैनिक थे ग्रतएव शेरशाह ने बयाना, सागानेर ग्रौर ग्रजमेर का सीधा मार्ग नही ग्रपना कर ग्रागरा से दिल्ली, दिल्ली से नारनोल, वहां से फतहपुर (शेखावाटी) ग्रौर फिर रेत मे हो कर डीडवाना का माग ग्रपनाया। डीडवाना मे शेरशाह को माल्देव के सेनापति कूँपा के साथ युद्ध लडना पडा। डीडवाना से शेरशाह परबतसर, बादर—सीन्दरी होता हुग्रा सुमेल की तरफ़ चला गया। उसने जान—बूझकर ग्रजमेर visit नही किया क्योंकि उसे पता था कि ग्रजमेर मे माल्देव का जबरदस्त मोर्चा था। इस समय शेरशाह सीधा जोधपुर भी जा सकता था लेकिन उसने जानबूझकर रेतीले प्रदेश मे ग्रागे बढना ठीक नही समझा। यदि शेरशाह ऐसा करता तो सम्भव है कि उसका ग्रागरा—दिल्ली का माग माल्देव के द्वारा बन्द कर दिया जाता। ग्रत वह ग्रजमेर से 28 मील दूर दक्षिण—पश्चिम दिशा मे बाबरा नामक स्थान तक पहुँच कर ठहर गया। इसी बीच मे माल्देव भी जोधपुर की तरफ पीछे हटा ग्रौर शेरशाह से केवल 12 मील के फासले पर गिर्री नामक स्थान पर पहुँच कर ठहर गया। बाबरा ग्रौर गिर्री के बीच मे सुमेल नामक खारे पानी की बरसाती नदी है। यह स्थान मोहनपुरा रेलवे स्टेशन से केवल 2 मील दूर है। इसी मैदान मे शेरशाह ग्रौर माल्देव की सेनाग्रो के बीच 5 जनवरी 1544 के दिन युद्ध हुग्रा।

शेरशाह बाबरा से ग्रागे बढना नही चाहता था क्योंकि रेतीले प्रदेश मे उसकी सेना को रसद नही मिल रही थी। शेरशाह ग्रपनी सेना की सुरक्षा के लिए पडाव के

रत था। यदि उस समय हूमायू सिंध मे अपनी शक्ति नष्ट करन के बजाय मारवाड आ जाता तो मालदेव अपने वायदे के मुताबिक अवश्य मदद करता। लेकिन निमत्रण भेजने के एक साल बाद जब हूमायू मालदेव की सहायता चाहता था उस समय परिस्थितिया बदल चुकी थी। शेरशाह बगाल विजय करके लौट आया था। ग्वालियर उसके अधिकार मे आ चुका था और यदि तबकाते अकबरी का वर्णन सही है तो जिस समय हूमायू मालदेव के राज्य मे था ठीक उसी समय शेरशाह की सेना ने मालदेव की राजधानी जोधपुर से सिर्फ 80 मील दूर नागौर पर हमला किया था। इसके अलावा 1542 में जब हूमायूँ मारवाड आया उस समय उसकी शक्ति भी क्षीण हो चुकी थी। जौहर और गुलबदन के अनुसार उस समय हूमायूँ के साथ मुश्किल से 300 साथी थे। ऐसी परिस्थिति में यदि मालदेव ने हूमायू को कोई सक्रिय मदद नही दी तो इसे उसकी Treachery कहकर नही पुकारा जा सकता। यदि मालदेव के इरादे नेक नही होते तो वह हूमायू के पास मारवाड पहुँचने पर क्यो बहुमूल्य भेंटें भिजवाता अथवा उसे बीकानेर देने को क्यो भेजता ? (देखिये गुलबदन बेगम का हूमायूँनामा) इसके अलावा मालदेव हूमायूँ को बदी बनाकर शेरशाह के हवाले भी कर सकता था लेकिन उसने ऐसा नही किया बल्कि अमनचैन के साथ हूमायूँ को मारवाड से चले जाने दिया। यह भी हो सकता है जैसा कि वीर-विनोद का लेखक लिखता है कि जब हूमायू के साथियो ने मालदेव की सीमा मे गाय काट दी तो राजपूत सरदारो की नाराजगी के कारण मालदेव को हूमायू के प्रति Cold नीति अपनानी पडी। कहने का तात्पय यह है कि हूमायू और मालदेव के सम्बन्धो का अध्ययन और वर्णन करते समय मालदेव को धोखेबाज समझना अथवा उस पर दगाबाजी का आरोप लगाना ऐतिहासिक सत्य नही है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि माल्देव ने निर्वाचित मुगल सम्राट को किसी भी प्रकार की मनोवाछित सहायता प्रदान नही की अत उसे माल्देव की सीमाओ मे बाहर चला जाना पडा। हुमायू के चले जाने के लगभग 18 महीने बाद शेरशाह ने माल्देव पर आक्रमण करने की योजना बनाई।

शेरशाह और माल्देव

यद्यपि कुछ आधुनिक इतिहासकार यह समझते हैं कि हूमायू की मारवाड यात्रा और शेरशाह के अभियान मे किसी प्रकार का सम्बन्ध नही है, लेकिन यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि हूमॉयू की मारवाड यात्रा के पश्चात् मालदेव पर शेरशाह की कडी निगाह थी। इसका प्रमाण यह है कि जब हूमायू माल्देव की राजधानी जोधपुर मे कुछ फासले पर कुल-ए-जोगी नामक स्थान पर ठहरा हुआ था उसी वक्त शेरशाह ने माल्देव के पास एक दूत भेज कर कहलाया था कि वह उसे बन्दी बनाकर उसके सुपुर्द कर दे।

1 See Marwar and the Mughal Emperors, Page 23 to 27

इसी समय शेरशाह की सेनाएँ नागौर तक आ गई थीं। नागौर जोधपुर से सिर्फ 80 मील के फासले पर है। लेकिन शेरशाह ने जब तक रायसीन के शासक पूरणमल तोमर को पराजित नही कर दिया तब तक मारवाड का मोर्चा नही खोला। रायसीन की विजय के पश्चात् जब शेरशाह ने अपने अमीरो की गोष्टी बुलाई तब उन लोगो ने सुलतान को दक्षिण विजय का परामर्श दिया परन्तु शेरशाह ने उन्हे बताया कि मारवाड के शासक माल्देव को पहले पराजित करना अवश्यक है क्योकि उसने न केवल नागौर और अजमेर तक ही अपने राज्य की सीमाओ को बढा लिया है, अपितु मुसलमानो को तग भी कर रहा है। अत काफिर को सजा देने के लिए शेरशाह ने मारवाड पर आक्रमण करने का फैसला किया। सौभाग्य से इसी समय मेडता का निर्वाचित शासक बीरमदेव और बीकानेर के निर्वाचित शासक कल्याणमल का मन्त्री नगराज शेरशाह के पास पहुंचे और उन लोगों ने सुलतान की अपने शत्रु माल्देव के विरुद्ध मदद चाही। शेरशाह के लिए माल्देव का पराजित करना राजनैतिक दृष्टि से भी आवश्यक था क्योकि उसके राज्य की सीमाएँ दिल्ली से केवल 50 मील दूर तक फैल चुकी थी। माल्देव ने शेरशाह की इच्छा का उल्लघन करके हुमायू को बन्दी नही बनाया। इससे शेरशाह असन्तुष्ट हो गया।

मारवाड पर आक्रमण करने के पर्याप्त कारण होते हुए भी शेरशाह माल्देव जैसे शक्तिशाली राजा पर एकाएक आक्रमण नही करना चाहता था। उसे पता था कि माल्देव की सेना मे 50,000 घुडसवार सैनिक थे अतएव शेरशाह ने बयाना, सागानेर और अजमेर का सीधा मार्ग नहीं अपना कर आगरा से दिल्ली, दिल्ली से नारनोल, वहां से फतहपुर (शेखावाटी) और फिर रेत मे हो कर डीडवाना का मार्ग अपनाया। डीडवाना मे शेरशाह को माल्देव के सेनापति कूंपा के साथ युद्ध लडना पडा। डीडवाना से शेरशाह परबतसर, बादर–सीन्दरी होता हुआ सुमेल की तरफ़ चला गया। उसने जान–बूझकर अजमेर visit नही किया क्योकि उसे पता था कि अजमेर मे माल्देव का जबरदस्त मोर्चा था। इस समय शेरशाह सीधा जोधपुर भी जा सकता था लेकिन उसने जानबूझकर रेतीले प्रदेश मे आगे बढना ठीक नही समझा। यदि शेरशाह ऐसा करता तो सम्भव है कि उसका आगरा–दिल्ली का मार्ग माल्देव के द्वारा बन्द कर दिया जाता। अत वह अजमेर से 28 मील दूर दक्षिण–पश्चिम दिशा मे बाबरा नामक स्थान तक पहुँच कर ठहर गया। इसी बीच मे माल्देव भी जोधपुर की तरफ पीछे हटा और शेरशाह से केवल 12 मील के फासले पर गिर्री नामक स्थान पर पहुँच कर ठहर गया। बाबरा और गिर्री के बीच मे सुमेल नामक खारे पानी की बरसाती नदी है। यह स्थान मोहनपुरा रेलवे स्टेशन से केवल 2 मील दूर है। इसी मैदान मे शेरशाह और माल्देव की सेनाओ के बीच 5 जनवरी 1544 के दिन युद्ध हुआ।

शेरशाह बाबरा से आगे बढना नही चाहता था क्योकि रेतीले प्रदेश मे उसकी सेना को रसद नही मिल रही थी। शेरशाह अपनी सेना की सुरक्षा के लिए पडाव के

चारो ओर खाइयां खुदवा देता था और जहा खाइया खोदना सम्भव नही था वहा बोरियो मे रेत भरवा कर उसकी प्राचीर तैयार करवाता था। इतनी कठिनाइयो को बर्दाश्त करने के बाद भी शेरशाह की माल्देव पर आक्रमण करने की हिम्मत नही हुई। अत उसने एक युक्ति सोची। माल्देव के सरदारो की तरफ से फर्जी पत्र शेरशाह के नाम लिखवाये गए और वे पत्र माल्देव के डेरे के पास डलवा दिए गए। इसी समय बीरम ने माल्देव को सूचित किया कि उसके सरदार शेरशाह से मिल गए हैं। बीरम का यह कृत्य उस कहावत को चरितार्थ करता है कि चोरों से कहे चोरी कर और साहूकार से कहे कि होशियार रहना। माल्देव ने बिना कुछ सोचे विचारे 4 जनवरी 1544 की रात्रि मे भाग निकलने का निश्चय कर लिया। 5 जनवरी की सुबह शेरशाह को मालूम पडा कि माल्देव अपनी अधिकाश सेना के साथ भाग चुका है। उसकी सेना के बचे हुए 12,000 सैनिको के साथ शेरशाह का युद्ध हुआ। मुन्तख्वाव-उल-तवारीख का लेखक अब्दुल कादिर बदायूनी लिखता है कि "राजपूत सैनिक अफगानो पर टूट पडे। वे तलवारो के द्वारा लडने के लिए अपने घोडो से उतर पडे। शेरशाह ने इन राजपूतो पर अपने हाथी झोक दिए और तोप तथा तीरो से अपने आक्रमण का समर्थन किया। सभी राजपूत वीरता से लडते लडते मारे गए।" इसी समय जब शेरशाह युद्धरत था उस वक्त जलालखां जलवानी के नेतृत्व मे कुमक शेरशाह की मदद के लिए आ गई। बडी कठिनाई से शेरशाह विजय प्राप्त करने मे सफल हुआ। जब उसे विजय का समाचार सुनाया गया तो कोई खास खुशी नही हुई और उसने कहा, "एक मुट्ठी बाजरे के खातिर मैंने बादशाहत खोदी होती"। शेरशाह के यह इतिहास–प्रसिद्ध शब्द प्रकट करते हैं कि विजय के उपरान्त भी शेरशाह को कोई खास लाभ नही हुआ था। लेकिन अगर वह हार जाता तो दिल्ली का राज्य उसके हाथ से निकल जाता। अत दिल्ली सल्तनत के इतिहास मे सुमेल का युद्ध एक निर्णायक युद्ध माना जाना चाहिए।

युद्ध समाप्त होने के बाद शेरशाह ने अपनी सेना को माल्देव का पीछा करने के लिए जोधपुर भेजा और वह स्वय अजमेर होता हुआ मेडता तक आया। मेडता का अधिकार मे करने के बाद बीरमदेव को वापस लौटा दिया। मेडता मे नागौर आया। वहा भी माल्देव के शासन का अन्त करने के बाद वह जोधपुर गया। माल्देव इससे पूर्व ही जोधपुर खाली करके पिपलोद के पहाडो मे जा चुका था। अत जनवरी 1544 के अत तक जोधपुर पर शेरशाह का सुगमता से अधिकार हो गया। शेरशाह ने जोधपुर का प्रबन्ध ख्वाजखा व ईसाखा नियाजी के हवाले कर दिया और स्वय चित्तौड की तरफ बढ़ गया। जोधपुर पर शेरशाह का 524 दिन तक अधिकार रहा। तत्पश्चात माल्देव ने पुनः जोधपुर को अधिकार मे कर लिया।[1]

जैसे ही शेरशाह की मृत्यु की सूचना माल्देव को मिली, वह सिवाना के पहाडी

1 See Marwar and the Mughal Emperors P 27-35

दुर्ग से निकला और उसने जोधपुर पर अधिकार कर लिया। शेरशाह ने भागेसर मे जो थाना कोयम किया था उसे भी समाप्त कर दिया। इस प्रकार शेरशाह की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियो की निर्बल स्थिति का मालदेव ने पूरा-पूरा फायदा उठाया।

शेरशाह की मृत्यु के बाद मालदेव ने पुन मारवाड पर अधिकार कर लिया।

जोधपुर का पुन अधिकार मे कर लेने के बाद मालदेव ने 1550 मे कान्हा से पोकरण छीन लिया, फलौदी पर आक्रमण करने के लिए सेना भेजी और जैसलमेर पर आक्रमण करने के लिए 1552 मे एक सेना पचोली नैतसी के नेतृत्व मे भेजी। जैसलमेर के शासक ने मालदेव का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। वीरमदेव की मृत्यु के बाद मेडता पर भी मालदेव ने अपना अधिकार कर लिया। लेकिन वीरम के पुत्र जयमल को बीकानेर के राव कल्याणमल ने सहायता दी और मेडता माल्देव के हाथ से निकल गया। इसके बाद माल्देव ने कोई आक्रमणात्मक युद्ध नही किया।

1555 मे निर्वासित मुगल बादशाह हुमायू ने पुन हिन्दुस्तान का राज्य सूर-वश के शासक से छीन लिया। अन शेरशाह का सेनानायक हाजीखा पठान मेवात से अजमेर की तरफ बढा और उसने अजमेर तथा नागौर पर अधिकार कर लिया जो इस वक्त मालदेव के अधिकार में थे। अत माल्देव को हाजीखा पठान के विरुद्ध रक्षात्मक युद्ध लडना पडा। इस युद्ध मे माल्देव के खिलाफ बीकानेर के कल्याणमल और मेवाड के राणा उदयसिह ने हाजीखा की सहायतार्थ सेनायें भेजी थी। अत मारवाड की सेना को पीछे हटना पडा। लेकिन शीघ्र ही हाजीखाँ की दासी रगराय पातर के विषय पर पठान और राणा उदयसिह मे मनमुटाव हो गया। जब राणा उदयसिह ने हाजीखाँ पर सेनाएँ भेजी तो हाजीखा ने माल्देव से सहायता चाही। हाजीखा ने राणा उदयसिह के साथ हरमाडा के स्थान पर 24 जनवरी 1557 के दिन युद्ध लडा। इस युद्ध मे राणा उदयसिह और उसके साथी मेडता के जयमल को पीछे हटना पडा। हरमाडा के युद्ध मे हाजीखा का साथ देकर माल्देव ने मेडता को पुन छीन लिया।

मेडता का निर्वासित शासक जयमल अजमेर के मुगल सूबेदार मिर्जा शरफुद्दीन के पास सहायतार्थ पहुचा। मेडता पर आक्रमण हुआ और मालदेव को इस किले से हाथ धोना पडा।

इस पराजय के थोडे समय बाद ही माल्देव का देहान्त हो गया (7 नवम्बर 1562 A D)। मालदेव मध्यकालीन राजस्थान के शक्तिशाली महान शासको मे से एक था। उसके शासन-काल मे मारवाड राज्य की सीमायें अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी। लेकिन मालदेव ने विस्तारवादी कार्यक्रम अपनाकर बीकानेर और मेडता के शासको के साथ वैर मोल ले लिया था जिसके कारण 1544 मे उसे राज्य से हाथ धोना पडा और 1562 मे उसी वजह से मुगलो का मारवाड राज्य मे प्रवेश

हुआ। फिर भी वह अपने युग का एक माना हुआ सेनानायक था जिसने अपनी सैनिक शक्ति के बल पर मारवाड को उन्नति की चर्म सीमा पर पहुँचा दिया।

BIBLIOGRAPHY

1 Tod · Annals and Antiquities of Rajasthan, vol II
2. V S Bhargava Marwar and the Mughal Emperors
3 B N Reu Glories and Glorians Rathors
4 Delhi Sultanate (Bhrtiya Vidya Bhawan, Bombay)
5 ओझा जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड।
6 रेऊ मारवाड का इतिहास, प्रथम भाग।
7 आसोपा मारवाड का मूल इतिहास।

APPENDIX

अलाउद्दीन खिलजी की राजस्थान-विजय

(Alauddin's Conquest of Rajasthan)

रोमन साम्राज्य के पतन का इतिहास लिखने वाले सुप्रसिद्ध लेखक एडवर्ड गिबन ने अपनी पुस्तक मे लिखा है "जब तक मानव जाति अपने लाभ पहुचाने वालो की अपेक्षा अपने विनाशको की अधिक उदार प्रशसा करेगी, सैनिक यश की तृष्णा सदैव ही अत्यन्त श्रेष्ठ चरित्रो का दुर्गण रहेगी"। कवियो और इतिहासकारो द्वारा बहुचर्चित सिकन्दर की प्रशसा ने अनेक महत्वाकाक्षी शासको की कल्पना प्रज्वलित की है और अलाउद्दीन खिलजी भी उनमे से एक है जो केवल विश्व विजय का स्वप्न ही नही देखा करता था बल्कि अपने सिक्को तथा सार्वजनिक प्रार्थनाओ मे अपने-आपको 'सिकदर सानी' कहकर पुकारने मे गर्व करता था।

अलाउद्दीन स्वभाव से एक महत्वाकाक्षी शासक था। वह अपनी शक्ति को सुसगठित करने के साथ-साथ सारे देश मे मुस्लिम शासन को स्थापित करके स्थायी बनाना चाहता था। इसलिए उसके लिए गुजरात, राजपूताना, दक्षिण और बगाल को विजय करना आवश्यक था। यह सब प्रदेश अलाउद्दीन के राज्यारोहण के समय मुस्लिम सल्तनत के आधिपत्य की परिधि से बाहर थे। Dr K S Lal लिखते है कि यह समस्या "एक कसौटी है जिसके द्वारा दिल्ली के प्रत्येक शासक का मूल्याकन करना चाहिए।"

जिस समय अलाउद्दीन दिल्ली पर शासन कर रहा था उस वक्त राजपुताना मे 6 प्रमुख राजपूत राज्य थे जिनमे से एक राज्य चित्तौड का था जिसपर गुहिलोत वश के राजपूत शासन कर रहे थे। जालौर, सिवाना और रणथम्भोर के राज्य चौहान राजपूतो के आधीन थे। मन्डोर पर राठौड राजपूतो का शासन था और जैसलमेर उस समय भाटी राजपूतो के अधीन था। सयोग की बात है कि उपरोक्त राज्यो के शासक ऐसे दुर्गों मे रह रहे थे जिनको स्थायी रूप से अधिकार मे करना किसी भी शासक के लिए सुगम कार्य नही था। यही कारण है कि दिल्ली सल्तनत के

इतिहास मे प्रत्येक नवीन वश के उदय के साथ ही विजय कार्य को पुन दोहराना पडता था।

1299 का वर्ष अलाउद्दीन के लिए अत्याधिक भाग्यशाली सिद्ध हुआ। इस वर्ष सुल्तान को हर स्थान पर विजय-श्री प्राप्त हुई। गुजरात-विजय करने के लिए उलुगखा और नुसरतखा के नेतृत्व मे सेनायें भेजी गई और उन्हे पूर्ण से सफलता प्राप्त हुई। वापसी पर सेना राजस्थान के मार्ग से लौटी। 'तारीख-ए-मुहम्मदशाही' का लेखक लिखता है कि सैनिको ने जालौर के निकट विद्रोह किया था। इस प्रकार अलाई सेनाओ का 1299 मे ही राजपुताना के साथ सम्पर्क स्थापित हो चुका था। गुजरात के अभियान के समय ही, जैसा कि 'तारीख-ए-मासूमी' के विवरण से पकट होता है, अलाई सेनाओ ने जैसलमेर को भी आक्रान्त किया था। लेकिन जैसलमेर का अभियान एक छापा मात्र था।

राजपूताना मे रणथम्भोर पहली रियासत थी जिसे अलाउद्दीन ने राजपूतो के साथ शक्ति आजमाने के लिए चुना था। इसके अनेक कारण थे—1 यह दिल्ली के निकट था। 2 इसे अधिकृत करने मे पूर्ववर्ती सुल्तान जलालुद्दीन असफल रहा था। 3 रणथम्भोर का किला दुर्भेद्यता के लिए प्रसिद्ध था। 4 जालौर के निकट जिन सैनिको ने विद्रोह किया था उनके नेता मुहम्मदशाह और उसके भाई केहब्रू को रणथम्भोर के राणा ने शरण प्रदान कर दी थी।

रणथम्भौर की विजय

अत 1300 A D मे अलाउद्दीन ने अपने दो सेनानायको उलगुखा और नुसरतखा को रणथम्भोर पर आक्रमण करने का आदेश दिया। बिना किसी प्रतिरोध के अलाई सेनाओ ने (झैन) पर अधिकार कर लिया और रणथम्भोर के शासक हम्मीर के पास सदेश भेजा कि यदि वह मुहम्मदशाह और उसके भाई को उन्हे सौंप दे अथवा मौत के घाट उतार दे तो शाही सेनायें वापस दिल्ली लौट जायेंगी। हम्मीर ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। अत उलगुखा ने किले का घेरा डाल दिया। खाइयाँ खोदी गई और 'गरगच' निर्मित किए गए। हम्मीर के पास एक अच्छी सुसगठित सेना थी जिसकी सख्या देते हुए, समकालीन फारसी इतिहासकार अमीर खुसरो ने लिखा है कि "राणा के पास 10,000 वेगवान घोडे थे, राजपूत लोग किले मे से अनवरत रूप से प्रक्षेपास्त्र फेंकते थे जिनमे से एक प्रक्षेपास्त्र ने नुसरतखा को घायल कर किया और वह मर गया। शोकग्रस्त मुस्लिम सेना पर आक्रमण करने के लिए राजपूत लोग किले से बाहर निकल पडे जिसका परिणाम यह निकला कि उलुगखा को पीछे हटना पडा। जब यह समाचार सुल्तान तक पहुचा तो उसने स्वय युद्ध-स्थल की ओर प्रस्थान करने का निश्चय किया। मार्ग मे सुल्तान को अनेक कठिनाइयो का सामना अवश्य करना पडा। उसकी हत्या करने का भी असफल प्रयत्न किया गया फिर भी अलाउद्दीन

ने दृढता से किले का घेरा डालने का आदेश दिया । किले की दीवार तक पहुँचना असम्भव पाकर सैनिको ने खाई के एक छोटे से अश को रेत और पत्थर से भरा । थैलो से भरने मे सारा ध्यान केन्द्रित करके वे लोग किले की दीवार तक पहुँच गए । किन्तु हिन्दू लोग आग और प्रक्षेपास्त्र फेंकते रहे और इस प्रकार दो तीन हफ्ते तक मुसलमानो को किले के बुर्जों से दूर रखने मे सफल हुए लकिन जब किले मे खाद्य सामग्री की कमी हो गई और स्थिति इतनी अधिक विकट हो गई कि चावल का एक दाना सोने के दो दाने के बदले मे खरीदा जाने लगा तो विवश होकर हम्मीर ने किले मे जौहर की आज्ञा दी और राजपूत परम्परा के अनुसार हम्मीर और उसके साथी केसरिया वस्त्र धारण करके शत्रुओ का अन्तिम मुकाबला करने के लिए किले से बाहर निकल पडे । भयकर युद्ध हुआ और राणा हम्मीर अपने साथियो के साथ युद्ध भूमि मे धराशायी हो गए । इस प्रकार 11 जौलाई 1301 के दिन अलाउद्दीन का रणथम्भौर पर अधिकार हुआ ।

रणथम्भौर के समर्पण के पश्चात् मूर्तिभजन और लूट का चिर-परिचित [illegible]य देखने मे आया । अमीर खुसरो लिखता है कि 'नगर मे अनेक मदिर और भवन [illegible]ष्ट कर दिए गए और कुफ्र का गढ इस्लाम का सदन हो गया ।''

राणा हम्मीर के वीरतापूर्ण युद्ध और मृत्यु का कारण कुछ लेखक उसके हठ [illegible]ो बताते हैं । किन्तु यह नही भूल जाना चाहिए कि हम्मीर ने शरणागतो की रक्षा [illegible] हेतु राजपूत परम्परा के अनुसार अपने प्राण न्योछावर किये थे जो सर्वथा [illegible]पयुक्त था ।

रणथम्भौर की सफलता ने आगे की विजयो को प्रोत्साहित किया । सुल्तान [illegible] अपनी सेना तो बगाल विजय करने के लिए भेजी और स्वय चित्तौड की विजय के लिए चल पडा (28 जनवरी 1303) ।

चित्तौड की विजय

अलाउद्दीन के आक्रमण के समय चित्तौड पर राणा रतनसिह शासन कर रहा था जो 1301 मे ही सिंहासनासीन हुआ था । अमीर खुसरो लिखता है कि 'चित्तौड का राणा सारे हिन्दू राजाओ मे श्रेष्ठ था और हिन्दुस्तान के सब शासक उसकी श्रेष्ठता मानते थे, इसलिए चित्तौड को विजय करना अलाउद्दीन के लिए आवश्यक था । अलाउद्दीन के चित्तौड अभियान के साथ एक रोमानकारी कथा जुडी हुई है । किवदतियो के अनुसार अलाउद्दीन ने राणा रतनसिह की सुन्दर स्त्री पद्मिनी को प्राप्त करने की अभिलाषा से चित्तौड पर आक्रमण किया था लेकिन यह एक विवादास्पद प्रश्न है । चित्तौड का किला मालवा और दक्षिण के मार्ग मे पडता था । इस [illegible] किये बगैर अलाउद्दीन समस्त भारत की विजय करने की [illegible] नहीं कर सकता था ।

चित्तौड का युद्ध भीषण था । दुर्ग के अन्तिम समर्पण से पूर्व 26.8.1303) महिलाओ ने जौहर किया । जब तक राजपूतो ने [illegible] युद्ध के पश्चात् [illegible]

कर दिया तब तक पाशीब निर्मित करके किले पर चढने के सभी प्रयत्न असफल रहे। अलाउद्दीन ने चित्तौड के किले पर अपना अधिकार कर लिया और उसका प्रबन्ध अपने पुत्र खिज्रखा को सुपुर्द कर दिया।

1305 मे अलाउद्दीन की सेनाओ ने मालवा मे प्रवेश किया। मालवा का प्रसिद्ध दुर्ग मान्डू 23 नवम्बर 1305 के दिन अलाउद्दीन के अधिकार मे आगया था। मालवा की विजय के पश्चात सुल्तान ने मलिक काफूर को दक्षिण भेजा और स्वय मारवाड मे स्थित सिवाना के दुर्ग पर अधिकार करने के लिए चल पडा। (2 जुलाई 1302) 'खजाइन-उल-फुतूह' का लेखक अमीर खुसरो लिखता है कि सिवाना के शासक परमार सीतलदेव ने रणथम्भोर और चित्तौड के किलो को खिलजी युद्ध पति के आघातो के सम्मुख धाराशाही होते देखा था किन्तु फिर भी उसने सुल्तान के सम्मुख समर्पण करने से इन्कार कर दिया। सीतलदेव एक शक्तिशाली और कमठ शासक था जिसने युद्ध मे अनेक मुगलो को पराजित किया था, अनेक राजपूत राजा और राव उसका आधिपत्य मानते थे। अत अलाउद्दीन सीतलदेव को दण्डित करने के उद्देश्य से 1302 मे सिवाना पहुँच गया। शाही सेना ने किले का घेरा डालने के पश्चात् अनेक युक्तियो से उसे अधिकार मे करने के प्रयत्न किये लेकिन सब प्रयत्न निरर्थक सिद्ध हुए। महीनो की कोशिश के बादशाही सेना दुर्ग की बुर्जियो को लाँघने मे सफल हुई। सीतलदेव से जालौर भागने का प्रयत्न किया लेकिन वह सेना की एक छुपी हुई टुकडी के चक्कर मे फस गया और 10 अक्टूबर 1302 A D के दिन मारा गया। सिवाना पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया और वहा का प्रशासन उसने कमालुद्दीन गुर्ग को सौंप दिया। सुल्तान स्वय दिल्ली लौट गया।

मारवाड की विजय-सिवाना

1308 मे जब शाही सेना अलापखाँ और उसके साथी ऐनुल्मुक मुल्तानी के नेतृत्व मे मालवा से लौट रही थी तब वे लोग जालौर पहुचे। अत जालौर के शासक कान्हडदेव को भी खिलजी सुल्तान के सम्मुख 1311 मे समर्पण करना पडा। इस विजय की समृति रखने के लिए अलाउद्दीन ने जालौर मे सोगिर के प्रसिद्ध किले मे एक मसजिद का निर्माण किया जो अभी भी विद्यमान है।

जालौर

जालौर के समर्पण के साथ ही राजपूताना की सब प्रमुख रियासतो को एक के पश्चात् एक अधिकार मे कर लिया। कर्नल टॉड लिखता है कि जैसलमेर, रणथम्भोर चित्तौड, सिवाना और जालौर तथा उनसे लगी हुई सभी रियासते-मन्डोर, बूंदी इत्यादि आक्रांत की जा चुकी थी। आधुनिक जोधपुर राज्य के पाड्आ नामक स्थान से वि० स० 1358 का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जिसमे जोगिनपुरा (दिल्ली) के अलावदी (अलाउद्दीन) को मारवाड का सत्तारूढ शासक बताया गया है लेकिन इस

समय मारवाड पर स्थायी रूप से अलाउद्दीन का आधिपत्य स्थापित हो गया था। यह कहना ऐतिहासिक नही है। राजपुताना मे अलाउद्दीन की विजय अल्पकालीन रही। देश-प्रेम और सम्मान के लिए मर-मिटने वाले राजपूतो ने अलाउद्दीन के प्रतिपतियो के सम्मुख कभी स्थाई रूप से समर्पण नही किया। अपने खोये हुये प्रदेशों को पुन प्राप्त करने मे प्रयत्नशील राजपूतो ने रणथम्भौर-विजय के 6 माह पश्चात् जब उलूगखा उसे छोड कर गया तो पुन किला वापस ले लिया। खिज्रखा को अलाउद्दीन के जीवन-काल मे ही चित्तौड खाली करना पडा था। विजय के शीघ्र बाद ही जालौर भी स्वतन्त्र हो गया। स्पष्टत राजपुताना पर अलाउद्दीन खिलजी का स्थायी रूप से अधिकार नही हो सका।

रणथम्भौर की विजय (1300 ई०) से लेकर जालौर के पतन (1311 ई०) तक अलाउद्दीन की सेनाओ ने राजस्थान मे अनवरत रूप से युद्ध किए। राजस्थान के प्रत्येक किले के सामने रक्त रजित युद्ध हुए। कभी कभी तो एक ही दुर्ग के सम्मुख वर्षो तक सघर्ष होता रहा और उसका अन्त जनसख्या के सामान्य संहार और जौहर की अग्नि के भयकर विनाश मे हुआ।

राजपूतो की पराजय के कारण

इसका कारण यह था कि राजपूतो मे एकता की भावना नही थी। एकाकी दुर्गों ने अलाउद्दीन का प्रबल प्रतिरोध अवश्य किया। राजपूत शौर्य ने मुसलमानो को भी हठात् स्तम्भित कर दिया लेकिन वह लोग सगठित नही हो सके और इसलिए अलाउद्दीन को इन लोगो को पराजित करने मे सफलता प्राप्त हुई। यदि सिवाना का सीतलदेव और जालौर का कान्हडदेव सगठित हो जाते तो कदाचित् दोनो राज्य, जो एक दूसरे से मुश्किल से 50 मील की दूरी पर स्थित थे, पतन से बच जाते।

एकता की भावना के अभाव के अतिरिक्त राजपूतो के पतन का एक प्रमुख कारण उनके किलो की स्थिति थी। राजस्थान के सभी किले सामान्यत पहाडो के शिखर पर बने हुए हैं। इसमे तो सदेह नही कि पहाडो की चट्टानो पर चढकर छापा मारना कठिन था, लेकिन जब कभी भी किले का घेरा पडता था तब नीचे मैदान मे तथा दुर्ग मे रहने वाले गेरिसन का मैदानी भाग से सम्बन्ध छूट जाता था। इसलिए अक्सर दुर्ग मे रसद की कमी हो जाती थी। यदि रसद की कमी नही पडती तो हम्मीर को समर्पण नही करना पडता।

इसके अलावा किलो की आन्तरिक स्थिति भी सर्वथा सन्तोषप्रद नही होती थी। बहुत से लोग तो किले के नीचे मैदान मे ही रह जाते थे जिनमे से कभी भी कोई व्यक्ति आक्रमणकारी के हाथो मे खेल कर भेदिया बन जाता था। किलो मे [illegible] वगैरह का भी कोई विशेष ध्यान नही रखा जाता था। इसलिए उन की [illegible] बीमारी फैलने की भी आशका रहती थी। इसके अतिरिक्त जाति-विचार और रूढिवादिता का स्थान सर्वोच्च था। अन्न के भडारो मे [illegible] [illegible]

सन् 1546 ई० मे कोटा और बूंदी पर मुसलमानो का अधिकार हो गया। आक्रमणकारी केसरखाँ और डोकरखा नामक पठान थे। लेकिन खानवा के युद्ध से पूर्व हाडा चौहानो ने पुन कोटा और बूँदी को अपने अधिकार मे कर लिया। यहा का शासक नारायणदास मेवाड के राजा सागा का समकालीन था और इसलिए उसने राणा का खानवा के युद्ध मे साथ दिया था।[1] लेकिन 1531 ई० के लगभग केसरखा और डोकरखा ने पुन कोटा पर अधिकार कर लिया। कोटा को मुसलमानो के प्रभाव से मुक्त करने के लिए बूंदी के प्रतिभाशाली शासक राव सुर्जन को काफी कठिनाइयो का सामना करना पडा और अन्त मे वह 26 वर्षीय मुस्लिम शासन का अन्त करने मे सफल हुआ। अकबर ने 1569 A D मे रणथम्भौर का घेरा डाल दिया। राव सुर्जन को अकबर के सम्मुख आत्म-समर्पण करना पडा। वह अकबर का मनसबदार बन गया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र और उत्तराधिकारी भोज ने अपने छोटे पुत्र हृदयनारायण को कोटा का शासक नियुक्त किया। मुगल सम्राट अकबर ने इस नियुक्ति को स्वीकृति प्रदान कर

हृदयनारायण

[illegible] --ंगीर के शासन काल मे नूरजहा के आदेश मे विद्रोही

काली सिध, पावती, परवन आऊ जल का सग्रह करती हैं। इन नदियो के कारण आस-पास का प्रदेश पर्याप्त उपजाऊ है और उपजाऊ इलाका होने के कारण ही कोटा की आबादी 131 मनुष्य प्रति वर्ग मील हो गई।

नदियो के अतिरिक्त भूतपूर्व कोटा राज्य मे पर्वतो की भी कमी नही है। मुख्य पर्वत मुकन्दरा के हैं। इन पर्वतो से घास, लकडी, महुआ, गोद, शहद, मोम इत्यादि यहा के निवासियो को मिलता रहा है। इसी भाग मे मक्का, तिल्ली, कपास व अफीम पैदा की जाती है जिसके कारण भूतपूर्व कोटा राज्य की आर्थिक स्थिति सुदृढ हुई। यहा से प्राप्त खनिज पदार्थों ने भी आर्थिक स्थिति को ठीक करने मे सक्रिय योग दिया है।

जलवायु उग्र होते हुए भी (गर्मी के दिनो मे भीषण गर्मी तथा शीत काल मे कडी ठण्ड) कोटा मे घास और पानी की बहुतायत है। इसके अलावा यह Main Line पर भी है, इसीलिए तो 1948 से पहले और तत्पश्चात् कोटा निरतर औद्योगिक उन्नति करता जा रहा है। आज तो इसे राजस्थान का कानपुर कहकर पुकारा जाने लगा है।

1 देखिये वशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ 2019-2026

2 Tod Annals & Antiquities of Rajasthan, vol II.

डा० मथुरालाल शर्मा लिखते हैं कि "हृदयनारायण ने कोटा राज्य का फरमान अकबर से प्राप्त किया और इसके आधार पर वह कोटे का राजा माना जाने लगा"।

शाहजादा खुर्रम का दमन करने के लिए अपनी सेना सहित हाजीपुर (आधुनिक इलाहाबाद के निकट) के युद्ध-क्षेत्र मे भाग लिया था। लेकिन वह रणक्षेत्र से भाग खड़ा हुआ। अत जहांगीर ने उससे कोटा का शासन वापस ले लिया।[1]

अत बूदी के राव रतन ने पहले कोटा का शासन अस्थायी रूप से अपने हाथो में ले लिया और फिर जहांगीर की इच्छानुसार अपने पुत्र माधोसिंह को कोटा का राजा मानना प्रारम्भ किया। दक्षिण मे रहते हुए माधोसिंह के खुर्रम के साथ सम्बन्ध हो गये थे। अत राव रतन की मृत्यु के पश्चात् 1631 ई० मे बूदी कोटा से पृथक हो गया। माधोसिंह ने सर्वप्रथम राज्याभिषेक सस्कार सम्पन्न किया और 'महाराजाधिराज' की पदवी धारण की। मुगल राज्य सेवा मे वह 2000 जात 2500 सवार के मनसवदार था।[2]

माधोसिंह कोटा का प्रथम "राजा" था।

इस प्रकार माधोसिंह कोटा के प्रथम स्वतन्त्र शासक थे। उनके राज्याभिषेक के समय दक्षिण मे मुकन्दरा व शेरगढ तक, पूर्व मे पलायथा और मागरोल तक, उत्तर मे बडोद तक और पश्चिम मे केवल नान्ता (चम्बल के बाये किनारे पर स्थित) तक का प्रदेश उनके अधिकार मे था। उनकी मृत्यु के समय बारा और मऊ के परगने उनके अधिकार मे आ चुके थे। "वर्तमान कोटा राज्य का सबसे अधिक उपजाऊ और बसा हुआ भाग माधोसिंहजी का प्राप्त किया हुआ है"।[3]

कोटा राज्य की स्थापना

माधोसिंह के शासन-काल मे कोटा राज्य की सीमाओ का जो विस्तार हुआ उसका मूल कारण इनकी मुगल प्रशासन मे अपूर्व सेवा थी। खानेजहा लोदी के विद्रोह का दमन करने के लिए मुगल सम्राट् शाहजहा ने जो सेना दक्षिण मे भेजा थी उस सेना के अग्रिम भाग के सेनापति माधोसिंह थे। माधोसिंह के सैनिकों ने ही खानेजहा लोदी व उसके दो पुत्रो के टुकडे-टुकडे करके कटे हुए सिर बादशाह का नजर किये थे।[4] अत शाहजहा ने प्रसन्न होकर इन्हे चार अतिरिक्त परगने प्रदान किये और इनके मन्सब मे भी 500 की वृद्धि की। उपहार-स्वरूप मुगल सम्राट् ने

माधोसिंह की एक मनसबदार के रूप मे मुगल साम्राज्य के लिए सेवायें

1 ओझा, राजपूताने का इतिहास, तृतीय भाग पृष्ठ 825

2 Tuzuk-i-Jahangiri vol II P 294-96, वश भास्कर तृतीय भाग पृष्ठ 2496, डा०मथुरालाल शर्मा कृत कोटा राज्य का इतिहास, जिल्द प्रथम, पृष्ठ 45

3 कोटा राज्य का इतिहास, P 107

4 बादशाहनामा, जिल्द I, भाग II P 348-50

द्वारा जीरापुर, खैरावाद, चेचट, और खिलचीपुर के परगने शाहजहाँ के द्वारा प्रदान किये गये थे।[1]

तत्पश्चात् जुझारसिंह-बुदेला के विद्रोह का दमन करने के लिए शाहजहा ने जो सेना 1635 A D मे भेजी थी उस सेना मे भी माधोसिंह थे। इनके भरसक प्रयत्नो के परिणाम स्वरूप ही जुझारसिंह पराजित हुआ था[2]। इसी प्रकार 1637 ई० मे जो मुगल सेना कन्धार पर अधिकार करने के लिए भेजी गई थी उसमे भी माधोसिह शामिल थे। इस अवसर पर भी शाहजहा ने प्रसन्न होकर इनके मन्सव मे 500 जात व सवार की वृद्धि की थी।[3]

1646 ई० मे बल्ख और बदक्शाँ पर आक्रमण करने के लिए जो मुगल सेना भेजी गई उसके हरावल मे माधोसिह थे। अब्दुलहमीद लाहौरी लिखता है कि बल्ख के प्रदेश मे स्थित कमरू और कन्दज के किलो पर मुगलो को अधिकार राजपूतो के शौर्य के कारण ही प्राप्त हुआ था[4]। बल्ख मे रहते हुए माधोसिंह वहाँ के निर्वासित शासक नजरमुहम्मद और उसके मददगार तूरान के शासक अब्दुलअजीज की सयुक्त सेनाओ का इस बहादुरी से मुकाबला किया कि वे लोग बलख से मुगलो को हटाने मे विफल हुए[5]। अत बल्ख अभियान की समाप्ति पर मुगल सम्राट् शाहजहाँ ने इनका उचित सम्मान किया तथा बल्ख के किले की रक्षा करने के एवज मे बारा व मऊ के परगने बूदी नरेश से जीतकार माधोसिंह को दे दिये।[6]

इस प्रकार माधोसिंह ने मुगलो के साथ मित्रतापूर्ण नीति का अनुसरण करके अपने राज्य की सीमाओ का ही विस्तार नही किया अपितु अपने व्यक्तिगत गौरव व प्रतिष्ठा मे भी वृद्धि की। मुगल प्रशासनिक सेवा मे इन्हे जो मन्सब प्रदान किए गए थे उनसे वार्षिक आय लगभग $3\frac{1}{2}$ लाख रुपया होती थी, वे मुगल दरबार के उन पाच हजारी हिन्दू मन्सबदारो मे से एक थे कि जो इने गिने उमरावो को ही दिया जाता था। डा० मथुरालाल शर्मा ने इनके लिए ठीक ही लिखा है "निरतर जान को हथेली पर रखे हुए पहले जहागीर की और फिर शाहजहा की सेवा करने के कारण ही माधोसिहजी 43 परगनो के राजा बने थे। उनको बादशाह से पचहजारी मन्सब के अतिरिक्त नक्कारा और निशान मिला था, और राजा की पदवी प्राप्त हुई थी। उनके जीवन काल मे उन्होंने कभी बादशाह की अप्रसन्नता का अनुभव नही किया। इसीलिए उनका राज्य उत्तरोत्तर विस्तृत होता गया।[7]

---

1 वशभास्कर, तृतीय भाग, P 2595
2 बादशाहनामा, जिल्द प्रथम, द्वितीय भाग P 113–115
3 अब्दुलहमीद लाहौरी, द्वितीय भाग, P. 224
4 लाहौरी, जिल्द 2, P 483–88
5 लाहौरी, जिल्द 2, p 566–71, 614–18, 620–24, 642–57.
6 वश भास्कर, तृतीय भाग, p–2630,
7. कोटा राज्य का इतिहास, जिल्द प्रथम, p. 133.

माधोसिंह अपने समय के सुसंस्कृत, नीति-निपुण-शासक थे। वे उर्दू और संस्कृत के ज्ञाता थे। पहले शाहजादा खुर्रम को हरा कर कैद करना और फिर उसी शाहजादे से सम्राट् बनने के पश्चात् निरंतर गौरव व सम्मान प्राप्त करना इनकी नीति-निपुणता का सबल प्रमाण है। यह अपने युग के एक सफल शासन-प्रबन्धक भी थे। अपने राज्य को 43 परगनों मे बांट रखा था और प्रत्येक परगने मे चौधरी, कानूनगो व ठाकुर नियुक्त कर रखा था। प्रथम दो कर्मचारी वंश परमपरागत होते थे और उनकी नियुक्ति भी मुगल सम्राट् के द्वारा की जाती थी। इनको तनख्वाह भी नही मिलती थी, भूमि का कुछ प्रतिशत रसूम के रूप मे मिलता था। लेकिन 'ठाकुर' पूर्णरूपेण राजा का नौकर होता था जो परगने का शासन करता था और शांति रक्षा के लिए जिम्मेवार था। अपने राज्य मे आन्तरिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए माधोसिंह ने स्थायी सेना भी रख छोडी थी जो पीलखाना और शुतरखाना मे विभाजित थी। इन्होंने कई इमारतें, किले, शहरपनाह व बुर्ज भी बनवाए थे। इनके समय मे बडामहल, बौलसरा की ड्योढी, नक्कारखाने का दरवाजा, सैंलारगांजी का दरवाजा, राजधानी किला, कैंथूनीपोल, पाटनपोल, व किशोरपुरा के दरवाजे बनवाए गए। मधुकरगढ के नाम से एक छोटा सा नगर भी बसाया गया था[1] (यह स्थान कोटा से बारह कोस के फासले पर है) इस प्रकार माधोसिंह भूतपूर्व कोटा राज्य के मूल पुरुष एवं उस राज्य को शक्ति-सम्पन्न बनाने वाले शासक थे।

माधोसिंह का प्रशासन

बल्ख से लौटने पर माधोसिंह बीमार पडे और 48 वर्ष की अल्प आयु मे ही उनका 1649 मे देहान्त हो गया। अत उसका ज्येष्ठ पुत्र मुकुन्दसिंह सिंहासनारूढ हुआ।

राजा मुकुन्दसिंह

शाहजहा ने इन्हे 3000 जात व 2000 सवार का मन्सब प्रदान किया। मुगल मनसबदार होने के नाते इन्हे धरमत के युद्ध मे भाग लेना पडा। शाहजहा ने जो सेना जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह के नेतृत्व मे विद्रोही शाहजादों (औरंगजेब व मुराद) का मुकाबला करने के लिए भेजी थी उस सेना के हरावल मे मुकुन्दसिंह था।[2] उसी युद्ध मे अन्य राजपूत सरदारो के साथ मुकुन्दसिंह भी मारे गए।

अपने 9 वर्ष के शासन-काल मे मुकुन्दसिंह ने अपना ध्यान मुख्यत शासन-प्रबन्ध सुव्यवस्थित करने में लगाया।

सेना तीन भागो मे (पीलखाना, शुतुरखाना व तोपखाना) माधोसिंह ने

---

1 मथुरालाल शर्मा कृत कोटा राज्य का इतिहास, जिल्द I, पृष्ठ 138-39

2 वंशभास्कर, तृतीय भाग, p- 2567

शासनकाल मे ही बाट दी गई थी। मुकुन्दसिंह ने उसको और अधिक सुदृढ किया।

मुकुन्दसिंह का प्रशासन

मुगल Pattern पर इसने भी कतिपय राजपूतो को घुडसवारो की चाकरी के लिए जागीरें प्रदान की। इन जागीरदारो को निश्चित सख्या मे घोडे रखने पडते थे और समय पडने पर अपने घुडसवारो के साथ राज्य सेना मे शामिल होना पडता था। इस प्रकार राज्य की आय का अधिकाश भाग सेना पर खर्च किया जाता था। सैनिक जागीरें केवल राजपूतो को ही नही वरन् गूजर, मीणा, अहीर, भील, सहरिया और मुसलमानो को भी दी जाती थी। इसके अतिरिक्त चारण, ब्राह्मण, खवास, पसावन इत्यादि को भी चाकरी के ऐवज मे जागीर प्रदान की गई थी। इस प्रकार राज्य का अधिकाश भाग जागीरो मे बाँट दिया गया था।

इसने जागीरदारो को श्रेणियो मे विभक्त कर दिया जो जागीरदार देसथी और जागीरदार हजूरथी थी। प्रथम श्रेणी के जागीरदार प्राय अपने स्थान पर रहते थे। अपने स्थानो पर शान्ति एव व्यवस्था बनाए रखना इनका काम था। दूसरी श्रेणी के जागीरदार मुगल सेना मे सम्मिलित होते थे। लेकिन तीसरी श्रेणी मे वह आते थे जिनका अपने पैतृक राज्य मे हिस्सा था और इसीलिए उन्हे जागीरें दी गई थी। पलायथा, कोटडा, कोयला व सागोद के जागीरदार इस श्रेणी में आते थे।

लेकिन जागीरदारो की वास्तविक हैसियत घोडो की सख्या से आकी जाती थी। जो कम घोडे रखता था उसको कम जागीर मिलती थी और जो अधिक घोडे रखता था उसको अधिक। जागीरदार अपने पट्टो के अनुसार निश्चित सख्या के घोडे रखते थे अथवा नही इसकी जाच परगने का हाकिम करता था।

जागीरदार के गाँवो से भी राज्य जकात, राहदारी व मसादती (शासन कर) नामक कर वसूल करता था। इसके अतिरिक्त माल हासिल का कुछ अश भी वसूल किया जाता था।

मुकुन्दसिंह ने भूमि का प्रबन्ध सुचारू रूप से किया था। फसल के वक्त माल हासिल का तखमीना तैयार किया जाता था। फिर पटेल, पटवारी, चौधरी व हवालगीर किसानो के साथ सम्भाविन उपज को कूत कर उसका बाटा नियत करते थे। फसल को नष्ट होने से बचाने की जिम्मेदारी जागीरदारो की होती थी। यदि किसान को बीज नही मिलता था तो राज्य की ओर से दिलाया जाता था। सकटकालीन परिस्थितियो मे किसानो को तकावी भी दी जाती थी। इसके अलावा कई गावो मे सरकारी हवाले (खेत) भी थे। लेकिन मुकुन्दसिंह के भूमि–प्रबन्ध की सबसे बडी विशेषता यह थी कि इसने राजा और कृषको का सीधा सम्बन्ध कायम कर दिया था। अषाढ मास मे गावो के पटेलो को पगडिया और अगोछे परगने के अधिकारी 'पहरावणी' के रूप मे प्रदान करते थे। मुकुन्दसिंह ने लगान नगद व किस्म मे वसूल करना जारी रखा। लगान का पूरा पूरा हिसाब रखा जाता था और लगान वसूल

करने मे शिथिलता नही की जाती थी । यद्यपि जमीन का लगान सीधा किसानो से वसूल किया जाता था, लेकिन कभी-कभी गाव मुकाते पर भी दे दिए जाते थे । इस प्रणाली से राज्य को तो लाभ होता था लेकिन किसानो को हानि उठानी पडती थी । सौभाग्य से यह प्रथा राज्य मे विशेष रूप से प्रचलित नही थी ।

मुकुन्दसिंह के शासनकाल में राजश्री जगतसिंह गौड राजमन्त्री थे । लेकिन हवालगीर और दीवान के बीच मे कोई बडा अफसर नही होता था । राजा का हुक्म सीधा हवालगीर व चौधरी के नाम जारी किया जाता था । परगनो मे न्याय अदालतें भी थी जिन्हें चौंतरा कहकर पुकारा जाता था । चौंतरा के सिपाही, चपरासी इत्यादि की नियुक्ति दरबार की आज्ञा से मत्री करता था ।

राज्य परगनो मे विभक्त था । प्रत्येक परगने मे एक चौधरी, एक कानूनगो एक हवालगीर व एक फोतेदार (कोषाध्यक्ष) होता था । चू कि राज्य मे अनाज का सस्ता भाव था, अत इन कर्मचारियो को वेतन कम ही मिलता था ।

मुकुन्दसिंह के शासनकाल मे पाच परगने कोटा राज्य मे शामिल हुए जिनमे से एक गागरोण का कस्बा था ।

कोटा से झालावाड जाते समय मुकन्दरा की नाल मे सडक के किनारे अवला मीनी के महल पडते हैं । यह महल मुकुन्दसिंह ने अपनी खवास के लिए बनवाये थे । इनके पास ही एक गाव बसाया जिसे मुकन्दरा कह कर पुकारा जाता है । यहाँ एक दरवाजा भी बनवाया था जो आज तक विद्यमान हैं ।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मुकुन्दसिंह कोटा के उन प्रतिभाशाली राजाओ मे से एक था जिसने राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था की नींव रखी थी और एक सच्चे राजपूत की भाति मुगल सम्राट की सेवा मे इसने अपने प्राण त्याग दिए ।

मुकुन्दसिंह की मृत्यु के पश्चात् जगतसिंह का 1658 ई० मे राज्याभिषेक हुआ । राज्याभिषेक के समय इनकी आयु केवल 14 वर्ष की थी । शाहजहा के उत्तराधिकारी और उत्तराधिकार के युद्ध के विजेता औरगजेब का फरमान प्राप्त होते ही जगतसिंह मुगल सम्राट की सेवा मे उपस्थित हुए ।

राजा जगतसिंह

खजुआ के युद्ध मे इन्होंने शुजा के विरुद्ध युद्ध किया और उस युद्ध मे औरगजेब की विजय तक यह मैदान मे डटे रहे । औरगजेब ने इन्हे अपनी सेना मे हरावल मे रखा था ।

तत्पश्चात् मुगल सम्राट ने इन्हे दक्षिण मे नियुक्त किया । 1680 से 83 के बीच यह निरन्तर दक्षिण मे ही रहे और वही किसी युद्ध मे मृत्यु को प्राप्त हुए ।[1]

1 जगतसिंहजी औरगाबाद और बुरहानपुर के आस-पास किसी लडाई मे (अधिक सम्भव है हैदराबाद के युद्ध मे) शत्रु सिपाहियो से लडते हुए मारे गए ।
—डा० मथुरालाल शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, जिल्द I, P 186

इनके शासन–काल मे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह आया कि राजमन्त्री को प्रधान कह कर सम्बोधित किया जाने लगा। राज्य की ओर से जो पट्टे–परवाने जारी किए जाते थे उन पर प्रधान आदि सबके नाम लिखे जाने लगे।

जगतसिंह को खजुआ की विजय के पश्चात् औरगजेब ने बारा व मऊ के परगने पुन प्रदान किये जिन्हे मुकुन्दसिंह की मृत्यु के पश्चात् बूंदी के शासक शत्रुशाल को दे दिया गया था। जगतसिंह भी मुगल सेना मे 2000 के मन्सबदार थे।

जगतसिंह के कोई सन्तान नही थी। अत 1684 ई० में माघोसिंह के सबसे छोटे पुत्र किशोरसिंह को राजगद्दी पर बैठाया गया। यह सागोद के जागीरदार थे।

राजा किशोर सिंह

ऐसा माना जाता है कि जब जगतसिंह की दक्षिण मे मृत्यु हुई तब किशोरसिंह उनके साथ वही पर था। इनके कोटा पहुँचने से पहले ही जागीरदारो ने कोयला के प्रेमसिंह को राजतिलक दे दिया था। लेकिन प्रेमसिंह एक महीने से अधिक राज्य नही कर सके। इसके दो कारण थे। एक कारण तो यह था कि कतिपय सरदार प्रेमसिंह के पक्ष मे नही थे। दूसरा कारण यह था कि जगतसिंह के साथ किशोरसिंह ने खजुआ व दक्षिण के युद्धो मे भाग लेकर मुगल सम्राट् से 1000 का मन्सब व्यक्तिगत रूप से प्राप्त कर लिया था। अत औरगजेब ने जगतसिंह की मृत्यु के बाद खिलअत व फरमान देकर तुरन्त किशोरसिंह को कोटा के लिए रवाना कर दिया। अत किशोरसिंह के कोटा पहुँचने पर सरदारो ने प्रेमसिह पर अयोग्यता का आरोप लगाकर उसे पुन कोयला भेज दिया और किशोरसिंह को राजा स्वीकार किया।

किशोरसिंह के राज्याभिषेक से सम्बन्धित इस घटना से यह स्पष्ट होता है कि

मुगलो का राजनैतिक प्रभुत्व

कोटा पर मुगल सम्राट् का राजनैतिक प्रभुत्व अधिक सबल था तथा सरदारो की उत्तराधिकार के सम्बन्ध मे सलाह भी नही ली जाती थी।

राज्याभिषेक के बाद किशोरसिंह दक्षिण लौट गए। अपने शासन के 12 वर्ष इन्होंने निरन्तर रूप से युद्धो मे ही व्यतीत किये थे। दक्षिण के अतिरिक्त इन्होने मुगल सेना मे रहकर राजस्थान मे मेवाड व मारवाड की सयुक्त सेना के विरुद्ध युद्ध लडा, भरतपुर के विद्रोही जाट सरदार राजाराम का दमन किया।

निरन्तर शाही सेवा मे रहने के कारण इनके मन्सब मे अभिवृद्धि हुई। मृत्यु के समय इनका मन्सब 4000 जात व 3000 सवारो का था। बीजापुर के युद्ध मे अपूर्व वीरता दिखाने के ऐवज मे औरगजेब ने इन्हे कुवाई का परगना प्रदान किया और जाटो के विरुद्ध वीरता दिखाने के पुरस्कार मे केशोराय पाटन का परगना बूंदी से छीनकर दिया गया था।

करने मे शिथिलता नही की जाती थी। यद्यपि जमीन का लगान सीधा किसानो से वसूल किया जाता था, लेकिन कभी-कभी, गांव मुकाते पर भी दे दिए जाते थे। इस प्रणाली से राज्य को तो लाभ होता था लेकिन किसानो को हानि उठानी पड़ती थी। सौभाग्य से यह प्रथा राज्य मे विशेष रूप से प्रचलित नही थी।

मुकुन्दसिंह के शासनकाल मे राजश्री जगतसिंह गौड राजमन्त्री थे। लेकिन हवालगीर और दीवान के बीच मे कोई बड़ा अफसर नहीं होता था। राजा का हुक्म सीधा हवालगीर व चौधरी के नाम जारी किया जाता था। परगनो मे न्याय अदालतें भी थी जिन्हे चौंतरा कहकर पुकारा जाता था। चौंतरा के सिपाही, चपरासी इत्यादि की नियुक्ति दरबार की आज्ञा से मंत्री करता था।

राज्य परगनो मे विभक्त था। प्रत्येक परगने मे एक चौधरी, एक कानूनगो एक हवालगीर व एक फोतेदार (कोषाध्यक्ष) होता था। चूंकि राज्य मे अनाज का सस्ता भाव था, अत इन कर्मचारियो को वेतन कम ही मिलता था।

मुकुन्दसिंह के शासनकाल मे पाच परगने कोटा राज्य मे शामिल हुए जिनमे से एक गागरोण का कस्बा था।

कोटा से झालावाड जाते समय मुकन्दरा की नाल मे सड़क के किनारे अबला मीनी के महल पड़ते हैं। यह महल मुकुन्दसिंह ने अपनी पासवान के लिए बनवाए थे। इनके पास ही एक गांव बसाया जिसे मुकन्दरा कह कर पुकारा जाता है। यहाँ एक दरवाजा भी बनवाया था जो आज तक विद्यमान है।

इनके शासन-काल मे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह आया कि राजमन्त्री को प्रधान कह कर सम्बोधित किया जाने लगा। राज्य की ओर से जो पट्टे-परवाने जारी किए जाते थे उन पर प्रधान आदि सबके नाम लिखे जाने लगे।

जगतसिंह को खजुआ की विजय के पश्चात् औरंगजेब ने बारा व मऊ के परगने पुन प्रदान किये जिन्हे मुकुन्दसिंह की मृत्यु के पश्चात् बूँदी के शासक शत्रुशाल को दे दिया गया था। जगतसिंह भी मुगल सेना मे 2000 के मन्सबदार थे।

जगतसिंह के कोई सन्तान नही थी। अत 1684 ई० मे माधोसिंह के सबसे छोटे पुत्र किशोरसिंह को राजगद्दी पर बैठाया गया। यह सागोद के जागीरदार थे।

राजा किशोर सिंह

ऐसा माना जाता है कि जब जगतसिंह की दक्षिण मे मृत्यु हुई तब किशोरसिंह उनके साथ वही पर था। इनके कोटा पहुँचने से पहले ही जागीरदारो ने कोयला के प्रेमसिंह को राजतिलक दे दिया था। लेकिन प्रेमसिह एक महीने से अधिक राज्य नही कर सके। इसके दो कारण थे। एक कारण तो यह था कि कतिपय सरदार प्रेमसिंह के पक्ष मे नही थे। दूसरा कारण यह था कि जगतसिंह के साथ किशोरसिंह ने खजुआ व दक्षिण के युद्धो मे भाग लेकर मुगल सम्राट् से 1000 का मन्सब व्यक्तिगत रूप से प्राप्त कर लिया था। अत औरंगजेब ने जगतसिंह की मृत्यु के बाद खिलअत व फरमान देकर तुरन्त किशोरसिंह को कोटा के लिए रवाना कर दिया। अत किशोरसिंह के कोटा पहुँचने पर सरदारो ने प्रेमसिह पर अयोग्यता का आरोप लगाकर उसे पुन कोयला भेज दिया और किशोरसिंह को राजा स्वीकार किया।

किशोरसिंह के राज्याभिषेक से सम्बन्धित इस घटना से यह स्पष्ट होता है कि

मुगलों का राजनैतिक प्रभुत्व

कोटा पर मुगल सम्राट् का राजनैतिक प्रभुत्व अधिक सबल था तथा सरदारो की उत्तराधिकार के सम्बन्ध मे सलाह भी नही ली जाती थी।

राज्याभिषेक के बाद किशोरसिंह दक्षिण लौट गए। अपने शासन के 12 वर्ष इन्होंने निरन्तर रूप से युद्धो मे ही व्यतीत किये थे। दक्षिण के अतिरिक्त इन्होने मुगल सेना मे रहकर राजस्थान मे मेवाड व मारवाड की सयुक्त सेना के विरुद्ध युद्ध लडा, भरतपुर के विद्रोही जाट सरदार राजाराम का दमन किया।

निरन्तर शाही सेवा मे रहने के कारण इनके मन्सब मे अभिवृद्धि हुई। मृत्यु के समय इनका मन्सब 4000 जात व 3000 सवारो का था। बीजापुर के युद्ध मे अपूर्व वीरता दिखाने के ऐवज मे औरंगजेब ने इन्हे कुवाई का परगना प्रदान किया और जाटों के विरुद्ध वीरता दिखाने के पुरस्कार में केशोराय पाटन का परगना बूँदी से छीनकर दिया गया था।

किशोरसिंह केवल एक योद्धा ही नही थे वरन् कला के प्रोत्साहन दाता भी थे। इन्होने कई इमारतें, तालाब, घाट, कुण्ड व बावड़िया बनवाई थी। कोटा नगर मे किशोरपुरा मौहल्ला इनके द्वारा ही बसाया गया था और किशोरपुरा दरवाजे का नाम-करण इनके द्वारा ही किया गया था।

युद्ध तथा सार्वजनिक निर्माण के कार्यो मे काफी खर्चा हो गया था। अतः इनके शासन-काल मे दुसाला व हलौटी नामक कर परगना मऊ व बडौद के निवासियो से वसूल किया गया। शायद इसीलिए इनके शासन-काल मे बेगार (नि शुल्क सेवा) भी प्रारम्भ हुई थी। मुसलमानो से पुनर्विवाह पर 'छाली' नाम का कर वसूल किया जाता था। यह कर केवल निम्न जाति के हिन्दुओ तथा मुसलमानो से ही वसूल किया जाता था।

साराश यह है कि किशोरसिंह के शासन-काल मे कोटा राज्य दृढ, सुरक्षित और ऋणमुक्त हुआ। इनके राज्य मे सर्वत्र शान्ति और व्यवस्था थी।

अप्रेल 1696 मे जिंजी के युद्ध मे आहत होकर किशोरसिंह वीरगति को प्राप्त हो गये।

के हाथ मे आ गया था ।' इनके शासन-काल मे भूमि का प्रबन्ध बहुत उत्तम था। उत्तमता और व्यवस्था का इससे अनुमान किया जा सकता है कि परगने के प्रत्येक मुख्य कस्बे से निखनामा प्रति मास कोटा भेजा जाता था ।[1]

रामसिह ने सार्वजनिक निर्माण-कार्य की ओर भी ध्यान दिया । यह कोटा के पहले शासक थे जिनके समय मे कोटा से उदयपुर, आमेर व बासबहाला के साथ आवागमन होता था । अत इनके शासन-काल मे व्यापार की अभिवृद्धि हुई । इसका प्रमाण यह है कि कोटा के बाजार मे मखमल, मसरू, चिकन, महमूदी चिकन, बुरहा-नपुरी इलायचा, मुल्तानी छीट, ताश कीमखाब जैसे बहुमूल्य कपडे बिका करते थे ।

कोटा शहर का परकोटा इनके शासन काल मे ही बनवाया गया था । आधुनिक कोटा का मुख्य बाजार रामपुरा तथा उसका दरवाजा इन्होने बनवाया था ।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि राव रामसिह कोटा के उन प्रतिभाशाली शासको मे से एक थे जिनके शासन-काल मे राज्य की सर्वतोन्मुखी उन्नति हुई । 20 जून 1707 के दिन जाजव के युद्ध मे वे वीरगति को प्राप्त हुए ।

राव रामसिह के उत्तराधिकारी महाराव भीमसिह प्रथम (1707-1720 A D) के शासन काल मे कोटा राज्य ने सर्वतोन्मुखी उन्नति की । कोटा के वर्तमान महाराव भीमसिह द्वितीय के स्वर्गवासी पिता महाराव उम्मेदसिह द्वितीय के शासन-काल मे कोटा राज्य का प्रशासन राजस्थान मे अव्वल दर्जे का माना जाता था । इसका कारण यह था कि स्वर्गीय महाराव साहिब बहादुर ने कतिपय अनुभवी अफसरो को राज्य के विभिन्न विभागो का अध्यक्ष बना रखा था । इन विभागाध्यक्षो मे प्रस्तुत ग्रथ के लेखक के पितामह स्वर्गीय रायबहादुर प० श्रीरामजी भार्गव भी एक थे जो न्याय-विभाग के मुखिया (Head of Judiciary) थे ।

BIBLIOGRAPHY

1 Tod Annals and Antiquities of Rajasthan Vol II
2 Elliot & Dowson History of India as told by its own historians, Vol VI & VII
3 अतरालिया ठाकुर लक्ष्मणदास द्वारा लिखित कोटा का इतिहास ।
4 प० रामकरण का इतिहास ।
5 मुन्शी मूलचन्द की "तवारीख राज्य कोटा हिस्सा अव्वल"
6 वशभास्कर लेखक सूरजमल मिश्र, चार भागो मे 4043 पृष्ठ का यह ग्रथ सम्वत् 1897 मे लिखा गया था । इस ग्रथ मे कोटा राज्य का प्राचीन इतिहास भरा पडा है । सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रथ है ।
7 डा० मथुरालाल शर्मा कृत "कोटा राज्य का इतिहास" प्रथम भाग ।
8 राजपूताने का इतिहास लेखक जगदीशसिह गहलोत, भाग 2, पृष्ठ 3-155.

---

1 डा० मथुरालाल शर्मा कोटा राज्य का इतिहास', जिल्द I, पृष्ठ 244.

किशोरसिंह केवल एक योद्धा ही नही थे वरन् कला के प्रोत्साहन दाता थे। इन्होने कई इमारतें, तालाव, घाट, कुण्ड व बावडिया बनवाई थी। कोटा श मे किशोरपुरा मोहल्ला इनके द्वारा ही बसाया गया था और किशोरपुरा दरवाजे नाम-करण इनके द्वारा ही किया गया था।

युद्ध तथा सार्वजनिक निर्माण के कार्यों मे काफी खर्चा हो गया था। इ इनके शासन-काल मे दुसाला व हलौटी नामक कर परगना गऊ व बडौद के निवासि से वसूल किया गया। शायद इसीलिए इनके शासन-काल मे बेगार (नि शुल्क सेव भी प्रारम्भ हुई थी। मुसलमानो से पुनर्विवाह पर 'छाली' नाम का कर वसूल कि जाता था। यह कर केवल निम्न जाति के हिन्दुओ तथा मुसलमानो से ही वसूल कि जाता था।

साराश यह है कि किशोरसिंह के शासन-काल मे कोटा राज्य दृढ, सुरक्षि और ऋणमुक्त हुआ। इनके राज्य मे सर्वत्र शान्ति और व्यवस्था थी।

अप्रेल 1696 मे जिंजी के युद्ध मे आहत होकर किशोरसिंह वीरगति प्राप्त हो गये।

किशोरसिंह के उत्तराधिकारी रामसिंह ने 1696 से 1707 ई० तक रा किया। यह अपने पिता के द्वितीय पुत्र थे। अत दक्षिण से कोटा वापस आने पर इ

राव रामसिंह

अपने बडे भाई विशनसिंह के विरुद्ध करना पडा। उसमे विजयी होने के पश्च इनका राजतिलक हुआ।

औरगजेब की ओर से इन्हे कवरपदा मे ही 1000 का मन्सव मिला हु था। किशोरसिंह की मृत्यु का समाचार पाकर मुगल सम्राट ने इन्हे 3000 जात सवार का मन्सव तथा कोटा का राज्य वतन जागीर के रूप मे प्रदान किया।

शाही सेवा मे रहते हुए इन्होंने मराठो व जाटो के विद्रोहो का दमन किय औरगजेब की मृत्यु के पश्चात् इन्होने शाहजादा आजम का पक्ष ग्रहण किया उत्तराधिकार के युद्ध मे रामसिंह आजम के साथ विजयी मुअज्जम की सेना से हा मारे गये।

रामसिंह कोटा के प्रथम शासक थे जिन्हे औरगजेब के द्वारा राव की पद प्रदान की गई थी[1]। इनके पहले कोटा के शासक राजा[2] के नाम से सम्बोधि किये जाते थे।

रामसिंह के शासन-काल मे जमीन का नापना और उस पर कर निर्धा करना शायद वादशाह द्वारा निश्चित किये हुए कानूनगो के हाथ मे निरन्तर रहा

1. मुन्शी मूलचन्द कृत 'तवारीख राज्य कोटा' P 126
कामराज के 'इवरतनामा' मे सर्वप्रथम रामसिंह के लिए 'राव' का प्र किया गया है।

'रा

के हाथ मे आ गया था ।' इनके शासन-काल मे भूमि का प्रबन्ध बहुत उत्तम था। उत्तमता और व्यवस्था का इससे अनुमान किया जा सकता है कि परगने के प्रत्येक मुख्य कस्बे से निर्खनामा प्रति मास कोटा भेजा जाता था ।[1]

रामसिह ने सार्वजनिक निर्माण-कार्य की ओर भी ध्यान दिया । यह कोटा के पहले शासक थे जिनके समय मे कोटा से उदयपुर, आमेर व बासबहाला के साथ आवागमन होता था । अत इनके शासन-काल मे व्यापार की अभिवृद्धि हुई । इसका प्रमाण यह है कि कोटा के बाजार मे मखमल, मसरू, चिकन, महमूदी चिकन, बुरहानपुरी इलायचा, मुलतानी छीट, ताश कीमखाब जैसे बहुमूल्य कपडे बिका करते थे ।

कोटा शहर का परकोटा इनके शासन काल मे ही बनवाया गया था । आधुनिक कोटा का मुख्य बाजार रामपुरा तथा उसका दरवाजा इन्होने बनवाया था ।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि राव रामसिह कोटा के उन प्रतिभाशाली शासको मे से एक थे जिनके शासन-काल मे राज्य की सर्वतोन्मुखी उन्नति हुई । 20 जून 1707 के दिन जाजव के युद्ध मे वे वीरगति को प्राप्त हुए ।

राव रामसिह के उत्तराधिकारी महाराव भीमसिह प्रथम (1707-1720 A D) के शासन काल मे कोटा राज्य ने सर्वतोन्मुखी उन्नति की । कोटा के वर्तमान महाराव भीमसिह द्वितीय के स्वर्गवासी पिता महाराव उम्मेदसिह द्वितीय के शासन-काल मे कोटा राज्य का प्रशासन राजस्थान मे अव्वल दर्जे का माना जाता था । इसका कारण यह था कि स्वर्गीय महाराव साहिब बहादुर ने कतिपय अनुभवी अफसरो को राज्य के विभिन्न विभागो का अध्यक्ष बना रखा था । इन विभागाध्यक्षो मे प्रस्तुत ग्रथ के लेखक के पितामह स्वर्गीय रायबहादुर प० श्रीरामजी भार्गव भी एक थे जो न्याय-विभाग के मुखिया (Head of Judiciary) थे ।

BIBLIOGRAPHY

1 Tod Annals and Antiquities of Rajasthan Vol II
2 Elliot & Dowson History of India as told by its own historians, Vol VI & VII
3 अतरालिया ठाकुर लक्ष्मणदास द्वारा लिखित कोटा का इतिहास ।
4 प० रामकरण का इतिहास ।
5 मुन्शी मूलचन्द की "तवारीख राज्य कोटा हिस्सा अव्वल"
6 वंशभास्कर लेखक सूरजमल मिश्र, चार भागो मे 4043 पृष्ठ का यह ग्रथ सम्वत् 1897 मे लिखा गया था । इस ग्रथ मे कोटा राज्य का प्राचीन इतिहास भरा पडा है । सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रथ है ।
7 डा० मथुरालाल शर्मा कृत "कोटा राज्य का इतिहास" प्रथम भाग ।
8 राजपूताने का इतिहास लेखक जगदीशसिह गहलोत, भाग 2, पृष्ठ 3-155.

---

1 डा० मथुरालाल शर्मा कोटा राज्य का इतिहास', जिल्द I, पृष्ठ 244.

किशोरसिंह केवल एक योद्धा ही नही थे वरन् कला के प्रोत्साहन दाता भी थे। इन्होने कई इमारतें, तालाब, घाट, कुण्ड व बावडिया बनवाई थी। कोटा शहर मे किशोरपुरा मोहल्ला इनके द्वारा ही बसाया गया था और किशोरपुरा दरवाजे का नाम-करण इनके द्वारा ही किया गया था।

युद्ध तथा सार्वजनिक निर्माण के कार्यों मे काफी खर्चा हो गया था। अत इनके शासन–काल मे दुसाला व हलौटी नामक कर परगना मऊ व बडौद के निवासियो से वसूल किया गया। शायद इसीलिए इनके शासन–काल मे बेगार (नि शुल्क सेवा) भी प्रारम्भ हुई थी। मुसलमानो से पुनर्विवाह पर 'छाली' नाम का कर वसूल किया जाता था। यह कर केवल निम्न जाति के हिन्दुओ तथा मुसलमानो से ही वसूल किया जाता था।

साराश यह है कि किशोरसिंह के शासन–काल मे कोटा राज्य दृढ, सुरक्षित और ऋणमुक्त हुआ। उनके राज्य मे सर्वत्र शान्ति और व्यवस्था थी।

अप्रेल 1696 मे जिजी के युद्ध मे आहत होकर किशोरसिंह वीरगति को प्राप्त हो गये।

किशोरसिंह के उत्तराधिकारी रामसिंह ने 1696 से 1707 ई० तक राज्य किया। यह अपने पिता के द्वितीय पुत्र थे। अत दक्षिण से कोटा वापस आने पर इन्हे अपने बडे भाई विशनसिंह के विरुद्ध युद्ध करना पडा। उसमे विजयी होने के पश्चात् इनका राजतिलक हुआ।
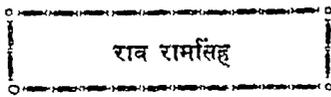
राव रामसिंह

औरगजेब की ओर से इन्हे कवरपदा मे ही 1000 का मन्सब मिला हुआ था। किशोरसिंह की मृत्यु का समाचार पाकर मुगल सम्राट ने इन्हे 3000 जात व सवार का मन्सब तथा कोटा का राज्य वतन जागीर के रूप मे प्रदान किया।

शाही सेवा मे रहते हुए इन्होने मराठो व जाटो के विद्रोहो का दमन किया। औरगजेब की मृत्यु के पश्चात् इन्होने शाहजादा आजम का पक्ष ग्रहण किया और उत्तराधिकार के युद्ध मे रामसिंह आजम के साथ विजयी मुअज्जम की सेना के हाथो मारे गये।

रामसिंह कोटा के प्रथम शासक थे जिन्हें औरगजेब के द्वारा राव की पदवी प्रदान की गई थी[1]। इनके पहले कोटा के शासक राजा[2] के नाम से सम्बोधित किये जाते थे।

रामसिंह के शासन–काल मे जमीन का नापना और उस पर कर निश्चित करना शायद बादशाह द्वारा निश्चित किये हुए कानूनगो के हाथ से निकल कर राजा

1. मुन्शी मूलचन्द कृत 'तवारीख राज्य कोटा' P 126
कामराज के 'इबरतनामा' मे सर्वप्रथम रामसिंह के लिए 'राव' का प्रयोग किया गया है।

2 अब्दुलहमीद लाहौरी का कहना है कि शाहजहा ने माधोसिंह को 'राजा' की पदवी प्रदान की थी।

के हाथ मे आ गया था।' इनके शासन–काल मे भूमि का प्रबन्ध बहुत उत्तम था। उत्तमता और व्यवस्था का इससे अनुमान किया जा सकता है कि परगने के प्रत्येक मुख्य कस्बे से निर्खनामा प्रति मास कोटा भेजा जाता था।[1]

रामसिह ने सार्वजनिक निर्माण–कार्य की ओर भी ध्यान दिया। यह कोटा के पहले शासक थे जिनके समय मे कोटा से उदयपुर, आमेर व बासवहाला के साथ आवागमन होता था। अत इनके शासन–काल मे व्यापार की अभिवृद्धि हुई। इसका प्रमाण यह है कि कोटा के बाजार मे मखमल, मसरू, चिकन, महमूदी चिकन, बुरहानपुरी इलायचा, मुल्तानी छीट, ताश कीमखाब जैसे बहुमूल्य कपडे बिका करते थे।

कोटा शहर का परकोटा इनके शासन काल मे ही बनवाया गया था। आधुनिक कोटा का मुख्य बाजार रामपुरा तथा उसका दरवाजा इन्होने बनवाया था।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि राव रामसिह कोटा के उन प्रतिभाशाली शासको मे से एक थे जिनके शासन–काल मे राज्य की सर्वतोन्मुखी उन्नति हुई। 20 जून 1707 के दिन जाजव के युद्ध मे वे वीरगति को प्राप्त हुए।

राव रामसिह के उत्तराधिकारी महाराव भीमसिह प्रथम (1707–1720 A D) के शासन काल मे कोटा राज्य ने सर्वतोन्मुखी उन्नति की। कोटा के वर्तमान महाराव भीमसिह द्वितीय के स्वर्गवासी पिता महाराव उम्मेदसिह द्वितीय के शासन-काल मे कोटा राज्य का प्रशासन राजस्थान मे अव्वल दर्जे का माना जाता था। इसका कारण यह था कि स्वर्गीय महाराव साहिब बहादुर ने कतिपय अनुभवी अफसरो को राज्य के विभिन्न विभागो का अध्यक्ष बना रखा था। इन विभागाध्यक्षो मे प्रस्तुत ग्रथ के लेखक के पितामह स्वर्गीय रायबहादुर प० श्रीरामजी भार्गव भी एक थे जो *न्याय-विभाग के मुखिया (Head of Judiciary)* थे।

BIBLIOGRAPHY

1 Tod Annals and Antiquities of Rajasthan Vol II
2 Elliot & Dowson History of India as told by its own historians, Vol VI & VII
3 अतरालिया ठाकुर लक्ष्मणदास द्वारा लिखित कोटा का इतिहास।
4 प० रामकरण का इतिहास।
5 मुन्शी मूलचन्द की "तवारीख राज्य कोटा हिस्सा अव्वल"
6 वशभास्कर लेखक सूरजमल मिश्र, चार भागो मे 4043 पृष्ठ का यह ग्रथ सम्वत् 1897 मे लिखा गया था। इस ग्रथ मे कोटा राज्य का प्राचीन इतिहास भरा पडा है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रथ है।
7 डा० मथुरालाल शर्मा कृत "कोटा राज्य का इतिहास" प्रथम भाग।
8 राजपूताने का इतिहास लेखक जगदीशसिह गहलोत, भाग 2, पृष्ठ 3-155

---

1 डा० मथुरालाल शर्मा कोटा राज्य का इतिहास', जिल्द I, पृष्ठ 244

11

बीकानेर राज्य का उत्थान एवं विकास १६६६ ई० तक

(Rise and Growth of Bikaner State upto 1699 A D)

अरावली पर्वत के उत्तर-पश्चिम की मरुभूमि प्राचीन काल मे जागल देश[1] के नाम से पुकारी जाती थी । आधुनिक राजस्थान का यही उत्तरी भाग (27°12′ और 30°12′ के बीच का भाग) पन्द्रहवी शताब्दी मे राठौडो के अधिकार मे आ गया तत्पश्चात् बीकानेर के नाम से सम्बोधित कहकर पुकारा जाने लगा । इसके उत्तर मे फीरोजपुर जिला,

भौगोलिक स्थिति का इतिहास पर प्रभाव

उत्तर-पूर्व मे हिसार का जिला, उत्तर-पश्चिम मे भावलपुर (पाकिस्तान), दक्षिण मे जोधपुर, दक्षिण-पूर्व मे जयपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में जैसलमेर के जिले हैं । इस प्रदेश मे मरुभूमि है, पहाड नही हैं । केवल बीकानेर नगर के दक्षिण मे जोधपुर और जयपुर की सीमाओ के निकट पहाड हैं जिनकी ऊंचाई भी समुद्र की सतह से 1651 फीट से अधिक नही है । अधिकाश भाग मे रेत के टीले हैं जो 20 फीट से लेकर कही-कही 100 फीट तक ऊंचे हो जाते हैं । इस प्रदेश मे केवल दो नदिया हैं (काटली और घग्गर) । यह नदिया भी सिर्फ बरसाती हैं अत नहरो (यमुना एव गगा नहर) की सहायता से सिंचाई की जाती है । झीलें अवश्य चार[2] हैं लेकिन वे सब मीठे पानी की नही हैं । अत इस प्रदेश मे कुए और तालाबो को विशेष महत्व दिया जाता है । पहाडो का अभाव है अतएव वर्षा भी कम होती है । इसके उपरान्त जलविहीन भूमि का अधिकाश भाग अनुपजाऊ है । इसलिए यहा केवल एक ही फसल पैदा की जाती है । मुख्यत खेती मोठ, बाजरा, ज्वार, तिल और रूई की उपज । गगा नहर से सिंचित प्रदेश मे गेहू, जौ, चना, सरसो, मक्का पैदा की जाती है । तरबूज और ककडी यहा की प्रमुख फसल है । लेकिन अब नहरो की सुविधा के कारण नारगी, नीबू अनार,

---

1 जहा आकाश स्वच्छ और उन्नत हो, जल और वृक्षो की कमी हो और खेजडा, कैर, बिल्व, आक, पीलु और बेर के वृक्ष हो, उस प्रदेश को जागल देश कहते हैं । (देखिए शब्द कल्पद्रुम, काण्ड 2, पृष्ठ 529)

महाभारत मे भद्र देश (पजाब का वह भाग जो चिनाब व सतलज के बीच मे स्थित है) एव कुरु देश से मिले हुए भाग को जागल देश कहकर पुकारा गया है । (देखिए महाभारत, वनपर्व (अध्याय 10, श्लोक 11 तथा उद्योगपर्व (अध्याय 54, श्लोक 7)

2 गजनेर, कोलायत, छापर एव लूणकरणसर की झीलें । अन्तिम दोनो झालें खारे पानी की हैं ।

ग्रमरूद, केले ग्रादि भी पैदा होने लगे हैं । इस प्रदेश मे मूली, गाजर व प्याज ग्रधिक सुगमता से पैदा किया जा सकता है । जल की कमी के कारण इस प्रदेश में पेड नही है । ग्रत न तो सघन जगल ही हैं ग्रौर न शेर, चीता, रीछ जैसे भयकर जन्तु ही मिलते हैं ।

पहाडो का ग्रभाव होने पर भी कोलायत ग्रौर गजनेर की रेतीली सतह के नीचे इमारती पत्थर ग्रौर चूने के ककड मिलते हैं । दुलमेरा[1] नामक स्थान से लाल रग का पत्थर मिला है जो सख्त नही होता । पलाना मे कोयला ग्रौर बीदासर के निकट तावे की खानें भी हैं । इन खनिज पदार्थो ने बीकानेर के व्यापार को प्रोत्साहित किया है ।

इस प्रदेश मे भेडे ग्रधिकता से पाई जाती हैं ग्रत ऊन के कम्बल, लोइयाँ, दरियाँ, गलीचे बहुत ग्रच्छे बनते हैं । इसके ग्रतिरिक्त यहा पर मिश्री भी बडी ग्रच्छी तैयार की जाती है । ग्रत प्राचीन काल से ही बीकानेर का व्यापार बढा-चढा रहा है ।

स्पष्ट है कि बीकानेर की विशेष भौगोलिक स्थिति ने इस प्रदेश के इतिहास को प्रभावित किया है । मरुभूमि मे, जहाँ जल ग्रौर ग्रनाज का ग्रभाव है, लोग साधारणत जाना पसन्द नही करते । जलवायु भी ग्रारोग्यपद होते हुए सूखी है । गर्मी मे ग्रधिक गर्मी ग्रौर सर्दी मे ग्रधिक सर्दी पडना यहा की विशेषता है । घास भी सिर्फ उस वक्त पैदा होती है जब वर्षा हो । ग्रत जानवरो को भी चारे का ग्रभाव सहन करना पडता है । परिणामत इस प्रदेश की जनसख्या बहुत कम है । प्रत्येक वर्गमील पर 41 मनुष्यो का ग्रौसत ग्राता है । ग्रत बीकानेर के कतिपय राजा महाराजाग्रो को इस प्रदेश को ग्राकर्षक बनाने के लिए विशेष प्रयत्न करने पडे । निर्यात ग्रधिक होने के कारण यहा के निवासियो की बचपन से ही व्यापार के प्रति ग्रभिरुचि होना स्वाभाविक है । जब उन्हे स्वदेश मे व्यापार का Scope नजर नही ग्राता तो यहाँ के मारवाडी (व्यापारी) भारत के दूसरे भागो मे जाकर व्यापार करते हैं । यदि बीकानेर मरुभूमि नही होता तो कदाचित यहाँ के रहने वालो को जीविका-उपार्जन के लिए दूसरे भागो मे नही जाना पडता । उस सूरत मे मारवाडी सभ्यता ग्रौर सस्कृति का बगाल ग्रौर ग्रासाम की सभ्यता ग्रौर सस्कृति के साथ समागम भी नही होता ।

राठौडो का बीकानेर पर पन्द्रहवी शताब्दी के ग्रन्तिम चरण मे ग्रधिकार हुग्रा था । उनसे पहले यहा जौहिए, चौहान, परमार, भाटी ग्रौर जाटो का ग्रधिकार था । ग्राधुनिक बीकानेर का उत्तरी भाग जोहियो के ग्रधिकार मे था । नागौर से द्वापर

राठौडो से पहले

द्रोणपुर तक का प्रदेश चौहानो के ग्रधिकार मे था । चौहानो से इस प्रदेश को साखलो (परमारो) ने ग्रपने ग्रधिकार मे ले लिया था । पश्चिम का समस्त प्रदेश भाटियो के ग्रधिकार मे रहा था । शेष भाग जाटो के ग्रधिकार में था ।

---

1 *बीकानेर शहर से 42 मील पूर्व मे यह स्थान है ।*

जागल देश का विजेता बीका जोधपुर के राव जोधा की तीसरी रानी नौरगदे का जेष्ठ पुत्र था । इसका जन्म मगलवार श्रावण सुदी 15 वि० स० 1495 (5 8 1438 A D) के दिन हुआ था । 27 वर्ष की अवस्था मे (सितम्बर 1465 A D) बीका ने 100 घुडसवार तथा 500 राजपूत योद्धाओ के साथ बीकानेर की दिशा मे प्रस्थान किया । बीका के स्मारक लेख मे

बीका 1472–1504 A D

लिखा हुआ है—'पिता के वचन सुनकर बीका ने प्रणाम किया तथा राजा के छोटे भाई (काधल) द्वारा प्रेरित होकर शत्रुओ के समूह का नाश करके नया राज्य स्थापित किया ।"[1] लेकिन इस स्मारक लेख से यह स्पष्ट नही होता कि बीका के पिता ने उससे क्या वचन कहे थे ? राजा के कौन से भाई ने उसे प्रेरणा दी थी ? कौन-कौन से शत्रुओ को पराजित करके बीका ने नया राज्य स्थापित किया ? इसका उत्तर नैणसी की ख्यात मे मिल सकता है । नैणसी लिखता है कि जागलू का शासक साखला नापा को बिलोचो ने आ दबाया था । अत वह सहायतार्थ जोधपुर के राव जोधा के पास पहुँचा । जोधा ने बीका और उसके चाचा काधल को सेना देकर रवाना किया था । कोडमदेसर[2] पहुँचकर इसने 1472 A D मे अपने आपको राजा घोषित किया । तत्पश्चात् जागलू पहुँच कर साखलो के 84 गाव अपने अधिकार मे करके राज्य का विस्तार करना प्रारम्भ किया । इस राज्य-विस्तार के कार्यक्रम मे बीका को जैसलमेर के भाटियो तथा उनके वशज पूगल के भाटियो से टक्कर लेनी पड़ी । अत अपनी स्थिति को सुदृढ करने के खातिर बीका ने 12 अप्रैल 1488 के दिन राती घाटी पर एक गढ का निर्माण करवाना प्रारम्भ किया । उस गढ के इर्द-गिर्द एक नगर भी बसाया जिसका नामकरण उसने अपने नाम के पीछे 'बीकानेर' किया । बीका को जाटो से भी युद्ध लडने पडे थे । उसने जाटो के प्रदेश को शीघ्र अपने अधिकार मे कर लिया । इस प्रकार बीका ने देरावर, सिरसा, भटिंडा, भटनेर, नागड, नरहड पर अधिकार कर लिया और नागौर को दो बार जीता । इस प्रकार उसके अधिकार मे चालीस हजार वर्गमील भूमि आ गई थी ।[3] इसने अपने जीवनकाल मे जोधपुर, खण्डेला और रिवाडी पर भी चढाई की थी । 17 जून 1504 के दिन बीका का देहान्त हो गया ।[4]

---

1 श्रुत्वा पितृवच प्रणाम मकरोद् भूपान्द्र जप्रेरित ।
हत्वा शत्रुवन स्वभिक्ष (?) सहित राज्य पर प्राप्तवान ॥

2 नैणसी की ख्यात ।
कोडमदेसर आधुनिक बीकानेर शहर से 15 मील पश्चिम मे एक छोटा गाव है ।

3 ओझा द्वारा उद्धरित 'जैतसी रो छन्द' (छन्द 43 से 47) । यह पुस्तक बीका की मृत्यु के केवल 31 वर्ष बाद बीठू सूजा ने लिखी थी ।

4 ओझा बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम जिल्द, पृष्ठ 108–9

यद्यपि बीका ने अपने बाहुबल से नया राज्य स्थापित किया था लेकिन धर्म–परायण होने के नाते वह राज्य-वृद्धि को देशनोख की करणीजी की कृपा का फल समझता था ।

बीका के पुत्र और उत्तराधिकारी नरा कुछ मास राज्य करने के पश्चात् मृत्यु को प्राप्त हो गया । लेकिन नरा का उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई लूणकरण हुआ

लूणकरण

जिसने 1505 से 1526 तक बीकानेर पर राज्य किया । इन 21 वर्षों मे उसने दद्रेवा, फतहपुर, चायलवाडे, नागौर, जैसलमेर व नारनोल पर आक्रमण किए । अन्तिम अभियान मे वह स्वय मारा गया । इन अभियानो के परिणामस्वरूप दद्रेवा, फतहपुर व चायलवाडे पर लूणकरण का अधिकार हो गया । लूणकरण केवल एक विजेता ही नही था वरन प्रजा-हितैषी, साहित्य-प्रेमी व दानी शासक भी था । इसलिए उसे कलियुग का कर्ण कहकर पुकारा जाता था । दुर्भिक्ष के समय वह खुले हाथ से प्रजा की सहायता करता था ।[1]

लूणकरण का पुत्र और उत्तराधिकारी जैतसी मध्ययुगीन राजस्थान के प्रतिभाशाली शासको मे से एक हुआ है । इसने आमेर के उत्तराधिकार के सघर्ष मे अपने

जैतसी 1526–1542

भान्जे[2] सागा की सहायता करके उसे राज-सिहासन दिलवाया । इसी प्रकार जैतसी ने मारवाड के शासक राव गांगा की नागौर के अभियान मे सहायता की थी । इसका बाबर के पुत्र कामरान के साथ भी युद्ध हुआ था । 1542 मे मारवाड के शासक मालदेव की आक्रमणकारी सेना का मुकाबला करता हुआ, जैतसी युद्ध मे मारा गया । उस समय इसने अपना परिवार सिरसा भेज दिया था और अपने मत्री नगराज को सहायतार्थ दिल्ली के सूर सुल्तान शेरशाह के पास भेजा था ।

मालदेव का बीकानेर पर अधिकार अवश्य हो गया था लेकिन शेरशाह के

कल्याणमल 1544–1574

द्वारा सुमेल के युद्ध मे पराजित किए जाने के उपरान्त मालदेव के हाथ से जोधपुर के साथ साथ बीकानेर भी निकल गया । अत विजयी शेरशाह ने बीकानेर का टीका जैतसी के पुत्र और उत्तराधिकारी कल्याणमल को दिया ।[3]

---

1 'जैतसी रो छन्द' मे उसे कलियुग का कर्ण कहकर पुकारा गया है (देखिए छन्द 54 इत्यादि) ।

2 जैतसी की बहिन बालाबाई का विवाह आमेर के शासक पृथ्वीराज हरिभक्त साथ हुआ था । इसी के गर्भ से सागा हुआ था जिसका अपने सौतेले भाई रतनसिंह के साथ गद्दी के लिए सघर्ष चला था ।

3 देखिए जयसोम रचित 'कर्मचन्द्र वशोत्कीर्तनक काव्यम श्लोक 221–224

शेरशाह की मृत्यु के बाद जब माल्देव ने पुन विजय का क्रम प्रारम्भ किया तो कल्याणमल ने मेडता के शासक जयमल की सैनिक सहायता की थी। इसी प्रकार जब शेरशाह के गुलाम हाजीखाँ का माल्देव के साथ हरमाडा के स्थान पर युद्ध हुआ तब भी कल्याणमल ने 500 सैनिक हाजीखाँ की सहायतार्थ भेजे थे। विद्रोही बैरमखाँ को भी आश्रय प्रदान किया था।[1]

1570 A D मे जब मुगल सम्राट अकबर नागौर मे ठहरा हुआ था उस वक्त अन्य राजपूत राजाओ की तरह कल्याणमल भी अकबर की सेवा मे उपस्थित हुआ था इसी समय कल्याणमल की भतीजी (कान्हा की पुत्री) की शादी[2] अकबर के साथ की गई थी। कल्याणमल अपने ज्येष्ठ पुत्र रायसिंह को अकबर की सेवा मे छोडकर बीकानेर लौट गया जहा 24 1 1574 के दिन उसका देहान्त हो गया।

महाराजा रायसिंह
1575 1612A D

कल्याणमल की मृत्यु के उपरान्त उसका ज्येष्ठ पुत्र रायसिंह बीकानेर का स्वामी हुआ उसने अपनी उपाधि महाराजाधिराज और महाराजा धारण की।[3] रायसिंह प्रारम्भ से ही मुगल साम्राज्य की सेवा मे था। जुलाई 1572 मे जो सेना गुजरात पर आक्रमण करने के लिए भेजी गई थी, रायसिंह उसके साथ था।

अक्तूबर 1572 मे अकबर ने रायसिंह को सरकार जोधपुर का मुगल अधिकारी नियुक्त करके गुजरात का मार्ग निष्कटक रखने का भार उसके ऊपर सौंप दिया ताकि राणा प्रताप उस मार्ग का अवरुद्ध नही कर सकें। जोधपुर पर रायसिंह का अधिकार लगभग तीन वर्ष तक रहा।[4]

---

1 देखिए अकबरनामा, जिल्द 2, पृष्ठ 159, तबकाते अकबरी (इलियट और डाउसन, जिल्द 5, पृष्ठ 265) मुशी देवीप्रसाद 'राव कल्याणमलजी का जीवन-चरित्र, पृष्ठ 106

2 कान्हा कल्याणमल का सगा छोटा भाई था जो जैतसी की छोटी रानी काश्मीरदे के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। देखिए अकबरनामा जिल्द II, पृष्ठ 358–59

3 Tessitory Bardic and Historical Mss, Section II (Poetry), 41 Journal of Asiatic Society of Bengal (1916 A D) Vol XII, P 96। बीकानेर के किले के दरवाजे (सूरजपोल दरवाजे) पर जो बडी प्रशस्ति है, उसमे रायसिंह को 'महाराजाधिराज महाराजा' सम्बोधित किया गया है। इसके पहले बीकानेर के सब शासक अपने को 'राव' कहते थे। कल्याणमल ने अवश्य 'महाराजाधिराज महाराज' की उपाधि धारण की थी जैसा कि उसके स्मारक-लेख से स्पष्ट है।

4. देखिए ओझा कृत बीकानेर राज्य का इतिहास, जिल्द I, पृष्ठ 167

गुजरात-विजय के कुछ समय पश्चात् इब्राहीमहुसैन मिर्जा, मुहम्मदहुसैन मिर्जा और शाह मिर्जा ने विद्रोह खडे कर दिए। इन विद्रोहो का दमन करने के लिए जो मुगल सेना दिसम्बर 1573 मे भेजी गई थी, रायसिंह उसके साथ था जब इब्राहीम-हुसैन मिर्जा युद्ध के मैदान से भाग खडा हुआ तो रायसिंह ने ही उसका नागौर तक पीछा किया था। कटौली के युद्ध मे बुरी तरह पराजित होकर मिर्जा भागकर पजाब की ओर चला गया।

1574 मे अकबर ने राव माल्देव के पुत्र चन्द्रसेन को दडित करने के लिए एक सेना भेजी, रायसिंह इस सेना के साथ था। इसके दो वर्ष बाद रायसिंह को सिरोही के शासक सुरताण देवडा का दमन करने के लिए भेजा गया। रायसिंह ने इसे पराजित किया और उसे बादशाह की सेवा मे उपस्थित किया।

1581 मे मिर्जा हकीम के विद्रोह का दमन करने के लिए जो शाही सेना भेजी गई थी, रायसिंह उस सेना के साथ भी था। 1585 मे बलूचिस्तान के विद्रोहियो का दमन करने के लिए रायसिंह को भेजा गया था। 1586 मे अकबर ने रायसिंह की नियुक्ति राजा भगवन्तदास कच्छवाहा के साथ लाहौर के प्रबन्ध के लिए की थी।

नवम्बर 1591 मे रायसिंह को खानखाना के साथ कन्धार-विजय करने के लिए नियुक्त किया गया। इस समय रायसिंह शाही सेना मे 4000 का मन्सबदार था।

1593 मे इसे दक्षिण मे नियुक्त किया गया। इसी समय इसे जूनागढ दिया गया था। 1597 मे उसे पुन दक्षिण मे नियुक्त किया गया। अहमदनगर विजय हो जाने के बाद भी रायसिंह को बदस्तूर दक्षिण मे ही रक्खा गया। 1603 मे उसे शाहजादा सलीम के साथ मेवाड के अभियान पर भेजा गया।

जहागीर ने 1605 मे रायसिंह के मन्सब मे वृद्धि की। 22 जनवरी 1612 के दिन बुरहानपुर मे रहते हुए रायसिंह की मृत्यु हो गई। इससे स्पष्ट है कि रायसिंह को जहागीर के शासन-काल मे दक्षिण के अभियानो मे नियुक्त किया गया था।

उपरोक्त सैनिक-सेवाओ के ऐवज मे रायसिंह को शाही सेना मे उच्च मन्सब प्राप्त हुआ। अपनी मृत्यु के समय रायसिंह पाच हजार का मन्सबदार था। रायसिंह के शासनकाल मे ही बीकानेर राजघराने का दिल्ली और आगरा के मुगल सम्राटो के साथ घनिष्ट सम्बन्ध प्रारम्भ हुआ। इस घनिष्ट सम्बन्ध के परिणामस्वरूप रायसिंह की 'वतन जागीर' मे समय-समय पर जो इजाफे किये गये, उनके कारण बीकानेर राज्य का विकास हुआ। शम्साबाद, नागौर, सोरठ, और जूनागढ के परगने रायसिंह को समय-समय पर प्रदान किये गये थे। पाउलेट ने रायसिंह के एक फरमान के आधार पर, जो उसे 1599 मे प्रदान किया गया था, रायसिंह को 47 परगनो का शासक लिखा है। इन 47 परगनो मे से सूबा, अजमेर, हिसार, भटनेर तथा मुलतान के कतिपय परगने रायसिंह के अधिकार मे थे। समकालीन मुगल

सम्राट (अकबर और जहागीर) इस पर विश्वास करते थे और इसे मुगल–साम्राज्य का स्तम्भ मानते थे ।

रायसिह केवल एक योद्धा ही नही-बल्कि व्यक्तिगत रूप से दानी व्यक्ति भी था । विद्वानो का आश्रयदाता था । मुन्शी देवीप्रसाद ने इसे 'राजपूताने का कर्ण' कहकर पुकारा था । वह स्वय एक उच्चकोटि का कवि था ।[1] अत उसके आश्रय मे कई उत्तम ग्रन्थो की रचना हुई ।

रायसिंह को भवन-निर्माण की भी रुचि थी । बीकानेर का सुदृढ और विशाल किला उसके शासनकाल मे ही बनवाया गया था । उसके मन्त्री कर्मचन्द जैन के सरक्षण एव प्रोत्साहन के कारण कतिपय जैन मन्दिरो का भी जीर्णोद्धार हुआ ।

महाराजा दलपतसिह 1612-13

रायसिंह की मृत्यु के पश्चात् जहागीर ने उसकी इच्छा के विरुद्ध भी बीकानेर राज्य का टीका सूरसिंह को न देकर दलपतसिंह को दिया जबकि रायसिंह अपने राज्य का टीका सूरसिंह को दे गया था । फिर भी जहागीर की इच्छानुसार दलपतसिंह ही बीकानेर का शासक हुआ ।

तत्पश्चात् अगस्त 1612 मे इसे ठट्ठा भेजा गया था । दलपतसिंह और सूरसिंह मे छापर के निकट युद्ध हुआ—उस युद्ध मे दलपतसिंह हार गया, उसे बन्दी बना लिया गया । तत्पश्चात् जहाँगीर ने ही उसे मृत्यु-दण्ड दे दिया । इस प्रकार दलपतसिंह का एक–वर्षीय शासन–काल समाप्त हुआ ।

महाराजा सूरसिंह 1613–1631

जहागीर के हुक्म से सूरसिंह बागी शहजादे खुर्रम का दमन करने गया । इस समय उसे तीन हजार जात एव दो हजार सवारो का मन्सब प्रदान किया गया था । शाहजहाँ ने बादशाह बनने के बाद सूरसिंह का मन्सब बढाकर चार हजार जात और ढाई हजार सवार कर दिया था । 1628 मे इसे काबुल भेजा गया था । वहा से लौटने के बाद जूझारसिंह बुदेला के विद्रोह का दमन करने के लिए ओरछा भेजा गया । इसके बाद खानजहा लोदी का दमन करने के लिए जो शाही सेना भेजी गयी थी—उसके साथ सूरसिंह को भेजा गया था । इन सेवाओ के कारण सूरसिंह की—मुगल साम्राज्य मे प्रतिष्ठा बढी । खुर्रम ने अपने एक निशान मे उसे 'उच्च कुल के राजाओ मे सर्वश्रेष्ठ राजा लिखा है'—अत उसे नागौर एव मारोठ के परगने पुन प्रदान कर दिए जो रायसिंह की मृत्यु के पश्चात् दलपतसिंह के हाथ से निकल गए थे ।

1 'रायसिंह महोत्सव' तथा 'ज्योतिष–रत्नाकर' नामक ग्रन्थ रायसिंह ने स्वय लिखे थे । पहला ग्रन्थ वैद्यक का है ।

दक्षिण मे बोहरी (बुरहानपुर के निकट) नामक ग्राम मे सूरसिंह का देहान्त हो गया।

महाराजा कर्णसिंह 1631-1669

सूरसिंह की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र कर्णसिंह बीकानेर का शासक हुआ। मुगल सम्राट शाहजहा ने इसे राज्याभिषेक के समय दो हजार जात तथा डेढ हजार सवार का मन्सब प्रदान किया।

राज्याभिषेक के तुरन्त बाद इसे मलिक अम्बर के पुत्र फतहखा के खिलाफ दक्षिण मे भेजा गया। दक्षिण मे रहते हुए ही कर्णसिंह ने परेंडे की चढाई मे भी भाग लिया था (1632 A D)। 1626 मे इसे शाहजी पर चढाई करने के लिए भेजा गया।

कर्णसिंह ने जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह के ज्येष्ठ भ्राता और नागौर के शासक अमरसिंह पर भी चढाई की थी। पूंगल के विद्रोही राव सुदर्शन भाटी पर उसने चढाई करके अधीन किया। शाहजहा ने उसकी सेवाओ से प्रसन्न होकर उसे ढाई हजार जात और दो हजार सवार का मन्सब दिया तथा दौलताबाद का किलेदार नियुक्त किया। 1652 मे कर्णसिंह तीन हजार जात और दो हजार सवार का मन्सबदार हो गया था।

औरङ्गजेब ने बादशाह बनने के बाद 1660 मे कर्णसिंह की नियुक्ति दक्षिण मे की थी। वहा रहते हुए 1666 में इसने चांदा के जमीदार के विरुद्ध चढाई मे भाग लिया। तत्पश्चात् इसे सीमान्त प्रदेश मे नियुक्त किया गया। लेकिन सीमांत प्रदेश मे रहते हुए कर्णसिंह ने मुस्लिम विरोधी कार्य किए। अतएव औरङ्गजेब ने इसकी नियुक्ति औरङ्गाबाद में करदी। वहा रहते हुए ही 1669 मे कर्णसिंह का देहान्त हो गया।

कर्णसिंह बीकानेर के उन प्रतिभाशाली वीर शासको मे से एक था जिसने अपनी वीरता के बल पर व्यक्तिगत ख्याति को बढाने के साथ ही साथ अपने राज्य की प्रतिष्ठा को भी बढाया। राजस्थानी ख्यातो के लेखक लिखते हैं कि औरङ्गजेब सब राजपूत राजाओ को मुसलमान बनाना चाहता था लेकिन उसकी इस इच्छा को कर्णसिंह ने असफल कर दिया। अत समस्त राजपूत राजाओ की ओर से बीकानेर के महाराजा को 'जगलधर पादशाह' की उपाधि दी गई जो अब तक चली आती है।

वीर होने के साथ-साथ कर्णसिंह स्वय विद्वान थे और विद्वानो के आश्रयदाता भी थे। अत उनके राजकीय सरक्षण मे प० गगानन्द मैथिल, भट्ट होसिहक और कवि मुद्गल ने कई ग्रथो की रचना की जिनमें से तीन ग्रन्थ अब भी राजकीय पुस्तकालय (अनूप सस्कृत पुस्तकालय) मे विद्यमान हैं।

महाराजा कर्णसिंह के जीवन-काल मे ही मुगल सम्राट औरङ्गजेब ने अनूप-

सम्राट (अकबर और जहागीर) इस पर विश्वास करते थे और इसे मुगल–साम्राज्य का स्तम्भ मानते थे ।

रार्यासह केवल एक योद्धा ही नही-बल्कि व्यक्तिगत रूप से दानी व्यक्ति भी था । विद्वानो का आश्रयदाता था । मुन्शी देवीप्रसाद ने इसे 'राजपूताने का कर्ण' कहकर पुकारा था । वह स्वय एक उच्चकोटि का कवि था ।[1] अत उसके आश्रय मे कई उत्तम ग्रन्थो की रचना हुई ।

रार्यासह को भवन-निर्माण की भी रुचि थी । बीकानेर का सुदृढ और विशाल किला उसके शासनकाल मे ही बनवाया गया था । उसके मन्त्री कर्मचन्द जैन के सरक्षण एव प्रोत्साहन के कारण कतिपय जैन मन्दिरो का भी जीर्णोद्धार हुआ ।

महाराजा दलपतसिह 1612-13

रार्यासह की मृत्यु के पश्चात् जहागीर ने उसकी इच्छा के विरुद्ध भी बीकानेर राज्य का टीका सूरसिह को न देकर दलपत-सिह को दिया जबकि रार्यासह अपने राज्य का टीका सूरसिह को दे गया था । फिर भी जहागीर की इच्छानुसार दलपतसिह ही बीकानेर का शासक हुआ ।

तत्पश्चात् अगस्त 1612 मे इसे ठठ्ठा भेजा गया था । दलपतसिह और सूरसिह मे छापर के निकट युद्ध हुआ—उस युद्ध मे दलपतसिह हार गया, उसे बन्दी बना लिया गया । तत्पश्चात् जहाँगीर ने ही उसे मृत्यु-दण्ड दे दिया । इस प्रकार दलपतसिह का एक–वर्षीय शासन–काल समाप्त हुआ ।

महाराजा सूरसिह 1613–1631

जहागीर के हुक्म से सूरसिह बागी शहजादे खुर्रम का दमन करने गया । इस समय उसे तीन हजार जात एव दो हजार सवारो का मन्सब प्रदान किया गया था । शाहजहाँ ने बादशाह बनने के बाद सूरसिह का मन्सब बढाकर चार हजार जात और ढाई हजार सवार कर दिया था । 1628 मे इसे काबुल भेजा गया था । वहा से लौटने के बाद जूझारसिह बुदेला के विद्रोह का दमन करने के लिए ओरछा भेजा गया । इसके बाद खानजहा लोदी का दमन करने के लिए जो शाही सेना भेजी गयी थी—उसके साथ सूरसिह को भेजा गया था । इन सेवाओ के कारण सूरसिह की—मुगल साम्राज्य मे प्रतिष्ठा बढी । खुर्रम ने अपने एक निशान मे उसे 'उच्च कुल के राजाओ मे सर्वश्रेष्ठ राजा लिखा है'—अत उसे नागौर एव मारोठ के परगने पुन प्रदान कर दिए जो रार्यासह की मृत्यु के पश्चात् दलपतसिह के हाथ से निकल गए थे ।

1 'रार्मासह महोत्सव' तथा 'ज्योतिप–रत्नाकर' नामक ग्रन्थ रार्यासह ने स्वय लिखे थे । पहला ग्रन्थ वैद्यक का है ।

दक्षिण मे वोहरी (बुरहानपुर के निकट) नामक ग्राम मे सूरसिंह का देहान्त हो गया ।

महाराजा कर्णसिंह 1631-1669

सूरसिंह की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र कर्णसिंह बीकानेर का शासक हुआ । मुगल सम्राट शाहजहा ने इसे राज्याभिषेक के समय दो हजार जात तथा डेढ हजार सवार का मन्सब प्रदान किया ।

राज्याभिषेक के तुरन्त बाद इसे मलिक अम्बर के पुत्र फतहखा के खिलाफ दक्षिण मे भेजा गया । दक्षिण मे रहते हुए ही कर्णसिंह ने परेंडे की चढाई मे भी भाग लिया था (1632 A D) । 1636 मे इसे शाहजी पर चढाई करने के लिए भेजा गया ।

कर्णसिंह ने जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह के ज्येष्ठ भ्राता और नागौर के शासक अमरसिंह पर भी चढाई की थी । पूंगल के विद्रोही राव सुदर्शन भाटी पर उसने चढाई करके अधीन किया । शाहजहा ने उसकी सेवाओ से प्रसन्न होकर उसे ढाई हजार जात और दो हजार सवार का मन्सब दिया तथा दौलताबाद का किलेदार नियुक्त किया । 1652 मे कर्णसिंह तीन हजार जात और दो हजार सवार का मन्सबदार हो गया था ।

औरङ्गजेब ने बादशाह बनने के बाद 1660 मे कर्णसिंह की नियुक्ति दक्षिण मे की थी । वहा रहते हुए 1666 मे इसने चाँदा के जमीदार के विरुद्ध चढाई मे भाग लिया । तत्पश्चात् इसे सीमान्त प्रदेश मे नियुक्त किया गया । लेकिन सीमांत प्रदेश मे रहते हुए कर्णसिंह ने मुस्लिम विरोधी कार्य किए । अतएव औरङ्गजेब ने इसकी नियुक्ति औरङ्गाबाद मे करदी । वहा रहते हुए ही 1669 मे कर्णसिंह का देहान्त हो गया ।

कर्णसिंह बीकानेर के उन प्रतिभाशाली वीर शासको में से एक था जिसने अपनी वीरता के बल पर व्यक्तिगत ख्याति को बढाने के साथ ही साथ अपने राज्य की प्रतिष्ठा को भी बढाया । राजस्थानी ख्यातो के लेखक लिखते हैं कि औरङ्गजेब सब राजपूत राजाओ को मुसलमान बनाना चाहता था लेकिन उसकी इस इच्छा को कर्णसिंह ने असफल कर दिया । अत समस्त राजपूत राजाओ की ओर से बीकानेर के महाराजा को 'जगलधर पादशाह' की उपाधि दी गई जो अब तक चली आती है ।

वीर होने के साथ-साथ कर्णसिंह स्वय विद्वान थे और विद्वानो के आश्रयदाता भी थे । अत उनके राजकीय सरक्षण मे प० गगानन्द मैथिल, भट्ट होसिहक और कवि मुद्गल ने कई ग्रथो की रचना की जिनमे से तीन ग्रन्थ अब भी राजकीय पुस्तकालय (अनूप सस्कृत पुस्तकालय) मे विद्यमान है ।

महाराजा कर्णसिंह के जीवन-काल मे ही मुगल सम्राट औरङ्गजेब ने अनूप-

सिंह को 2000 जात तथा डेढ़ हजार मन्सब प्रदान करके बीकानेर का राज्य सौंप दिया था। कर्णसिंह की मृत्यु के पश्चात औरङ्गजेब ने एक फरमान अनूपसिंह के पास भेजा था। उसमे भविष्य मे योग्यतापूर्वक बीकानेर का शासन करने के लिए लिखा है।

महाराजा अनूपसिंह
1669–1698

1670 मे मुगल सेनायें मराठो का दमन करने के लिए महाबतखा के नेतृत्व मे भेजी गई थी। इस समय अन्य सरदारो के साथ अनूपसिंह को भी भेजा गया था। पाँच वर्ष तक दक्षिण मे रहने, विभिन्न युद्धो मे वीरता दिखाने के ऐवज मे मुगल सम्राट की ओर से अनूपसिंह को 8 जुलाई 1675 के दिन 'महाराजा' का खिताब दिया गया था। तत्पश्चात् 1677 मे महाराजा की नियुक्ति औरङ्गाबाद के शासक के रूप मे की गई।

जिस समय अनूपसिंह आदूणी के विद्रोहियो का दमन करने मे लगा हुआ था उस समय उसे सूचना मिली कि खारबारा और रायमलवाली के भाटियो ने विद्रोह कर दिया है। अत उसे अपनी सेना का एक भाग बीकानेर उपद्रवकारियो का दमन करने के लिए भेजना पड़ा।

जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र अजीतसिंह को जोधपुर का राज्य प्रदान करने की प्रार्थना अनूपसिंह ने मुगल सम्राट से की थी। यद्यपि इस प्रार्थना का कोई नतीजा नही निकला। अन्यथा यह सिद्ध करती है कि सकट काल में राजपूत एकता के सूत्र मे बाधे जा सकते थे।

1680 मे बादशाह औरगजेब की आज्ञा से अनूपसिंह मोरोजीपन्त नामक मराठा सरदार का दमन करने के लिए रवाना हुआ। 1681 मे बीजापुर के अभियान में भी इसने सक्रिय रूप से भाग लिया। बीजापुर के पतन के पश्चात् 1686 मे अनूपसिंह को सक्खर का शासक नियुक्त कर दिया गया था। गोलकुण्डा के अभियान मे भी इसने महत्वपूर्ण भाग लिया था। तत्पश्चात् 1689 मे अमतियाजगढ आदूणी के शासक के रूप मे इसे नियुक्त किया गया।

8 मई 1698 के दिन महाराजा अनूपसिंह का देहान्त हुआ। उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि महाराजा अनूपसिंह अपने जमाने का एक सबल योद्धा था। लेकिन योद्धा होने के अलावा वह सस्कृत भाषा का एक अच्छा विद्वान और विद्वानो का आश्रयदाता था। विद्यानाथ, मणिराम दिक्षीत, भद्रराय, अनन्तभट्ट और श्वेताम्बर उदयचन्द्र उसके दरबार में आश्रय पाते थे। इन विद्वानो ने सस्कृत भाषा के कई महत्वपूर्ण ग्रन्थो की रचना की थी। कई ग्रन्थो का राजस्थानी भाषा मे अनुवाद भी कराया गया था।

इसके अतिरिक्त महाराजा अनूपसिंह एक अच्छा सगीतकार भी था। औरगजेब के शासन-काल मे जो सगीतकार मुगल-दरबार से निकाले गये थे—उनमें से अनेको ने बीकानेर जाकर शरण ली थी। इन सगीतकारो मे भावभट्ट का नाम विशेष

रूप से उल्लेखनीय है। इसने और महाराजा अनूपसिह ने सगीत के कई ग्रन्थ लिखे थे।

अनूपगढ का दुर्ग इसी के द्वारा बनवाया गया था। कहने का तात्पर्य यह है कि अनूपसिह एक विद्वान, विद्याप्रेमी, विद्वानो को आश्रय प्रदान करने वाला शासक था। औरगजेब के शासनकाल मे दक्षिण भारत के कई हिन्दू मन्दिरो की मूर्तियो को नष्ट होने से इन्होने बचाया था। इनके विद्याप्रेम की स्मृति बीकानेर का 'अनूप सस्कृत पुस्तकालय' है जहा सस्कृत भाषा के अनुपम हस्तलिखित ग्रथो का सग्रह आज भी मौजूद है।

स्पष्ट है कि बीकानेर के राठौड राजा कुशल योद्धा थे। उनमे से अधिकाश शासक स्वय विद्वान थे और विद्यानुरागी होने के नाते, विद्वानो के आश्रयदाता भी थे। रायसिह से अनूपसिह तक जिन शासको ने बीकानेर पर शासन किया था उनके तथा केन्द्रीय सत्ता के सम्बन्ध मधुर रहे थे। अत मुगल साम्राज्य के विभिन्न युद्धो मे, इन लोगो ने जो महत्वपूर्ण भाग लिए उसकी वजह से बीकानेर के राठौड राज्य के गौरव एव प्रतिष्ठा की वृद्धि हुई। बीकानेर राजघराने के प्रगतिशील विचारो के इतिहास की कोई भी विद्यार्थी सराहना किए बिना नही रह सकता। इन प्रगतिशील विचारो का ही परिणाम है कि बीकानेर जैसा 'मरुस्थल' उन धनाढ्य व्यक्तियो का निवास-स्थान बन गया जिनका व्यापार आज भारत के विभिन्न भागो मे चलता है।

BIBLIOGRAPHY

1 पाउलेट गजेटियर ऑफ बीकानेर स्टेट।
2 ओझा बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड।
3 कविराजा श्यामलदास वीर-विनोद।
4 डा० रघुवीरसिह जी पूर्व आधुनिक राजस्थान।

12

मारवाड़ का इतिहास 1562 से 1707 तक

(History of Marwar from 1562 to 1707 A D)

7 नवम्बर 1562 के दिन राव माल्देव की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु के पूर्व ही अकबर का जोधपुर राज्य के कुछ भाग पर अधिकार हो चुका था। 12 मार्च 1558 के दिन जैतारण को मुगल सेनाओ ने अपने अधिकार मे कर लिया था। राव माल्देव ने जैतारण के शासक की प्रार्थना पर उसकी कोई सहायता नही की थी। जैतारण की विजय से प्रोत्साहन पाकर अजमेर के मुगल सूबेदार मिर्जा शरफुद्दीन ने मेडता पर भी अधिकार कर लिया। मेडता के निर्वासित शासक जयमल ने अपने स्वर्गवासी पिता वीरम के समान माल्देव के विरुद्ध अकबर से सहायता चाही थी। अकबरी सेनाओ को मेडता पर आक्रमण करने का सीधा बहाना मिल गया। इस प्रकार माल्देव के हाथ से उसकी मृत्यु से पूर्व ही जैतारण और मेडता निकल गए थे।

> मुगलों का मारवाड मे प्रवेश माल्देव के जीवनकाल मे ही हो चुका था।

1562 के बाद अकबर की राजस्थान में सामान्य रूप से तथा मारवाड मे विशेष रूप से रुचि हो गई थी। अकबर की रुचि के निम्न कारण थे—

(1) "शेरशाह के द्वारा पराजित होने पर जब निर्वासित मुगल सम्राट हुमायू फारस के शाह के पास सहायतार्थ पहुँचा तब" जरवीरूल खवानीन का लेखक शेख-फरीद भाखरी लिखता है कि, " शाह ने हूमायू को सलाह दी थी कि 'यदि भारत मे मुगलो को अपना राज्य स्थायी रूप से स्थापित करना है तो राजपूत राजाओ को वश मे करना चाहिए।'' बैरमखा के परामर्श पर शाह की इस सलाह को ध्यान मे रखकर ही अकबर राजस्थान की ओर आकर्षित हुआ था।

(2) 1560 मे बैरमखा ने अकबर के विरुद्ध विद्रोह किया। विद्रोह-काल मे वह बीकानेर व नागौर गया था। अत अकबर का इन स्थानो के प्रति ध्यान आकर्षित होना स्वाभाविक था।

(3) मारवाड का राज्य गुजरात और मालवा के मार्ग मे पडता था। अत यदि अकबर को गुजरात और मालवा के समृद्धिशाली प्रदेशो को अपने अधिकार मे बनाये रखना था तो उसका मारवाड पर आधिपत्य स्थापित करना जरूरी था।

(4) अकबर को अजमेर के शेख सलीम चिश्ती के प्रति अटूट भक्ति थी। अत वह लगभग प्रतिवर्ष शेख की दरगाह की जियारत करने के लिए अजमेर आया

करता था। अत वह अजमेर तथा उसके आस-पास के प्रदेशो को अपने अधिकार मे रखने के लिए प्रोत्साहित हो गया।

(5) अपने शासन-काल के प्रारम्भिक वर्षों मे अकबर साम्राज्यवादी भावना से प्रेरित था। अत· विभिन्न राजपूत राज्यो को अपने अधिकार मे करके अपने राज्य का विस्तार करने की लालसा अकबर के मस्तिष्क मे थी जबकि उसने मारवाड को अधिकार मे करने की योजना बनाई थी।

सौभाग्य से मालदेव की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रो (उदयसिह, राम तथा चन्द्रसेन) के बीच उत्तराधिकार के लिए जो सघर्ष हुआ उससे अकबर के लिए

राव चन्द्रसेन

मारवाड की विजय सुलभ हो गई। यद्यपि मालदेव ने अपने जीवनकाल मे ही राम और उदयसिह को उत्तराधिकार से वचित करके चन्द्रसेन को अपना उत्तराधिकारी बना दिया था लेकिन फिर भी इन दोनो ने क्रमश सोजत और गागाणी मे विद्रोह का झण्डा उठाकर तथा उदयसिह ने लोहावटी के युद्ध मे (दिसम्बर 1562) चन्द्रसेन के साथ सशस्त्र युद्ध लडकर मारवाड को अशक्त बना दिया। केवल इतने पर ही यह दोनो भाई सतुष्ट नही हुए बल्कि राम ने नागौर के मुगल हाकिम हुसैन कुलीबेग से चन्द्रसेन के विरुद्ध सहायता चाही। हुसेन कुलीबेग ने जोधपुर पर आक्रमण भी किया (1563-64)। चन्द्रसेन को जोधपुर का किला खाली करके भाद्राजूण चला जाना पडा। तत्पश्चात् मारवाड का केवल दक्षिणी भाग राव मालदेव के उत्तराधिकारी चन्द्रसेन के पास रह गया था।
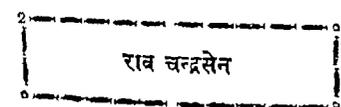
इसी प्रकार मालदेव के उत्तराधिकारियो के बीच ईर्ष्या और वैमनस्यता के वातावरण ने अकबर की मारवाड-विजय को सुगम बना दिया था।

ऊपर लिखा जा चुका है कि 1562 के बाद अकबर की राजस्थान मे अभि-रुचि दिन प्रतिदिन बढती जा रही थी। 1570 मे तो वह स्वय नागौर तक आ गया था। उस समय राजस्थान के लगभग सभी राजपूत राजा उसके दरबार मे उपस्थित हुए थे। इसी समय जोधपुर का शासक चन्द्रसेन भी उसके दरबार मे पहुचा। उसका बडा भाई उदयसिह पहले ही अकबर की सेवा ग्रहण कर चुका था। यद्यपि अकबर ने चन्द्रसेन का राज्योचित सत्कार भी किया था, लेकिन वह अधिक समय तक अकबर के दरबार मे नही ठहर सका। अत अपने पुत्र रायसिह को नागौर छोड कर चला गया। चन्द्रसेन 1570 मे अकबर से अपनी राजधानी जोधपुर प्राप्त करने के उद्देश्य से नागौर गया था लेकिन चन्द्रसेन को अपने उद्देश्य मे सफलता नही मिली। चन्द्रसेन के नागौर मे चले जाने के पश्चात् अकबर ने समावली का प्रदेश उदयसिह को जागीर के रूप मे प्रदान कर दिया। जोधपुर का शासन बीकानेर के शासक रायसिह को सौप दिया गया। इस प्रकार जोधपुर मे फूट डालने की कोशिश की गई।

चन्द्रसेन का पीछा करने के लिए मुगल सेनायें भेजी गई। इन सेनाओ ने भाद्राजूण और सिवाना के किलो पर अधिकार कर लिया। अत चन्द्रसेन को अपना

खोया हुआ राज्य पुन प्राप्त करने के लिए अजमेर व जोधपुर के आस-पास के प्रदेशो मे छापे मारने पडे । अकबर ने चन्द्रसेन का दमन करने के लिए शिमालखां, राजा रायसिह और जयमल मेडितयां के नेतृत्व मे एक शक्तिशाली सेना रवाना की । अत चन्द्रसेन को काणूजा के पहाडो मे जाकर शरण लनी पडी । चन्द्रसेन का पीछा करने के प्रयत्न मे कतिपय मुगल सेनानायको को अपनी जान से हाथ धोने पडे । अत मीर बख्शी शाहबाजखा के नेतृत्व मे 1576–77 में एक शक्तिशाली सेना रवाना की गई । इस सेना ने सिवाना तथा दूनाडा के किले चन्द्रसेन के हाथ से छीन लिए । चन्द्रसेन homeland wanderer बन गया और पीपलोद के पहाडो मे जाकर रहने लगा । इस समय जैसलमेर के शासक रावल हरराय ने पोकरण का प्रदेश चन्द्रसेन के सेनानायक पचोली आनद से छीन लिया । अधिक सकट मे चन्द्रसेन सिरोही की ओर गया और वहाँ से डूगरपुर गया लेकिन मुगल सेनाए उसका बराबर पीछा कर रही थी । अत चन्द्रसेन पुन अजमेर की ओर रवाना हुआ । अजमेर के निकट सारण के पहाडो मे जनवरी 1581 मे उसका देहान्त हो गया ।

ऐसा कहा जाता है कि मेवाड के राणा कीका (प्रताप) के समान मारवाड के राव चन्द्रसेन ने भी अकबर के सम्मुख अपना मस्तक नहीं नवाया । चन्द्रसेन और प्रताप की तुलना युक्तिसगत नहीं है क्योकि चन्द्रसेन तो 1570 मे अकबर के दरबार मे उपस्थित हो गया था जब कि राणा प्रताप राजा भगवन्तदास तथा कुवर मानसिह के प्रयत्नो के बावजूद भी अकबर के पास जाने को तैयार नही हुआ था । इसके अलावा चन्द्रसेन अपने जीवनकाल मे जोधपुर प्राप्त करने मे सफल नहीं हो सका था । सफल तो प्रताप भी नहीं हुआ था लेकिन प्रताप ने मेवाड की नई राजधानी चावन्ड मे कायम कर ली थी जबकि चन्द्रसेन की एक Homeless wanderer के रूप मे सारण मे मृत्यु हुई । अत चन्द्रसेन व प्रताप की एक दूसरे से तुलना करना तो कठिन है, लेकिन यह अवश्य सत्य है कि चन्द्रसेन राजस्थान के उन शक्तिशाली राजाओ मे एक था जिन्होंने अकबर को लोहे के चने चबा दिये थे ।

चन्द्रसेन की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियो (मोटा राजा उदयसिह गजसिह तथा सूरसिह) के शासनकाल मे मारवाड के मुगल राजघराने के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रहे । इन घनिष्ट सम्बन्धो का प्रारम्भ 1583 मे हुआ था जबकि अकबर ने जोधपुर के राज्य का टीका चन्द्रसेन के पुत्र रायसिह को नही देकर उसके पिता के बडे भाई मोटा राजा उदयसिह को दिया । मारवाड राज्य का टीका उदयसिह को प्रदान करने के साथ ही साथ अकबर ने जोधपुर भी उदयसिह को लौटा दिया था जो पिछले 20 वर्षो से मुगलो के अधिकार मे था । उदयसिह के राज्याभिषेक के साथ ही मारवाड के इतिहास मे निम्न लिखित महत्वपूर्ण परिवर्तन आए —

मोटा राजा उदयसिह

(1) चूकि चन्द्रसेन की मृत्यु के पश्चात् मारवाड के सरदार उदयसिह को

गद्दी पर बैठाने के लिए तैयार नही थे अत उसे इन सरदारो के विरुद्ध अकबर की सहायता लेनी पडी । स्वाभाविक रूप से उदयसिह के बाद मारवाड की गद्दी पर जितने भी शासक बैठे उन सबको मुगल सम्राट के द्वारा टीका दिया गया । टीका के साथ ही पैतृक राज्य 'वतन जागीर' के रूप मे प्रदान किया जाता था । प्रत्येक नए राजा को टीका देते समय पूरा राज्य नही दिया जाता था । अत हरएक नए राजा को अपनी सैनिक योग्यता सिद्ध करके अतिरिक्त परगने प्राप्त करने पडे ।

(2) उदयसिह और उसके उत्तराधिकारी मुगल सेना मे मन्सबदार थे । अत उन लोगो को Auxiliary Commondars के रूप मे विभिन्न अभियानो मे भाग लेना पडता था । परिणामत वे लोग Absentee ruler बन गए ।

(3) मुगल मन्सबदार के रूप मे मारवाड के राजाओ ने जो कार्य किये उनके परिणामस्वरूप मारवाड के प्रशासन तथा सस्कृति पर मुगलो की छाप पडे बगैर नही रह सकी । इसका स्पष्ट परिणाम यह निकला कि 1583 के बाद मारवाड के सरदारो की शक्ति कम हो गई । वे लोग अपने राजा को बडे भाई के रूप मे नही बल्कि राजा के रूप मे इज्जत करने लगे ।

अकबर ने उदयसिह को राज्याभिषेक के तुरन्त बाद गुजरात-अभियान पर भेजा । तत्पश्चात् वह सिरोही के शासक का दमन करने के लिए भेजा गया ।

उदयसिह ने मुगल राजघराने के साथ घनिष्ट सम्बन्ध कायम करने के अभिप्राय से अपनी पुत्री मानीबाई[1] की शादी शाहजादे सलीम के साथ 1586–87 मे सम्पन्न की । यही मानीबाई शाहीहरम मे पहुँचने के बाद जोधाबाई तथा 'जगतगुसाई' के नाम से विख्यात हुई । खुर्रम (शाहजहा) इसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । यद्यपि मानीबाई ने जहाँगीर तथा शाहजहाँ की नीति को प्रभावित नही किया लेकिन राजनैतिक दृष्टि से इस विवाह का बडा महत्व है ।[2] अतएव कर्नल टॉड का यह कहना सत्य नही है कि "The name of Udai appears one of evil portent in the annals of Rajasthan" यदि मोटा राजा उदयसिह ने जोधाबाई की शादी करके मुगल राजघराने के साथ घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित नही किये होते तो कदाचित मारवाड की उन्नति और विकास नही होता ।

इसी विवाह के बाद उदयसिह की नियुक्ति 1588 मे सिरोही के शासक सुरताण का दमन करने के लिए की गई । जुलाई 1592 मे उसे लाहौर का शासक

---

1 मानीबाई की शादी अकबर के साथ नही हुई और न अकबर ने फतेहपुर-सीकरी मे तथाकथित जोधाबाई का महल इसके लिए बनवाया था ।

See present writer's paper–"Princess Jodhabai" published in the Journal of Indian History University of Kerala, (December 1964)

2 See Marwar and Mughal Emperors P P 5?–61

नियुक्त किया गया और इसी वर्ष उसे दक्षिण मे नियुक्त किया गया। जुलाई 1595 मे मोटा राजा का लाहौर मे देहान्त हो गया था। अपनी मृत्यु के समय मोटा राजा उदयसिंह 1500 का मन्सबदार था। उसके अधिकार मे जोधपुर, सोजत, सिवाना, फलोदी, सातलमेर एव जैतारण के परगने थे, जबकि 1583 मे उसे केवल सोजत का परगना टीका के साथ प्रदान किया गया था। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी सूरसिंह के लिए एक सुरक्षित राजसिंहासन 1595 मे था। भारत का मुगल सम्राट् मारवाड के राजा के प्रति शत्रुता का दृष्टिकोण नही रखता था। अतएव उदयसिंह की राजवशीय विवाह की नीति की केवल Sentimental grounds पर ही आलोचना की जा सकती है। वैसे उसकी नीति मारवाड के लिए सर्वथा लाभप्रद सिद्ध हुई।

मोटाराजा उदयसिंह मारवाड का पहला शासक था जिसे विध्याचल पर्वत के पार दक्षिण मे भेजा गया था। तत्पश्चात् यह क्रम जारी रहा।

सवाई राजा सूरसिंह उर्फ सूरजसिंह राठौड 1595-1619 A D

अकबर ने उदयसिंह की मृत्यु के बाद उसके छोटे पुत्र सूरसिंह को मारवाड का टीका दिया तथा 16 परगने (9 परगने मारवाड के, 4 परगने गुजरात के, एक परगना दक्षिण का तथा एक मेवाड का) व 2000 जात तथा सवार का मन्सब प्रदान किया।

राज्याभिषेक के पश्चात् पहले तो सूरसिंह की नियुक्ति गुजरात मे की गई और बाद मे 1599 मे शाहजादा दानियाल के नेतृत्व मे दक्षिण मे की गई। दक्षिण मे रहते हुए अहमदनगर की विजय मे सूरसिंह ने सक्रिय रूप से सहयोग प्रदान किया। मलिक अम्बर के विरुद्ध सूरसिंह ने अत्याधिक वीरता दिखलाई थी, अत मुगल सम्राट् अकबर ने उसे उचित सत्कार प्रदान किया। दक्षिण से लौटने पर 1603-4 मे अकबर ने जैतारण का परगना सूरसिंह को उसकी प्रार्थना पर प्रदान किया था। नौ वर्ष तक निरतर युद्धो मे वीरता दिखलाने के कारण सूरसिंह का व्यक्तिगत गौरव एव प्रतिष्ठा ही नही बढी, अपितु मारवाड राज्य की ख्याति भी बढी।

अत अकबर के पुत्र और उत्तराधिकारी जहागीर ने सूरसिंह की नियुक्ति मेवाड अभियान पर भेजी जाने वाली सेना मे की। मेवाड की मुगलो के साथ 1615 मे जो सधि हुई उस सधि के समय सूरसिंह मौजूद था। मुगल सेना के सेनानायक खुर्रम ने मेवाड अभियान मे सूरसिंह के स्थानीय भौगोलिक ज्ञान का पूरा पूरा लाभ उठाया था। अत जहागीर ने प्रसन्न होकर अपने राज्यकाल के दसवें वर्ष मे सूरसिंह को 5000 जात तथा 3000 सवार का मन्सवदार नियुक्त किया। यह एक उच्च मन्सब था जो उस काल मे एक हिन्दू को प्रदान किया जाता था। खानेजहा लोदी के साथ दक्षिण मे विद्रोहियो का दमन करने के ऐवज मे सूरसिंह के मन्सब मे 300 सवारो की वृद्धि की गई थी। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी (मनोनीत) गजसिंह को जालौर जागीर मे प्रदान किया गया था। गजसिंह ने जालौर पर अधिकार करने के लिए जो सशस्त्र युद्ध लडा, उसमे अपूर्व वीरता का परिचय दिया था।

दक्षिण मे रहते हुए महीकर नामक स्थान पर (बुरहानपुर के निकट) सूरसिंह का स्वर्गवास हो गया। जहागीर ने अपनी आत्मकथा मे सूरसिंह के लिए लिखा है—"यह उस राव मालदेव का पोता था, जो हिन्दुस्तान के प्रतिष्ठित जमीदारों मे से था। राजा की बराबरी करने वाला जमीदार वही था। उसने एक लडाई मे राजा पर भी विजय पाई थी। राजा सूरसिंह ने मेरे पिता अकबर का और मेरा कृपापात्र होने से बडे दर्जे और मन्सब को प्राप्त किया था। उसका देश और राज्य उसके बाप-दादा के देश और राज्य से बढ गया।"

सूरसिंह वास्तव में Absentee ruler हो गया था क्योकि उसे अधिकाश समय अपनी जन्मभूमि से बाहर रहना पडा था। अत उसकी अनुपस्थिति मे भाटी गोविन्ददास ने दीवान के रूप में राज्य के प्रशासन को चलाया। भाटी गोविन्ददास का प्रशासन बीसवी शताब्द तक मारवाड मे चलता रहा। यह प्रशासन मुगल प्रशासन के ढाँचे (Pattern) पर था।

स्वर्गीय राजा की मृत्यु के समय गजसिंह जोधपुर मे था। अत जोधपुर का प्रबन्ध राजसिंह कूपावत को सौंपकर गजसिंह तुरन्त महीकर की ओर रवाना हो गया।

राजा गजसिंह 1619-1638

जहागीर ने दराबखा के द्वारा टीका भिजवाया। टीका के साथ जोधपुर के सात परगने तथा 3000 जात 2000 सवार का मन्सब भी गजसिंह को प्रदान किया गया था।

दक्षिण में रहकर गजसिंह और दराबखाँ (अब्दुलरहीम खानखाना का पुत्र) ने अहमदनगर के विद्रोही सरदारो का दमन किया। दराबखा के बाद जब शाहजादा खुर्रम ने मलिक अम्बर के साथ सधि कर ली तो गजसिंह जोधपुर लौट आया। दक्षिण मे वीरता का प्रदर्शन करने के ऐवज मे 4000 जात व 3000 सवार का मन्सब व जालोर तथा साचोर के परगने गजसिंह को प्रदान किए गए।

शाहजादे खुर्रम का विद्रोह दमन करने के लिए जो सेना जहागीर के द्वारा भेजी गई थी उस सेना के साथ गजसिंह को भेजा गया था (मई 1623)। इसी समय फलोदी की जागीर तथा 5000 जात व 4000 सवार का मन्सब भी गजसिंह को प्रदान किया गया था। 16 अक्टूबर 1624 के दिन हाजीपुर के युद्ध मे शाही सेना ने शाहजादा खुर्रम को पराजित किया। इस युद्ध मे मेवाड का भीम सीसोदिया खुर्रम की सेना मे था। इस युद्ध के पश्चात् 5000 जात व 5000 सवार का मन्सब गजसिंह को प्रदान किया गया था। तत्पश्चात् गजसिंह की नियुक्ति दक्षिण मे बुरहानपुर की रक्षा के लिए की गई थी।

जहागीर के पुत्र और उत्तराधिकारी शाहजहा ने गजसिंह की नियुक्ति आगरा के निकट भोमियो के उत्पात दबाने के लिए की। तदुपरान्त इसकी नियुक्ति दक्षिण मे खानेजहा लोदी का विद्रोह दमन करने के लिए की गई। दक्षिण में रहकर गजसिंह ने जिस वीरता का परिचय दिया उसके ऐवज में अक्तूबर 1630 में गजसिंह को

महाराजा की उपाधि तथा मारोठ का परगना प्रदान किया गया । अगले वर्ष इसे आसफखा के साथ बीजापुर अभियान मे नियुक्त किया गया था । मई 1630 के दिन गजसिंह का आगरा मे देहान्त हुआ था । उस वक्त तक दक्षिण मे महाराजा गजसिंह काफी अधिक समय तक रह चुके थे ।

1538 से 1638 के बीच का समय मारवाड के इतिहास मे शान्ति और समृद्धि का काल था क्योकि यहा के शासको के मुगल सम्राटो के साथ मधुर सम्बन्ध रहे थे अत वाह्य आक्रमण नही हुआ । सूरसिंह और गजसिंह ने दक्षिण के युद्धो मे अनवरत रूप से भाग लिया अत बीजापुर व गोलकुण्डा की सम्पत्ति इनके साथ मारवाड के अनुपजाऊ प्रदेश मे आई । यहा के राजाओ का गौरव एव ख्याति बढी ।[1] चू कि एक शताब्दी तक मारवाड के मुगलो के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रहे थे अत मारवाड के प्रशासन पर मुगल प्रशासन का प्रभाव पडा । मोटा राजा उदयसिंह के बाद से मारवाड के राजाओ ने अपने सरदारो से पेशकस वसूल करना शुरू कर दिया था । सूरसिंह के शासन काल मे सरदारो को विभिन्न श्रेणियो मे विभक्त कर दिया गया । सूरसिंह के शासनकाल मे ही मारवाड के कर्मचारियो के designation मुगल कर्मचारियो के अनुकूल किये गये । नये कर्मचारी दीवान, बक्शी, हाकिम, कारकून, दफ्तरी, दरोगा, फोतेदार और वाकया नवीस कह कर पुकारे जाने लगे । इस प्रकार उन सरदारो को नियन्त्रण मे किया गया जो राव चन्द्रसेन के शासन काल तक अपने आपको बराबर का समझते थे । अत अब मारवाड मे उत्तराधिकार के लिए सघर्ष नही होने लगे । जिन प्रदेशो को चूंडा और मालदेव अपनी तलवार के वल पर नही जीत सके थे वही परगने सूरसिंह और उसके उत्तराधिकारी के शासनकाल मे सुगमता से आगए । इस प्रकार एक ओर तो मारवाड का विकास हुआ और दूसरी ओर मुगल सम्राट के बढते हुए प्रभाव के कारण मारवाड के राजा वास्तविक अर्थ मे जमीदार बन गये । वह अपने पैतृक राज्य को भी उस वक्त ही प्राप्त कर सकता था जब तक उसको मुगल सम्राट के द्वारा टीका प्रदान नही कर दिया जाता था । मुगल सेवा मे मन्सबदार होने के कारण इन राजाओ को अपने राज्य से बाहर रहना पडता था और जब कभी वे अपने राज्य मे लौटते थे तो मुगल सम्राट् से छुट्टी लेनी पडती थी । मुगल दरबार मे रहने के कारण इन राजाओ को मुगल दरबार का etiquette सीखना पडता था । इन राजाओ की वेश-भूषा, रहन-सहन तथा खान-पीन पर भी मुगल सभ्यता का पर्याप्त प्रभाव पडा ।

अपने पिता गजसिंह की मृत्यु के समय जसवन्तसिंह अपनी ससुराल बूंदी मे

1 "तस्यात्मज श्री गजसिंहनामा-भ्रातो घरणासा विदितैक कीर्ति ।
लग्नमहारा पद सुनाम्ना-व्याजज्जय राजकलै दलिष्ठम्",
—अजित चरित्र, पृष्ठ-37 ।

था । इसका बडा भाई अमरसिंह राठौड आगरा मे मौजूद था । यद्यपि गजसिंह ने अपने जीवन-काल मे ही जसवन्तसिंह को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया था और मुगल सम्राट् शाहजहा ने स्वर्गीय महाराजा की इच्छानुसार टीका भी जसवन्तसिंह को ही दिया था लेकिन फिर भी जसवन्तसिंह को भय था कि कही उसे राजगद्दी से वंचित नही कर दिया जाय । अत वह बूंदी से सीधा आगरा गया और वहा से 25 मई 1638 के दिन टीका, राजा का खिताब तथा 4000 जात व सवार का मन्सब प्राप्त किया । राज्याभिषेक के समय जसवन्तसिंह की आयु 12 वर्ष के लगभग थी, अतएव शाहजहा ने आसोप ठाकुर राजसिंह कूपावत को जोधपुर का दीवान नियुक्त किया । जोधपुर राज्य के इतिहास मे यह पहला मौका था जब दीवान की नियुक्ति मुगल सम्राट् के द्वारा की गई थी ।

महाराजा जसवन्तसिंह I
1638-1678

टीका के साथ तो जसवन्तसिंह को मारवाड के केवल पाच परगने ही दिए गए थे लेकिन जब जसवन्तसिंह शाहजहा के साथ पेशावर जा रहा था तो उस समय 13 जनवरी 1639 के दिन जैतारण का परगना तथा 5000 जात व सवार का मन्सब जसवन्तसिंह को इख्तियारपुर के स्थान पर प्रदान किया गया ।

फरवरी 1640 मे जसवन्तसिंह जोधपुर पहुँचा और वहा राज्याभिषेक सस्कार सम्पन्न किया । इसी समय राजसिंह कूपावत की मृत्यु हो गई और उसके स्थान पर शाहजहा ने महेशदास राठौड को जोधपुर का दीवान नियुक्त किया—तत्पश्चात् जसवन्तसिंह को शाहजादा दारा के साथ कन्धार अभियान पर रवाना किया गया । लेकिन फारस के शाह सफी की मृत्यु के कारण सेना को वापस बुला लिया गया और जसवन्तसिंह को जोधपुर लौट जाने की आज्ञा मिल गई । जोधपुर पहुंचकर जसवन्तसिंह ने महेशदास राठौड के स्थान पर मेडतिया गोपालदास को अपना दीवान नियुक्त किया । महेशदास ने विद्रोह भी किया, लेकिन उसे तुरन्त दबा दिया गया ।

1645 मे जसवन्तसिंह को आगरे का सूबेदार नियुक्त किया गया था । दो वर्ष बाद हिण्डौन का परगना जसवन्तसिंह को प्रदान किया गया जो उसके अधिकार मे करीब 9 वर्ष तक रहा ।

शाहजादा औरगजेब के साथ इसे दुबारा कधार भेजा गया (जनवरी 1649 मे) लेकिन यह काबुल से ही वापस आगया था । अक्तूबर 1650 मे मालसमर का परगना भी जैसलमेर के शासक रावल मनोहरदास की मृत्यु के बाद जसवन्तसिंह को प्रदान किया गया । इसके ऐवज मे मुगल सम्राट् ने सबलसिंह को जैसलमेर की गद्दी दिलवाने का आदेश जसवन्तसिंह को भेजा । अपहरणकर्त्ता रामचन्द्र को खगेटा के युद्ध मे पराजित करके (5 अक्टूबर 1650 मे) जसवन्तसिंह ने सबलसिंह को जैसलमेर की गद्दी दिलवाई ।

तत्पश्चात् जनवरी 1654 मे जसवन्तसिंह को 'महाराजा' का खिताब व

6000 जात व सवार का मन्सब प्रदान किया गया जिनमे से 5000 असपासेह असपा सवार थे ।

1656 मे जालोर का परगना जसवन्तसिंह को प्रदान किया गया। इस प्रकार 1657 मे जब मुगल सम्राट् शाहजहा के चारो पुत्रो के बीच उत्तराधिकार का सघर्ष छिडा उस वक्त तक महाराजा जसवन्तसिंह हिन्दुस्तान के राजाओं मे श्रेष्ठ और फौज, सामान तथा रौब-दाब मे प्रथम समझा जाता था जिसे शाहजहा सही रूप मे मुगल साम्राज्य का एक स्तम्भ समझता था[1] ।

अत. विद्रोही शाहजादो (औरगजेब व मुराद) के विरुद्ध सेना देकर जसवन्तसिंह को आगरा से 17 दिसम्बर 1657 के दिन रवाना किया गया। महाराजा 6 फरवरी 1658 के दिन उज्जैन पहुंचा। उज्जैन पहुंचने पर ज्ञात हुआ कि शाहजादा मुराद अपनी विलायत गुजरात से रवाना होने की तैयारी कर रहा है। 21 मार्च 1658 के दिन मुराद वास्तव मे खाचरोद पहुँच गया । अत जसवन्तसिंह उसका सामना करने के लिए खाचरोद जा पहुँचा। खाचरोद मे उसे मालूम पडा कि औरगजेब दक्षिण से रवाना हो चुका है और उसने नर्मदा नदी को भी पार कर लिया है अत जसवन्तसिंह वापस उज्जैन आया । उसके उज्जैन पहुंचने से पहले ही मुराद और औरगजेब की सेनाए देपालपुर के स्थान पर सयुक्त हो चुकी थी (14 अप्रेल 1658) । औरगजेब ने देपालपुर के पडाव से कविराय नामक दूत महाराजा जसवतसिंह के पास भेजा और उससे कहलाया कि वह तो केवल बादशाह सलामत की तबियत का हाल पूछने[2] आगरा जा रहा है, अतएव उसे उसका रास्ता नही रोकना चाहिए। जसवन्तसिंह ने दूत द्वारा उपर्युक्त उत्तर भिजवा दिया कि उसे शाहजादो का रास्ता रोकने का आदेश सम्राट् की ओर से दिया गया है और यदि वास्तव मे शाहजादे बादशाह सलामत की तन्दुरुस्ती मालूम करने आगरा जारहे हैं तो इतनी वडी सेनाए लेकर जाने की क्या जरूरत है? इस उत्तर को प्राप्त करके औरगजेब के पास जसवन्तसिंह की सेना का मुकावला करने के अतिरिक्त और कोई चारा नही बचा। दोनो शाहजादो की सेनाओ ने धरमत के स्थान पर पडाव डाला । इसी स्थान पर 16 अप्रेल 1658 के दिन धरमत का प्रसिद्ध युद्ध लडा गया जिसमे औरगजेब और मुराद की विजय तथा जसवन्तसिंह की पराजय हुई। जसवन्तसिंह की पराजय के निम्नलिखित कारण थे :—

(1) शाही सेना केवल नाम मात्र के लिए उसके सेनापतित्व मे भेजी गई थी ।

---

1 "रूक्ने रकीने दौलत व सितूने कवीमे सल्तनत" —आलमगीरनामा, मुहम्मद काजिम कृत पृष्ठ 32 ।

2 सितम्बर 1657 मे शाहजहा दिल्ली मे बहुत सख्त बीमार पडा । साम्राज्य मे खबर फैल गई कि शाहजहा की मृत्यु हो गई है और उसके बडे लडके दारा ने उसकी मृत्यु की खबर जानबूझ कर छिपा रखी है ।

सेना के मुस्लिम सैनिक महाराजा की अपेक्षा सहायक सेनानायक कासिमखाँ के प्रति अधिक भक्ति रखते थे। इन लोगो ने साजिश करके तोपखाने का कुछ भाग 16 अप्रेल की रात को रेत मे दबा दिया था। इसी प्रकार विभिन्न राजपूत मन्सबदारो के सैनिक महाराजा जसवन्तसिंह की आज्ञा मानने की अपेक्षा अपने-अपने सरदारो की आज्ञा की बाट जोहते थे।

(ii) राजपूत Artillery के युद्ध मे इतने अधिक पारगत नही थे जितनी औरगजेब एव मुराद की सेनाएँ पारगत थी। अत जब विपक्षी सेना ने मुर्शिद कुली खा के नेतृत्व मे तोपें दागना शुरू किया तो राजपूत भाग खडे हुए। शाही सेना मे औरगजेब की सेना के समान फ्रेंच और इगलिश तोपची भी नही थे।

उज्जैन से लौटने पर जसवन्तसिंह ने युद्ध के लिए जो मैदान चुना वह सर्वथा उपयुक्त नही था। जमीन समतल बनाने के लिए बांध की दीवार तरासने के चक्कर में जसवन्तसिंह के सैनिकों ने 200 गज की भूमि को दलदली बना दिया था।

यहा पर स्पष्ट करना आवश्यक है कि धरमत के युद्ध-क्षेत्र मे महाराजा जसवन्तसिंह स्वय नही भागा था। खडिया जग्गा द्वारा रचित "वचनिका राठौड रतनसिंहरी" को पढने से स्पष्ट जाहिर है कि जब राजपूत एक के बाद एक धराशाही होने लगे तो दुर्गादास राठौड के पिता आसानीबाभात ने अपने साथियो को सम्बोधित करके कहा कि राठौड वीर कुल शिरोमणि महाराजा जसवन्तसिंह का बचाना अत्यन्त आवश्यक है। अतएव कतिपय सरदारो ने महाराजा की घोडी महबूबजहाँ की लगाम पकडकर उन्हे युद्धस्थल से बाहर निकाला था।[1] यद्यपि जसवन्तसिंह के हटाए जाने के बाद भी शाही सेना रतलाम के राजा रतनसिंह राठौड के नेतृत्व मे लडती रही लेकिन औरंगजेब की विजय तथा शाहीसेना की पराजय अवश्यम्भावी थी। अत जसवन्तसिंह के चले जाने के बाद युद्ध अधिक समय तक नही चला।

युद्ध के बाद महाराजा जसवन्तसिंह 29 अप्रेल 1658 के दिन जोधपुर पहुँचा। समकालीन विदेशी यात्री बर्नीयर लिखता है कि जोधपुर पहुँचने पर महाराजा की रानी ने युद्ध-स्थल से भागे हुए पति का स्वागत करने मे इन्कार कर दिया। बर्नीयर के वर्णन का समर्थन जहानआरा की आत्मकथा तथा खफीखा की 'मुन्तखबाव-उल-लुबाब' से होता है। केवल अन्तर इतना है कि बर्नीयर ने रानी को उदयपुर के महाराणा की पुत्री लिखा है जबकि रानी मेवाड के महाराणा राजसिंह की साली थी, पुत्री नही।

जसवन्तसिंह जोधपुर मे अधिक दिन नही ठहरा। जोधपुर का प्रबन्ध सुन्दरदास को सौंपकर वह स्वय अजमेर पहुँच गया। अजमेर मे ही उसे सामूगढ के युद्ध मे औरगजेब और मुराद की सेनाओ के द्वारा दारा को पराजित किए जाने का समाचार

---

1 See present writer's Theses "Marwar and Mughal Emperors" Page 95-97

मिला था । यही पर उसे औरगजेब का फरमान भी मिला था जिसमे उसने महाराजा को आदेश दिया था कि वह अजमेर से जोधपुर लौट जाए । लेकिन जसवन्तसिंह स्वय सम्राट से मिलने के लिए सतलज नदी तक गया और वहाँ भेंट करके दिल्ली लौट आया ।

दिल्ली से जसवन्तसिंह औरगजेब के साथ शाह शुजा की सेनाओ का मुकाबला करने गया । इटावा (उत्तर-प्रदेश) के निकट खजुवा के युद्ध से पूर्व ही जसवन्तसिंह औरगजेब की सेना मे गडबडी मचाकर वापस लौट आया ।

खजुआ के युद्ध-क्षेत्र से लौटने के बाद महाराजा जोधपुर लौट गया और उसने एक बडी सेना एकत्रित की । इस समय औरगजेब को यह सदेह था कि जसवन्तसिंह दारा के साथ मिल गया है अत उसने महाराजा को दारा से जुदा रखने के लिए मिर्जा राजा जयसिंह को आदेश दिया कि वह जसवन्तसिंह के पास पत्र लिखकर दारा का साथ न देने का परामर्श दे और दूसरी ओर उसने फरवरी 1659 मे जोधपुर का राज्य जसवन्तसिंह के भतीजे रायसिंह को देने का वायदा करके अमीनखाँ और रायसिंह के नेतृत्व मे एक सेना जोधपुर की ओर रवाना की । औरगजेब अपने मनसूबो मे सफल हुआ क्योकि देवराय के युद्ध मे महाराजा ने दारा की कोई सहायता नही की । जसवन्तसिंह ने दारा को सहायता का निमन्त्रण भेज कर और फिर केवल मिर्जा राजा जयसिंह का पत्र प्राप्त होने पर उसकी सहायता नही करके अपने पूर्वज माल्देव की कहानी को दुहरा दिया था । मिर्जा राजा जयसिंह ने जसवन्तसिंह को दारा की सहायता नही करने के लिए क्यो लिखा ? एक आधुनिक लेखक का तो कहना है कि मिर्जा राजा ने दारा को धोखा नही दिया था ।[1] फिर जयसिंह का पत्र लिखने की क्या आवश्यकता थी और जसवन्तसिंह ने राजपूती परम्परा को त्याग कर दारा की सैनिक सहायता क्यो नही की ? यह रहस्यास्पद है ।

दारा की सहायता नही करने के ऐवज मे महाराजा जसवन्तसिंह का मुगल साम्राज्य मे गौरव एव प्रतिष्ठा पुन स्थापित हो गई । औरङ्गजेब ने 1659 के अन्त में महाराजा को गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया । तीन वर्ष तक जसवन्तसिंह गुजरात का सूबेदार रहा । 1662 मे इसे शाइस्ता खा के साथ दक्षिण मे शिवाजी का दमन करने के लिए नियुक्त किया गया ।

> जसवन्तसिंह ने दारा की सहायता नहीं की

50,000 सैनिको के साथ जिनमे राव भाऊसिंह, राव रामसिंह सीसोदिया, आसफ खा, नामदार खाँ, मुखलिसखाँ, कुतुबुद्दीनखाँ तथा देवीसिंह जैसे प्रतिष्ठा प्राप्त

---

1 देखिये "Was Jaisingh treacherous to Dara ?" by Dr C B Tripathi published in Proceedings of Indian History Congress

मन्सबदार थे, जसवन्तसिंह 1662 के अन्त मे दक्षिण पहुच गया।[1] 15 अप्रेल 1663 की रात मे शिवाजी ने शाइस्तखा के खेमे पर छापा मारा।[2] समकालीन विदेशी यात्री बर्नीयर लिखता है कि "ऐसा सन्देह किया जाता है कि जसवन्तसिह और शिवाजी के मध्य गुप्त समझौता हो चुका था। इस गुप्त समझौते के बाद ही शिवाजी ने शाइस्ताखा पर छापा मारा तथा सूरत पर आक्रमण किया।" 'नक्शा–ए–दिलकश' का लेखक भीमसेन बुरहानपुरी इस वक्त दक्षिण मे मौजूद था। उसका वर्णन भी यही बतलाता है कि जसवन्तसिह और शिवाजी के बीच गुप्त समझौता हो चुका था लेकिन आलमगीरनामा और फतूहाते आलमगीरी मे महाराजा के विरुद्ध ऐसा आरोप नही लगाया गया है। आलमगीरनामा तो सरकारी कागजात के आधार पर लिखा गया था और इसे स्वय औरङ्गजेब ने देखा भी था, उस ग्रन्थ मे इस घटना का वर्णन तक नही है। इससे यही निष्कर्ष निकल सकता है कि कदाचित् औरङ्गजेब महाराजा जसवन्तसिह पर शिवाजी के साथ मिल जाने का सदेह नही करता था। 5 अप्रेल की घटना के बाद औरगजेब ने शाइस्ताखाँ को बगाल मे बदल दिया था लेकिन जसवन्तसिह को बदस्तूर दक्षिण मे रखा। इतना ही नही, महाराजा को खिल्लअतें भी प्रदान की गई। अत मैने एक लेख मे यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि 5 अप्रेल की घटना म महाराजा जसवन्तसिह का किसी प्रकार हाथ नही था।[3] कर्नल जेम्स टाड और 'औरङ्गजेब' के आधुनिक इतिहासकार स्वर्गीय सर जदुनाथ सरकार इस दु खद घटना को महाराजा की Slothfulness and Connivance का परिणाम मानते हैं। पाठक स्वय सोच सकते हैं कि यदि जसवन्तसिह तथा शिवाजी के बीच कोई गुप्त समझौता होता तो आलमगीरनामा तथा फतूहाते आलमगीरी मे इसका अवश्य वर्णन होता। कम से कम मारवाड की ख्यातो मे तो अवश्य वर्णन मिलता। 1666 मे जब शिवाजी औरङ्गजेब के दरबार म उपस्थित हुआ और उसे पचहजारी मन्सबदारो की श्रेणी मे खडे होने का आदेश दिया गया तब शिवाजी ने महाराजा जसवन्तसिह को अपने आगे खड़े हुए देखकर आवेश मे कुँवर रामसिह से

जसवन्तसिह की मिली-भगत से शिवाजी ने शाइस्ताखा पर छापा नहीं मारा था

---

1 महाराजा जसवन्तसिह के नाम शाही फरमान कारगिया नागोर के मुकाम पर 4 11 1662 के दिन पहुचा था। महाराजा April 1663 म दक्षिण पहुच गया था।

2 शाइस्ताखा का डेरा पूना स्थित लालमहल मे था, जहा शिवाजी का बचपन मे लालन-पालन हुआ था। अत शिवाजी इस महल के कोने-कोने मे परिचित थे।

3 See my paper 'Jaswant Singh and his alleged league in Shivaji's night attack on Shaista Khan, published in Rajasthan University Studies (Arts)

कहा था, "वह जसवन्तसिंह जिसको मेरे सिपाहियो ने पराजित किया था, मैं उसके पीछे खडा किया जाऊँ ? इन सबका क्या तात्पर्य है ?"[1] यदि शिवाजी और जसवन्तसिंह के बीच वास्तव में किसी प्रकार की understanding कभी भी रही होती, तो शिवाजी को उपरोक्त शब्द कहने की क्या आवश्यकता थी ? इसके बाद दो वर्ष तक जसवन्तसिंह ने शिवाजी के विरुद्ध कतिपय युद्ध लडे और उसे काबू में करने का भरसक प्रयत्न भी किया।

1666 मे महाराजा जसवन्तसिंह को शाहजादा मुअज्जम के साथ उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश की रक्षा के लिए नियुक्त किया गया। इसी बीच फारस के शाह

जसवन्तसिंह की मुगल साम्राज्य के लिए सेवाएँ

की मृत्यु हो गई। शाह की मृत्यु के पश्चात् आक्रमण का कोई खतरा नही रहा। अत इन दोनों को वापिस बुला लिया गया।

मिर्जा राजा जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् महाराजा जसवन्तसिंह को पुन दक्षिण मे नियुक्त किया गया। कुछ समय पश्चात् बादशाह ने महाराजा का स्थानांतर दक्षिण से गुजरात में कर दिया। 1672 में महाराजा जसवन्तसिंह को जमरूद का थानेदार नियुक्त किया गया। इसी स्थान पर 28 नवम्बर 1678 के दिन महाराजा की मृत्यु हो गई। मृत्यु तेज बुखार के कारण हुई थी, महाराजा को विष नही दिया गया था जैसा कि डा० स्मिथ ने Oxford History of India मे लिखा है।

मआसिर-उल-उमरा का लेखक लिखता है, "वैभव तथा सेना की सख्या की अधिकता से यह भारत के अच्छे राजाओ मे गिने जाते थे।"[2] महाराजा जसवन्तसिंह

जसवतसिंह का चरित्र और मूल्यांकन

ने 40 वर्षों तक राज्य किया। इनके शासनकाल मे मारवाड की उन्नति एव समृद्धि हुई। जब तक यह जीवित रहे तब तक औरगजेब न तो हिंदुओ पर जजिया ही लगा सका और न हिंदुओ को उच्च सेवा से ही दूर रख सका बल्कि जब उसने उत्तर भारत के मदिरो को नष्ट करना प्रारम्भ किया तो महाराजा ने जमरूद मे रहते हुए कहा था कि वे काबुल की मस्जिदो को नष्ट कर देंगे।[3] अतएव इन्हें यदि 'हिन्दू जाति का सूर्य' कहकर पुकारा जाता था तो इसमे कोई अतिशयोक्ति नही थी।

---

1 देखिए डा० जदुनाथ सरकार कृत शिवाजी और उनका युग पृष्ठ 141

2 मआसिर-उल-उमरा, भाग प्रथम, पृष्ठ 174

3 देखिये पडित रामकरण आसोपा कृत 'मारवाड का मूल इतिहास, पृष्ठ 190

महाराजा जसवन्तसिंह स्वयं विद्वान और एक अच्छे कवि थे और विद्वानो का संरक्षण प्रदान करने वाले राजा थे। इन्हे आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध मे अच्छा ज्ञान था। उम्मेदभवन राजमहल मे स्थित पुस्तक प्रकाश नामक पुस्तकालय इनके द्वारा ही स्थापित किया गया था। इन्होंने स्वयं कई ग्रन्थ लिखे थे जो 'पुस्तक प्रकाश' में आज भी उपलब्ध हैं।

जसवन्तसिंह के जीवन काल मे ही उनके दोनो पुत्रो-महाराजकुमार जगतसिंह एवं पृथ्वीसिंह का देहान्त हो चुका था। अत उनकी मृत्यु के समय कोई भी पुत्र उनका अन्तिम संस्कार करने के लिए जीवित नही था, लेकिन उनकी दो रानिया (रानी जादमन और रानी नरूकी) अवश्य गर्भवती थी। अतएव इन दोनो को सती होने से रोक दिया गया। इन्ही के गर्भ से लाहौर मे दो राजकुमार (अजीतसिंह और दलथमन) उत्पन्न हुए (21 फरवरी 1679)। राजकुमारो तथा रानियो सहित स्वर्गीय महाराजा के सरदार अप्रेल 1679 मे बादशाह औरंगजेब की आज्ञानुसार दिल्ली पहुचे। जमरूद से दिल्ली पहुचने मे जितनी कठिनाइयो का सामना करना पडा उसका विस्तृत वर्णन मेरे अनुसन्धान ग्रथ 'Marwar and the Mughal Emperors' मे मिल जायेगा।

> जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् उत्पन्न राजकुमारो को मुगल बादशाह ने जोधपुर का राज्य नहीं दिया

14 अप्रल 1679 के दिन स्वर्गीय महाराजा के सरदारो ने सम्राट से गुसलखाने मे भेंट की। सरदार यह चाहते थे कि जोधपुर का राज्य महाराजा के पुत्रो को लौटा दिया जाए। औरंगजेब ने जसवन्तसिंह की मृत्यु के तुरन्त बाद जोधपुर को खालसा कर दिया था और वहा का प्रबन्ध करने के लिए ताहिरखा को फौजदार नियुक्त कर दिया था (फरवरी 1679 मे)। खिदमतगुजारखां को जोधपुर दुर्ग का किलेदार तथा अब्दुलरहीम को शहर कोतवाल नियुक्त करके जोधपुर भेजा जा चुका था। तात्पर्य यह है कि औरंगजेब ने महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु की सूचना पाते ही जोधपुर को अपने अधिकार मे करने का पूरा पूरा प्रबन्ध कर लिया था। औरंगजेब के आधुनिक इतिहासकार सर जदुनाथ सरकार का कहना है कि बादशाह आलमगीर निम्नांकित कारणो से जोधपुर को अपने अधिकार मे रखना चाहता था और इसलिए उसने महाराजा के मृत्योपरान्त पुत्रो को जोधपुर का टीका नही दिया था।

(1) सत्रहवी शताब्दी के अन्तिम चरण मे जोधपुर का राठौड राज्य एक शक्तिशाली हिन्दू राज्य था। यदि यह राज्य जसवन्तसिंह के पुत्र और उत्तराधिकारी अजीतसिंह को प्रदान कर दिया जाता तो कदाचित औरंगजेब मन्दिरो के विनाश तथा हिन्दुओ पर जजिया लगाने की योजना को लागू नहीं कर सकता था क्योकि जोधपुर नरेश समस्त हिन्दू प्रजा की आशा का केन्द्र-बिन्दु बन सकता था।

(2) महाराजा जसवन्तसिंह ने धरमत, खजुआ व देवराय के युद्धो मे औरंगजेब

का विरोध किया था। अत वह जसवन्तसिंह के तथाकथित गुनाहो का बदला उसके नाबालिग उत्तराधिकारी से लेना चाहता था।

(3) हिन्दू को उसी समय मुस्लिम बनाया जा सकता था जब कि जोधपुर के स्वतन्त्र राज्य को समाप्त कर दिया जाये।

लेकिन राठौडो मे कोई नेता नहीं होने हुए भी अपनी कौम और मातृभूमि की रक्षा के लिए जोश था। अत बीस हजार राठौड योद्धा जोधपुर शहर के इर्द-गिर्द एकत्रित हो गए और उन लोगो ने सम्राट् की नीति का विरोध किया। राजपूतो की शक्ति कम करने की गरज से कतिपय राठौड सरदारो के नाम फरमान जारी किए गए और उन्हे जागीर तथा मन्सब प्रदान किए गए। लेकिन जब इससे भी सफलता नजर नही आई तो स्वर्गीय महाराजा के भतीजे इन्द्रसिंह को जोधपुर का 'राजा' नियुक्त कर दिया गया और उससे इसके ऐवज मे तीन लाख रुपया बतौर पेशकस वसूल की गई। इन्द्रसिंह को जोधपुर मे सरदारो का सहयोग और समर्थन प्राप्त नही हो सका अत उसे दो महीने बाद ही जोधपुर की गद्दी से हटा दिया गया। जोधपुर में स्थान-स्थान पर विद्रोह हो रहे थे। इन विद्रोहो के और दूसरे कारण नही थे जैसा कि अलीगढ विश्वविद्यालय के एक आधुनिक अनुसन्धान छात्र ने अपने लेख मे सिद्ध करने का प्रयास किया है। यह तो राठौडो में अपनी कौम व देश की स्वतन्त्रता की भावना थी जिससे प्रेरित होकर वे लोग स्थान-स्थान पर मुगलो का विरोध कर रहे थे। औरगजेब को भी इन विद्रोहो को शान्त करने मे साम्राज्य की समस्त शक्ति दाव पर लगानी पडी थी।[1] अत जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् मारवाड के राठौडो ने मुगल साम्राज्य के विरुद्ध 30 वर्ष तक जो सघर्ष किया उसे स्वतन्त्रता का युद्ध कहकर पुकारना ही वाजिब है। यह कोई साधारण विद्रोह नही था।

> अपनी स्वतन्त्रता के लिए राठौडो ने मुगल साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध लडा था

एक ओर तो मारवाड मे सशस्त्र सघर्ष छिडा हुआ था और दूसरी ओर औरगजेब ने जसवन्तसिंह के बच्चो को दिल्ली मे नजरबन्द कर रक्खा था अत राठौड सरदार रघुनाथ भाटी, रणछोड जोधा व दुर्गादास ने यह तय किया कि दुर्गादास तो महाराज अजीतसिंह तथा रानियो को लेकर जोधपुर रवाना हो जाए और वह दोनो मुगल सेनाओ का उस वक्त तक मुकाबला करते रहे जब तक अजीतसिंह दिल्ली से कुछ दूर नही पहुँच जाता। रूपसिंह राठौड की हवेली से बालक अजीतसिंह का

> दिल्ली से अजीतसिंह को किस प्रकार निकाल कर सुरक्षित मारवाड पहुँचाया गया था ?

1 समकालीन विदेशी यात्री मनूची के शब्दों मे "Aurangzeb put in pledge the whole of his kingdom" Storia-do Mogor, II, p 2 0

बलूँदा के ठाकुर मोहकमसिंह की पत्नी के साथ गुप्त रूप से बाहर भेज दिया गया और मुकुन्ददास खीची को उसका गार्ड नियुक्त किया गया। 'वाकया सरकार अजमेर और रणथम्भोर' का लेखक लिखता है- स्वर्गीय महाराजा की दो दासियो ने दूधवाली के वेश मे अजीतसिंह को हवेली मे बाहर निकाला था। तत्पश्चात् मोहकमसिंह की पत्नी के हवाले कर दिया गया और मुकुन्ददास खीची सपेरे के वेश मे बालक अजीतसिंह की रक्षा मे साथ साथ गया। लेकिन यह लोग दिल्ली से 4–5 कोस ही आगे थे कि उनका पीछा करते हुए हामिदखा आ गया। अत रणछोड जोधा अपने 100 राजपूतो के साथ अजीतसिंह की पार्टी से जुदा हो कर हामिदखा का मुकाबला करने लगा। 2–3 कोस फासला तय करने पर इन लोगो का फिर मुगलो ने आ घेरा। अत दुर्गादास ने 2–3 घडी तक पीछा करने वाली सेना का मुकाबला किया। इस प्रकार कठिनाईया को पार करके यह लोग अजीतसिंह को 23 जुलाई 1679 के दिन मारवाड पहुचाने मे सफल हुए।

अजीतसिंह को पकडने मे असफल मुगल सेनानायको ने एक दूधवाली के बच्चे को औरगजेब के हवाले कर दिया। बादशाह ने उसका नाम मुहम्मदीराज रखा तथा उसके लालन–पालन का उत्तरदायित्व अपनी पुत्री जेबुन्निसा बेगम के सुपुर्द कर दिया।

अजीतसिंह को मारवाड मे छिपा कर रखा गया

मारवाड मे अजीतसिंह को पहले बलूदा मे तथा फिर सिरोही के कालिन्द्री ग्राम मे जयदेव नामक पुष्करणा ब्राह्मण के यहा रखा गया। लेकिन जब सिरोही के राव ने राठौडो को अजीतसिंह के सिरोही राज्य की सीमाओ से बाहर ले जाने पर मजबूर किया तो फिर बालक महाराजा को अरावली पर्वतमालाओ मे छिपा कर रखा गया। दुर्गादास के प्रयत्नो से राणा राजसिंह ने मेवाड मे केलवा की जागीर अजीतसिंह के निर्वाह के लिए प्रदान की।

औरगजेब ने अजीतसिंह को पकडने का उत्तरदायित्व ताहिरखा और इन्द्रसिंह पर डाला। लेकिन यह दोनो सफल नही हुए। अत ताहिरखा को पदच्युत कर दिया गया और इन्द्रसिंह को 2 महीने के बाद ही गद्दी से उतार दिया गया। बादशाह अजीतसिंह को पकडना चाहता था और दुर्गादास तथा उसके दूसरे साथी उसकी रक्षा करने मे प्रयत्नशील थे। औरगजेब ने राठौडो का दमन करने का कार्य अपने तृतीय पुत्र शाहजादे अकबर को सौपा और उसके साथ पादशाहकुलीखा, असदखा, सादुल्लाखा,

औरगजेब की मारवाड–नीति

तैमूरखा जैसे वीर और अनुभवी सेना-नायक नियुक्त किए। मारवाड को जिलो मे विभक्त कर दिया गया और प्रत्येक जिले (परगने) का प्रबन्ध एक फौजदार को सौप दिया गया। इस प्रकार बादशाह ने मारवाड का

प्रत्यक्ष रूप से मुगल प्रशासन मे मिला लिया। औरगजेब की इस नीति ने राठौड़ो को मुगल साम्राज्य के विरुद्ध सगठित हो कर विरोध करने के लिए प्रोत्साहित किया। उन लोगो ने मेवाड के पडौसी राज्य से भी सहायता प्राप्त की। मेवाड के राणा राजसिंह के मुगल सम्राट् औरगजेब के साथ व्यक्तिगत रूप से मधुर सम्बन्ध थे लेकिन फिर भी वह मारवाड को सहायता देने के लिए तैयार हो गए। इसका कारण यह हो सकता है कि राणा राजसिंह मेवाड को पुन गौरव एव प्रतिष्ठा के पद पर आसीन करना चाहते थे। राणा सागा की मृत्यु के पश्चात् मेवाड की गौरव-गरिमा फीकी पड गई थी। जसवन्तसिंह के नेतृत्व मे मारवाड शक्तिशाली हो गया था। नेतृत्वविहीन मारवाड की सहायता करके राणा राजसिंह ने यह सिद्ध कर दिया था कि सकटकाल मे राजपूत शत्रु के विरुद्ध सगठित हो सकते थे। अत औरग-जेब को मेवाड के विरुद्ध सेनाए भेजनी पडी। देबारी के युद्ध मे (4 जनवरी 1680) मेवाड और मारवाड की सयुक्त सेना को औरगजेब की सेना ने पराजित किया। मेवाड की राजधानी उदयपुर मे स्थित जगदीशजी के मन्दिर तक मुगल सैनिक पहुच गए। इस प्रकार उदयपुर को बरबाद करके मुगल सेनाए तो वापस अजमेर आ गई लेकिन औरगजेब अजीतसिंह को पकडने के मनसूबे मे सफल नही हो सका।

जब औरगजेब की सेनायें मेवाड मे लड रही थी तब शाही शक्ति को विभाजित करने के उद्देश्य से दुर्गादास राठौड और सोनिग ने अपने साथियो सहित जालोर, सोजत, सिवाना व जैतारण मे विद्रोह कर दिये। ऐसा प्रतीत होता है कि औरगजेब की नीति ने मारवाड मे जन साधारण को मुगल साम्राज्य का विरोधी और अशुभ-चिन्तक बना दिया था। औरगजेब ने इन विद्रोहो का दमन करने के लिए इन्द्रसिंह के अलावा हामिदखाँ तथा नवाब मुकर्रमखाँ के नेतृत्व मे सेनायें भेजी थी लेकिन कोई नतीजा नही निकला। मारवाड की हर दिशा मे लोकप्रिय विद्रोह हो रहे थे जिसकी वजह से मुगलो की स्थिति शोचनीय हो गई थी और मारवाड का व्यापार एव वाणिज्य भी लगभग समाप्त हो गया था।[1]

अतएव औरगजेब को शाहजादे अकबर को मेवाड से मारवाड भेजना पडा।

---

1. "All parts of Marwar, Jalor and Siwana in the south, Didwana in the north and Sambhar in the north-east were invaded by Ajit's partisans The Rathor bands spread over the Country and they appeared unexpectedly in different quarters and after having secured a success over a weak Mughal outpost kept the land in perpetual turmoil Even the trade routes were closed by them"

—J N Sarkar, History of Aurangzeb, III, P 347

जून 1680 मे मोजत को अपना base of operation बनाकर अकबर ने राठौडो का दमन करने की योजना बनाई थी। 11 अक्तूबर 1680 के दिन इसने नाडोल के युद्ध मे राठौडो को पराजित भी किया था। अकबर को नाडोल से दिलवाडा होते हुए मेवाड पर आक्रमण करना था। लेकिन देसूरी के घाटे की दुर्गम पहाडियो के कारण अकबर सम्राट के आदेशानुसार शीघ्र कार्य नही कर सका। वह मेवाड और मारवाड मे राजपूतो का दमन करने मे असफल रहा अत बादशाह उससे क्रुद्ध हो गया। बादशाह की नाराजगी के कारण अकबर और औरगजेब के बीच कोई पत्र—व्यवहार नही हुआ। इस अवसर का दुर्गादास राठौड ने फायदा उठाया। तहव्वरखाँ उर्फ पादशाहकुलीखा के द्वारा अकबर को औरगजेब के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए सफलता-पूवक प्रोत्साहित कर दिया गया। यही एक तरीका था जिससे औरगजेब की ताकत को कम किया जा सकता था ताकि मारवाड बर्बाद होने से बच सके। राणा राजसिंह की मृत्यु के पश्चात् (22 11 1680) उसके पुत्र और उत्तराधिकारी ने राठौडो का उतने उत्साह के साथ साथ देना बन्द कर दिया था। अत अकबर को बादशाह बनने के सब्ज बाग दिखाकर दुर्गादास राठौड मारवाड मे औरगजेब के अभियान की तीव्रता को कम करने मे सफल हुआ। अकबर ने 3 जनवरी 1681 के दिन नाडोल के स्थान पर अपने आपको बादशाह घोषित कर दिया। भारत मे मुगल साम्राज्य का इतिहास उत्तराधिकार के लिए लडे गये सघर्षो की कहानियो मे भरा पडा है। अत यदि अकबर ने भी अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया तो इसमे कोई नई बात नही थी।

> औरगजेब के पुत्र अकबर ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया

लेकिन शाहजादा अकबर अपने आलसी स्वभाव के कारण सफलता प्राप्त नही कर सका। औरगजेब को जैसे ही अकबर के विद्रोह की सूचना मिली वैसे ही उसने अकबर के नाम पत्र लिखकर उन्हे राजपूतो के खेमो के पास डलवा दिया। औरगजेब के इन पत्रो को पढकर राजपूत अकबर पर सन्देह करने लगे। औरगजेब और अकबर की सेनाओ के बीच युद्ध छिडने से पूव ही राजपूत अकबर को छोडकर भाग खडे हुए (25 जनवरी 1681) लेकिन अकबर के पास कोई चारा नही था। वह भी उनके पीछे पीछे हो लिया और जैतारण से 20 मील दूर पुन राठौडो के साथ जा मिला। औरगजेब की सतर्कता और चालाकी ने विद्रोह का दमन करने मे सफलता प्राप्त की। राठौडो की शक्ति को विभाजित करने के उद्देश्य से उसने जसवन्तसिंह की विधवा हाडीरानी को दारों का परगना प्रदान किया। पादशाहकुलीखाँ का उसके श्वसुर इनायतखा के द्वारा अकबर ने जुदा कर दिया और फिर जाली पत्र लिखकर राठौडो को अकबर ने अलग कर दिया अन्यथा उसे (औरगजेब को) हिन्दुस्तान की बादशाहत से हाथ धोने पडते।

> औरगजेब की चालाकी के कारण अकबर का विद्रोह असफल हो गया।

राठौडो ने अकबर को विद्रोह करने के लिए प्रोत्साहित करके केवल औरंगजेब की शक्ति ही विभाजित नही की, अपितु इसके द्वारा अजीतसिंह के लिए महाराजा की उपाधि तथा 7000 जात व सवार का मन्सब भी प्राप्त किया। इस प्रकार एक ओर तो औरंगजेब अजीतसिंह को जसवन्तसिंह का पुत्र मानने से ही इन्कार कर रहा था और दूसरी ओर उसके पुत्र ने अजीतसिंह को जोधपुर का 'महाराजा' स्वीकार किया।

औरंगजेब ने अकबर का पीछा करने के लिए अपने बडे लडके मुअज्जम को नियुक्त किया लेकिन दुर्गादास राठौड उसे जालौर, साचोर होता हुआ मेवाड ले गया। वहा महाराणा जयसिंह की बेरुखी देखकर उसे डूंगरपुर ले गया। डूंगरपुर से दक्षिण में शम्भाजी के पास (शिवाजी के पुत्र और उत्तराधिकारी) ले गया (11 जून 1681 A D)। दुर्गादास ने अकबर का साथ क्यो दिया, इसके दो कारण हो सकते हैं —

(i) अकबर को शम्भाजी के दरबार मे ले जाकर कदाचित् दुर्गादास राठौड मराठा मैत्री स्थापित करना चाहता था।

(ii) अकबर को दक्षिण ले जाकर दुर्गादास ने औरंगजेब का ध्यान मारवाड से हटाकर दक्षिण की ओर कर दिया। औरंगजेब भी दक्षिण भारत की ओर प्रस्थान कर गया।

औरंगजेब के दक्षिण रवाना होते ही राठौड सरदारो को मारवाड मे जगह जगह उत्पात मचाने की खुली छूट मिल गई। इसका परिणाम यह निकला कि कतिपय स्थलो पर मुगलो के पैर उखड गए। भाद्राजूण मे मुगल सैनिको को जोधा उदयभान व ऊदावत जगरामसिंह ने पराजित किया, बालोतरा मे अखयराज ने मुगलों के पैर उखाड दिये और कानाना के युद्ध-क्षेत्र मे पुरदीलखाँ को पराजित करके सिवाना के दुर्ग पर राजपूतो ने अपना अधिकार जमा लिया। अपने इन उत्पातो के कारण राठौडो ने मारवाड का अधिकार मुगलो के लिए महगा कर दिया और वे लोग आतंकित हो गए।[1]

मारवाड मे कौमी स्वतन्त्रता के लिए स्थान २ पर उपद्रव हुए

दुर्गादास अकबर को फारस की ओर भेजकर स्वय अगस्त 1687 मे सुरक्षित मारवाड पहुच गया। लेकिन मारवाड पहुचने पर उसे यह जानकर अत्याधिक

---

1 "They had no common plan of actions Their only object was to attack the Mughals wherever they could The desultory warfare afforded many examples of Rathor bravery and devotion, but its actual effect was merely to keep the Mughal garrisons in constant alarm and to make their occupation of Marwar *financially* ruinous" —J N Sarkar

खेद हुआ कि अजीतसिंह को मार्च 1687 मे प्रकट कर दिया गया था। अत वह स्वय अजीत के दरबार मे सिवाना नही गया। दुर्जनसाल हाडा के साथ मिलकर उसने जहाँ तहाँ मुगलो पर छापे मारने का कार्यक्रम अपना लिया। चू कि औरगजेब स्वय दक्षिण मे बुरी तरह जूझ गया था, अत उसने मारवाड का प्रबन्ध गुजरात के सूबेदार शुजातखा के सुपुर्द कर दिया। शुजातखा साल मे छ महीने मारवाड़ मे रहने लगा। शुजातखा ने दुर्गादास का पीछा करने का कार्य हाशिमबेग और मुहम्मद काजिमबेग के सुपुर्द किया। इन लोगो ने दुर्गादास के गाव वगैरा जला दिए लेकिन दुर्गादास को पकडने मे सफलता नहीं मिली।

जोधपुर के अमीन और फतूहाते आलमगीरी के लेखक ईसरदास नागर ने शुजातखा के इशारे पर दुर्गादास के साथ वार्तालाप प्रारभ की। इसी दौरान दुर्गादास ने ईशरदास नागर को सिखाकर भेजा कि यदि उसके घर-बार को कोई नुकसान नही पहुँचाया जायगा तो वह शाहजादे अकबर की पुत्री सैफुन्निसा बेगम को उसके पितामह के हवाले कर सकता है। यह पत्र शुजातखा के पास से औरगजेब के पास तक जा पहुचा। बादशाह की आज्ञा से सैफुन्निसा बेगम को दुर्गादास व ईसरदास नागर साथ लेकर दक्षिण भारत गए (मई 1698 मे)। औरगजेब ने प्रसन्न होकर दुर्गादास को इनाम व मन्सब प्रदान किया और मेडता की जागीर उसे देने का फरमान शुजातखा के नाम भेजा। तत्पश्चात् बागी शाहजादे के पुत्र बुलन्द अख्तर को भी औरगजेब के हवाले करने के लिए ईसर दास ने दुर्गादास को फुसलाना प्रारम्भ किया। दुर्गादास ने बुलन्द अख्तर को तो हवाले कर दिया लेकिन साथ ही बादशाह से प्रार्थना की कि अजीतसिंह को माफी बख्श दी जावे तथा सिवाना, जालौर व साचोर की जागीर उसे प्रदान की जाए।[1] औरगजेब ने दुर्गादास की प्रार्थना स्वीकार कर ली। दुर्गादास व अजीतसिंह दोनो को ही बादशाह की ओर से मन्सब तथा जागीर प्रदान की गई। 1698-99 के साल मे मारवाड मे अनावृष्टि के कारण अकाल पड गया था। अत अजीतसिंह ने आर्थिक परेशानियो की वजह से बादशाह से मन्सब तथा जागीर प्रदान करने के लिए प्रार्थना की थी।

शुजातखा के प्रयत्नो से मारवाड और मुगलो के बीच क्षणिक शाति स्थापित हो गई थी

शुजातखा की मृत्यु के साथ-साथ यह शान्ति-समझौता भी भग हो गया। शुजात खा के उत्तराधिकारी शाहजादा आजम ने पुन कठोर नीति अपना ली। दुर्गादास को गिरफ्तार करने की कोशिश की गई। इसी समय अजीतसिंह व दुर्गादास के बीच मनोमालिन्य हो गया अत औरगजेब ने भी reconciliation की नीति त्याग दी। 1702 मे पुन युद्ध प्रारम्भ हो गया।

शुजात खाँ की मृत्यु के पश्चात् पुन युद्ध छिड गया

1 मिरात-ए-अहमदी, I, पृष्ठ 341

लेकिन औरगजेब के जीवनकाल मे अजीतसिंह जोधपुर पर अधिकार करने मे सफल नहीं हो सका। औरगजेब की मृत्यु होने के एक महीने के भीतर अजीतसिंह ने जोधपुर पर अधिकार कर लिया था (12 3 1707)। बादशाह औरगजेब की मृत्यु के साथ ही मारवाड का स्वतन्त्रता सग्राम का सघष भी समाप्त हो गया।

औरगजेब की नीति का परिणाम

बादशाह औरगजेब की नीति ने मारवाड के राठोडो को हमेशा के लिए मुगल साम्राज्य का अशुभ चिन्तक बना दिया था। "The insults which had been offered to Ajit Singh and to Hindu religion and the ruthless and unnecessary srerity of the Emperor's Compaigns in Marwar left a sore which could not be healed A race which had been the right arm of the Mughal Emperors was now hopelessly alienated, and never again served the throne without distrust".

औरगजेब की मृत्यु के बाद अजीतसिंह ने जोधपुर पर अधिकार कर लिया

औरगजेब की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रो मुअज्जम और आजम के बीच राजगद्दी के लिए जाजू नामक स्थान पर 8 जून 1707 के दिन युद्ध लडा गया। जाजू के युद्ध से पहले दोनो ही पक्षो ने अजीतसिंह की सहायता चाही थी लेकिन अजीतसिंह उत्तराधिकार के इस सशस्त्र सघर्ष मे तटस्थ रहा। अत जाजू के युद्ध के विजेता मुअज्जम ने बादशाह बनने के पश्चात् अजीतसिंह का दमन करने के लिए एक सेना मिहराब खा के नेतृत्व मे भेजी। अजीतसिंह ने खून-खराबी से मारवाड को बचाने के लिए बादशाह बहादुरशाह के पास अजमेर के मुकाम पर अपने दो विश्वासपात्र सरदारो (मुकन्दसिंह व बख्तसिंह) को भेजा। जब बहादुरशाह मेडता पहुचा तो अजीतसिंह खानखाना के साथ उसके दरबार मे उपस्थित हुआ (11 मार्च 1708)। बादशाह ने अजीतसिंह को महाराजा की उपाधि व मन्सब प्रदान किए लेकिन इस वक्त जोधपुर का पैतृक राज्य अजीतसिंह को नही दिया गया।

अजीतसिंह, सवाई जयसिंह और महाराणा अमरसिंह का सयोग

बहादुरशाह अजीतसिंह और जयसिंह (सवाई) को अपने साथ दक्षिण ले गया। वह अपने भाई कामबख्श के विद्रोह का दमन करने के लिए दक्षिण गया था। उत्तर भारत मे अपनी अनुपस्थिति मे बहादुरशाह इन राजपूत राजाओ को स्वच्छद रूप मे छोडकर नही जाना चाहता था। इस वक्त दुर्गादास भी बादशाह के साथ गया था। लेकिन जब शाही सेना सूबा मालवा मे मडलेश्वर नामक स्थान पर पहुची तो अजीतसिंह, जयसिंह व दुर्गादास वापस लौट गए। लौटते वक्त इन दोनो राजाओ की महाराणा से देवारी के स्थान पर भेंट हुई। 1527 के बाद यह पहला मौका था जब मेवाड, मारवाड,

और आमेर के राजा मुगल बादशाह के विरुद्ध सगठित हुए थे । सगठित सेना ने पहले जोधपुर पर अधिकार किया (18 जुलाई 1708) और फिर साँभर के युद्ध मे मुगलो को पराजित करके सवाई जयसिह को आमेर का राज्य दिलवाया । तत्पश्चात् नागौर के राव इन्द्रसिह को पराजित किया और डीडवाना के मुगल फौजदार को पराजित किया । इस प्रकार उत्तर भारत मे बादशाह की अनुपस्थिति का अजीतसिह ने पूरा पूरा फायदा उठाया । अत दक्षिण से लौटने के बाद बहादुरशाह ने जोधपुर वतन-जागीर के रूप मे अजीतसिह को 2 अक्टूबर 1708 के दिन प्रदान किया ।

इस प्रकार बहादुरशाह की मृत्यु के समय (Feb 1712 मे) अजीतसिह जोधपुर का महाराज, सोरठ का फौजदार तथा शाही सेना मे 4000 जात व सवार का मन्सबदार था । उसने शाही दरबार मे अपना प्रभाव बढाना शुरू कर दिया था ।

अजीतसिह की मुगल साम्राज्य मे स्थिति

अत बहादुरशाह के पुत्र और उत्तराधिकारी जहादारशाह के अल्प शासनकाल मे अजीतसिह का मन्सब बढकर 7000 जात व सवार का हो गया । उसके विद्रोही जाट सरदार चूडामन के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित हो गए और उसकी गणना भारत के महान् एव शक्तिशाली हिन्दू शासको मे की जाने लगी ।

जहादारशाह के उत्तराधिकारी फर्रुखसीयर के शासन–काल मे अजीतसिह की प्रतिष्ठा और अधिक बढ गई थी । यद्यपि उसे 1714 मे अपनी पुत्री इन्द्रकवर का डोला बादशाह को देना पडा था, लेकिन फर्रुखसीयर की मृत्यु के समय उसकी स्थिति इतनी अधिक बढ गई थी कि वह सैयद बन्धुओ के साथ 'बादशाह निर्माता' बन गया था ।[1] फर्रुखसीयर की मृत्यु के बाद इसने रफीउदरजात को एक हाथ पकड कर तख्त पर बिठाया था । अजीतसिह की प्रार्थना पर रफीउदरजात ने हिन्दुओ मे जजिया वसूल करना बद कर दिया । उसकी पुत्री इन्द्रकवर को पुन जोधपुर लौट जाने की अनुमति दे दी ।[2]

"Thus Ajitsingh became one of the leading Rajput Rajas of Hindustan besides being a very important grandee of the Mughal Empireduing, the years immediately following assassination of Farrukhsiyar "

---

1 "Maharaja Ajitsingh played an active part at the time of Farrukhsiyar's deposition The might preceding the Emperor's deposition Ajits ngh remained in the Fort Palace and his men were posted on the guard " Irvine, Later Mughals, vol I, P 380

2 "In the reign of no former Emperor had any Raja been so presumptuous as to take his daughter, after she had been married to a king and admitted to the honour of Islam" Khafi Khan's 'Muntakhab ul-Lubab' (Elliot's Eng Trans vol VII, p 479)

अजीतसिंह और सैयद बन्धुओ का प्रभुत्व रफीउदरजात, रफीउद्दौला और बादशाह मुहम्मदशाह के शासनकाल के प्रथम वर्षों में अपनी चरम सीमा पर पहुच गया।

अजीतसिंह 'बादशाह निर्माता' था ।

प्रकृति का नियम है कि जिसका उत्थान होता है उसका पतन भी अवश्यम्भावी है। अजीतसिंह का भी पतन हुआ लेकिन उसका पतन उसकी हत्या के साथ हुआ। अजीतसिंह की उसके छोटे पुत्र बख्तसिंह ने जोधपुर मे 23 व 24 जून 1724 की रात को हत्या कर दी। अजीतसिंह की हत्या के साथ ही मारवाड का प्रभुत्वशाली युग भी समाप्त हो गया।

इसमे तो सदेह नही कि अजीतसिंह मारवाड के उन प्रमुख राजाओ मे से एक था जिसके शासन–काल मे राठौड राज्य अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। लेकिन अजीतसिंह के चरित्र मे दो बडे दोष थे। प्रथम दोष तो यह था कि इसने दुर्गादास राठौड के साथ अच्छा व्यवहार नही किया, दूसरा दोष इसके चरित्र मे व्यक्तिगत था जिसकी वजह से बख्तसिंह ने इसकी हत्या की थी अन्यथा इसने अपनी पटुता के कारण मारवाड को उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुचा दिया था।

मडोवर के राव रणमल्ल की बारहवी पीढी में उत्पन्न कर्ण राठौड के वशज

दुर्गादास राठौड
1638–1718

सालवा ठाकुर आसकरण का पुत्र दुर्गादास राठौड था। इसका जन्म 13 अगस्त 1638 के दिन हुआ था। धरमत के युद्ध मे यह अपने पिता के साथ मौजूद था और जब महाराजा जसवन्तसिंह का देहान्त हुआ तब यह जमरूद मे उपस्थित था।

जमरूद से किस प्रकार इसने अपने दूसरे साथियो के साथ स्वर्गीय महाराजा के बाल बच्चो को मारवाड पहुचाया और मारवाड मे किस प्रकार 25 वर्ष तक जातीय स्वतन्त्रता के लिए मुगलो के विरुद्ध सघर्ष जारी रखा इसका सक्षेप मे वर्णन पिछले पृष्ठो मे यथास्थल किया जा चुका है। मारवाड राज्य के लिए इसकी सेवाए अकबर महान् के वकील ए-सल्तनत बैराम खा से किसी रूप मे कम नही थी।

महाराजा अजीतसिंह से मनमुटाव हो जाने के बाद भी दुर्गादास निरतर अजीतसिंह के इर्दगिर्द रहा था। अजमेर के मुगल सूबेदार शफीखा ने षडयत्र करके अजीतसिंह को फसाने की कोशिश की थी, तब दुर्गादास ने ही अजीतसिंह को सचेत किया था। मुगल बादशाह बहादुरशाह के साथ जब अजीतसिंह व जयसिंह 1708 मे दक्षिण जा रहे थे तब दुर्गादास ने ही मडलेश्वर के स्थान पर अजीतसिंह को परामर्श दिया था कि उसे मारवाड लौट जाना चाहिए। उसका परामर्श अजीतसिंह के लिए फायदेमद साबित हुआ। बहादुरशाह की उत्तर भारत मे अनुपस्थिति मे अजीतसिंह ने जोधपुर तथा मारवाड के अन्य भागो पर अधिकार कर लिया। साभर के युद्ध मे भी दुर्गादास ने भाग लिया था। मुगल साम्राज्य के सरकारी कागजो (अखबारात) मे

दुर्गादास का जिक्र 1716 ई० तक मिलता है। पंडित विश्वेश्वरनाथ रेऊ के अनुसार दुर्गादास का 1718 में रामपुरा में देहान्त हुआ था। अतः उसका सिपरा नदी के तट पर दाह संस्कार सम्पन्न किया गया जहां उसकी छतरी आज तक मौजूद है।

अजीतसिंह से मतभेद हो जाने के पश्चात् दुर्गादास मेवाड चला गया था। महाराणा ने उसके निर्वाह के लिए जागीर भी प्रदान करदी थी। यद्यपि उसकी मृत्यु के पश्चात दुर्गादास के वंशजों के साथ मारवाड के राजाओं ने अच्छा व्यवहार किया और उसकी औलाद को कानाना, बागावास, समदड़ी की जागीरें भी प्रदान की लेकिन उसके जीवन-काल में उसे मारवाड छोड़कर जाना पडा था। मारवाड की ख्यातो में अजीतसिंह और दुर्गादास के बीच मनमुटाव के कारण नहीं दिए गए हैं लेकिन सम्भवत मनमुटाव के दो कारण हो सकते हैं —

(i) मुगल शाहजादा अकबर को दक्षिण ले जाते वक्त दुर्गादास मुकुन्ददास खीची तथा दूसरे सरदारों को आदेश दे गया था कि महाराज अजीतसिंह को Concealment से बाहर नहीं निकाला जाए लेकिन दुर्गादास की अनुपस्थिति में सरदारों ने अजीतसिंह को प्रकट कर दिया। अतः मारवाड लौटने पर दुर्गादास अजीतसिंह के दरबार में उपस्थित नहीं हुआ। दुर्गादास से ईर्ष्या रखने वाले सरदारों ने इस अवसर से लाभ उठाया और अजीतसिंह के दुर्गादास के विरुद्ध कान भरे।

(ii) जैसे जैसे दुर्गादास का मुगल साम्राज्य और पडोसी राज्यों में प्रभाव बढ़ता गया वैसे-वैसे ही मारवाड में उसके विरोधियों की भी संख्या बढ़ती गई जिन्होंने अजीतसिंह के उसके विरुद्ध कान भरे। दुर्गादास को जब उचित सम्मान अजीतसिंह के द्वारा प्रदान नहीं किया गया तब वह स्वयं मारवाड छोड़कर मेवाड चला गया। महाराजा अजीतसिंह के द्वारा उसे मारवाड से देश निकाला नहीं दिया गया था।

13

आमेर का इतिहास 1548 से 1700 ई० तक

(History of Amber from 1548 to 1700 A D)

आमेर के शासक राजा भारमल[1] के राज्याभिषेक के साथ केवल कच्छवाहो के इतिहास का ही नही, अपितु राजस्थान के इतिहास का एक नया अध्याय प्रारम्भ होता है ।[2] भारमल अपने पिता पृथ्वीराज 'हरिभक्त' का चौथा पुत्र था जो उसकी राठौड रानी अपूर्वदेवी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद पूरनमल आमेर का राजा बना लेकिन पूरनमल की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र सूजा को नाबालिग होने के कारण गद्दी नही मिल सकी । गद्दी पृथ्वीराज के पुत्र भीम को मिली । भीम के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र रतनसिंह गद्दी पर बैठा लेकिन इसे आसकरण ने मार दिया जो स्वय इसका सौतेला भाई था । आसकरण मुश्किल से 16 दिन ही राज्य कर सका होगा कि आमेर के सरदारो ने सगठित होकर उसे गद्दी से उतारने का निश्चय कर लिया और उसके स्थान पर भारमल को राजा बनाया ।

राजा भारमल 1548-1574

राज्याभिषेक के समय (1 जून 1548) भारमल की अवस्था 50 वर्ष की थी । आमेर की गद्दी के दावेदार (सूजा और आसकरण) प्रयत्नशील थे । इधर मारवाड के शासक मालदेव ने आमेर के अधिकाश भाग[3] को अपने अधिकार मे कर लिया था । आसकरण गद्दी प्राप्त करने की इच्छा से भारत के सूर सुल्तान इस्लामशाह के सेवक हाजीखा पठान के पास जा चुका था । सूजा की मा राठौड राजकुमारी थी । अत वह सहायतार्थ अपनेननसाल पहुच गया था । इन परिस्थितियो मे गद्दी को सुरक्षित रखने के खातिर भारमल को भी पठानो की शरण लेनी पडी । हाजीखा पठान के साथ कतिपय युद्धो मे भारमल ने भाग लिया था । आमेर की वशावलियो के अनुसार इसने अपनी पुत्री, बाई किशनावती का वैवाहिक सम्बन्ध भी हाजीखा

---

1 कतिपय समकालीन शिलालेखो मे इसे भारहमल्ल लिखा गया है । यह शिलालेख सस्कृत भाषा मे हैं । वशावलियो मे इसका नाम भारमल लिखा हुआ है जबकि फारसी तवारीखो मे पहाडमल अथवा बिहारीमल लिखा मिलता है ।

2 "With the accession of Bihar Mal a completely new chapter opens in the history not only of Jaipur but also of all Rajputana "—Sir J N Sarkar

3 जैसा कि मारवाड के इतिहास मे लिखा जा चुका है कि आमेर के चार परगने मालदेव के अधिकार मे आ चुके थे ।

पठान के साथ किया था। इस प्रकार भारमल ने आसकरण के सम्भावित मददगार हाजीखां की सहानुभूति प्राप्त करके अपने प्रतिद्वन्दी के पक्ष को निर्बल कर दिया। मच्छीवाड़ा के युद्ध में विजयी मुगल सम्राट् हूमायूं ने नारनोल में मजनूंखां को अपना सूबेदार नियुक्त किया था यद्यपि मच्छीवाडा के युद्ध में सूर सल्तनत का अन्त हो चुका था। लेकिन सूर सुल्तानों के भूतपूर्व सेवक यत्र-तत्र मौजूद थे। ऐसे सेवकों में हाजीखां पठान भी एक था जो उस समय मेवात का स्वामी था। मेवात का स्वामी होने के नाते उसने नारनोल का घेरा डाल दिया। घेरे में भारमल हाजीखां के साथ था। उस समय मजनूंखां की प्रार्थना पर भारमल ने ही कोशिश करके नारनोल के मुगल सैनिकों के जान और माल की सुरक्षा करवाई थी। अपने इस कूटनीतिज्ञतापूर्ण कार्य के द्वारा भारमल ने मुगल दरबार में मजनूंखां के व्यक्तित्व में एक एहसानमंद दोस्त उत्पन्न कर लिया था।

पानीपत के द्वितीय युद्ध में सूर सल्तनत को पुनः स्थापित करने की समस्त आशाएं धूलिधूसरित हो चुकी थीं। अतः पानीपत की विजय के पश्चात् जब मजनूंखां ने राजा भारमल की सहायता की कहानी अपने स्वामी मुगल सम्राट अकबर को सुनाई तो स्वाभाविक रूप से बादशाह अकबर ने राजा भारमल से मिलना चाहा। मजनूंखां के प्रयत्नों से अकबर और राजा भारमल की दिसम्बर 1556 में दिल्ली में भेंट हुई।

भारत में मुगलों का सितारा बुलन्दी पर देखकर भारमल का भतीजा सूजा अजमेर के मुगल सूबेदार मिर्जा शरफुद्दीन के पास सहायतार्थ पहुंचा। मिर्जा शरफुद्दीन ने नव स्थापित मुगल साम्राज्य के विस्तार का इसे स्वर्ण अवसर समझकर सूजा को आमेर की गद्दी दिलाने के बहाने 1561 में आक्रमण किया। उस समय भारमल इस स्थिति में नहीं था कि मिर्जा शरफुद्दीन का सामना कर सके। अतः उसने मिर्जा का दावा दण्ड स्वीकार किया और बतौर जमानत अपने पुत्र जगन्नाथ तथा भतीजों राजसिंह व खंगार को मिर्जा के हवाले कर दिया।

अगले वर्ष फिर सूजा के कहने पर मिर्जा शरफुद्दीन आमेर पर आक्रमण करने की सोचने लगा। इस बार उसका इरादा भारमल के परिवार का जड़ मूल से नष्ट करके आमेर को अधिकार में लेने का था।[2] आक्रमण की आशंका से त्रस्त भारमल पहाड़ियों में आश्रय लेने की सोच रहा था कि उसी समय उसे खबर मिली कि मुगल सम्राट् अकबर ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह की जियारत करने अजमेर जा रहा है (जनवरी 1562)। इस सम्बन्ध में मजनूंखां के एक मित्र चगताई खां के द्वारा भारमल ने मुगल बादशाह से भेंट करने की इच्छा प्रकट की। चगताईखां ने अकबर से कलावली (टोंडा के पास) के मुकाम पर भारमल की तरफ से अर्ज की।

---

1 देखिए अकबरनामा (बेवरिज द्वारा अंग्रेजी अनुवाद) जिल्द II पृष्ठ 69–70

2 अकबरनामा, जिल्द II, पृष्ठ 241

बादशाह ने इजाजत दे दी । चुनाचे पहले तो दौसा के मुकाम पर रूपसी ने सम्राट् से भेंट की । रूपसी दौसा का स्वामी था । दौसा के निवासी मिर्जा शरफुद्दीन के अत्याचारो से इतने अधिक आतंकित थे कि शाही पडाव दिन भर दौसा रहा और कोई भी व्यक्ति सम्राट् को दिखाई नही दिया, लोग अपने अपने मकान खाली करके भाग खडे हुए थे । इसका अकबर के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पडा । अत जब 20 जनवरी 1562 के दिन सागानेर के मुकाम पर राजा भारमल सम्राट् के सम्मुख उपस्थित हुआ तो उसे काफी इनाम वगैरह दिए गए । भारमल अपने कई रिश्तेदारो तथा प्रमुख सरदारो सहित अकबर की सेवा मे उपस्थित हुआ था । अकबर तो Complete Submission चाहता था अत भारमल ने अधीनता स्वीकार करली अतएव 20 जनवरी 1562 के बाद आमेर के कछवाहा राजघराने का भाग्य-सितारा चमक उठा ।

अकबर का दरबारी इतिहासकार अबुलफजल लिखता है कि "The Rajah, in order to bring himself out of the rank of (mere) landholders and to make himself one of the grandees of the court, proposed to give his eldest daughter in marriage to the Emperor "[1] अकबर ने विवाह की स्वीकृति दे दी और सागानेर के मुकाम से ही भारमल को चगताईखा के साथ विवाह की तैयारी करने के लिए रवाना कर दिया । रवाना करते समय राजा भारमल को इनाम भी दिया गया था ।

अजमेर से लौटते समय साभर के स्थान पर राज्योचित ढग से बाई हरखा का अकबर के साथ 6 फरवरी 1562 के दिन विवाह सम्पन्न हुआ । साभर से रतनपुरा[2] तक उसके सभी सम्बन्धी शाही लश्कर के साथ आए । यही पर भारमल के पुत्र और उत्तराधिकारी भगवन्तदास तथा उसके पुत्र मानसिंह का अकबर से परिचय कराया गया । अपने कई रिश्तेदारो के साथ भगवन्तदास व मानसिंह बादशाह के साथ आगरे के लिए रवाना हो गए और राजा भारमल आमेर लौट गया (10 फरवरी 1562) ।

अकबर ने राजा भारमल की पुत्री से विवाह करके भारत मे मुगल साम्राज्य की स्थिति को सुदृढ किया । डा० वेनीप्रसाद के शब्दो मे, " It gave the country a line of remarkable sovereigns, it secured to four generations of Mughal Emperors the Services of some of the greatest captains and diplomats that mediaeval India produced "[3] शाही हरम मे यह राजकुमारी मरियमजमानी के नाम से प्रसिद्ध हुई । इसी के गर्भ मे सलीम (बादशाह जहागीर) उत्पन्न हुआ था । अकबर का यह विवाह दूसरे अन्तर्जातीय विवाहो मे भिन्न

1 अकबरनामा (वेवरिज कृत अग्रेजी अनुवाद) जिल्द II, Page 242

2 रतनपुरा जयपुर से 8 मील पूर्व मे है ।

3 History of Jehangir (1930) P 2

था। बाई हरखा का अपने सम्बन्धियों से सम्बन्ध विच्छेद नहीं हुआ था।[1] इसका भाई व भतीजा मुगल साम्राज्य के विश्वासपात्र सेना नायकों में से थे जिन्होंने अकबरी सेनाओं के साथ कन्धा से कन्धा मिलाकर भारत में मुगलों की स्थिति को सुदृढ़ करने में सक्रिय सहयोग दिया। भारमल, उसके पुत्र भगवन्तदास तथा पौत्र मानसिंह के प्रयत्नों के कारण दूसरे राजपूत राजाओं के मुगल साम्राज्य के साथ राजनैतिक एवं वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हुए। यद्यपि मरियमज़मानी ने अकबर की प्रशासनिक नीति को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं किया, लेकिन हिन्दू धर्म का मुस्लिम धर्म व संस्कृति के साथ अकबर के शासन-काल में जो समन्वय हुआ उसका एक कारण यह विवाह था।[2]

भारमल जीवन पर्यन्त अकबर का विश्वासपात्र बना रहा। 1572 में उसकी रानी को शाहजादा दानियाल का लालन-पालन सुपुर्द किया गया था। 1573 में उसे अकबर ने अपनी अनुपस्थिति में मुगल राजधानी की देखभाल का उत्तरदायित्व सौंपा था। आगरा में रहते हुए भारमल ने आगरा की अफगानों के अचानक आक्रमण से रक्षा की तथा दिल्ली की रक्षा के लिए उस समय सेना भेजी जब सरनाल के युद्ध में पराजित इब्राहीम हुसैन मिर्जा भागकर पंजाब की ओर आया था और बादशाह स्वयं दिल्ली से बहुत दूर गुजरात में था। अपनी इन सेवाओं के फलस्वरूप राजा भारमल की मुगल सेवा में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। अपनी मृत्यु के समय (27 Jan ,1574) वह (राजा भारमल) पाँच हजारी का मनसबदार था[3] जो उस समय अकबर के शासन-काल का उच्चतम मनसब माना जाता था। इस प्रकार राजा भारमल ने अकबर की अधीनता स्वीकार करके तथा मुगलों के साथ राजनैतिक विवाह करके अपनी स्थिति को ही सुदृढ़ नहीं किया, वरन् उसने आमेर राज्य के गौरव की भी वृद्धि की थी। अतः केवल Sentimental Grounds पर आमेर की राजकुमारी के विवाह की आलोचना करके राजा भारमल के चरित्र पर जो आक्षेप इतिहासकारों के द्वारा किए गए हैं वे ऐतिहासिक दृष्टि से उचित नहीं है। अकबर ने भारमल की पुत्री को मुगल हरम में उच्च स्थान दिया था। वह जीवन काल में अकबर की पटरानी बनी रही और मृत्यु के पश्चात् भी उसे अकबर के निकट ही सिकन्दरा में दफनाया गया।[4]

1 अपने भाई रूपसी की पुत्री का [illegible] 'रूपसी बैरागी' [illegible] भी। (देखिए अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, जिल्द 3, पृष्ठ 49)।

2 See my paper 'Mughal Rajput Matrimonial Alliances' contributed to Journal of Indian History, University of Kerala, Trivandrum.

3 [illegible], हिन्दी अनुवाद, [illegible], पृष्ठ 267

4 Dr. A. L. Srivastava, Medieval Indian Culture

भारमल के दस पुत्र थे जिनमे 'सबसे बडा पुत्र भगवन्तदास था और दूसरे नम्बर भगवानदास था ।[1] यद्यपि सस्कृत शिलालेखो तथा समकालीन राजस्थानी ग्रथो[2] मे भगवन्तदास को भारमल के पश्चात् आमेर का राजा लिखा गया है लेकिन जहागीर ने अपनी आत्म-कथा मे भारमल के पश्चात् भगवानदास को और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके दत्तक पुत्र मानसिह को आमेर का राजा होना लिखा है । चू कि जहागीर स्वय राजा भारमल की पुत्री से उत्पन्न हुआ था और उसका विवाह भी आमेर की राजकुमारी मानमती के साथ हुआ था अत जहागीर के कथन को एकाएक असत्य नही माना जा सकता । लेकिन अकबर के दरबारी इतिहासकार अबुलफजल को गलत मानने का भी कोई कारण नजर नही आता । अबुलफजल ने अपने ग्रन्थ 'अकबरनामा' मे स्पष्ट रूप से लिखा है कि भगवन्तदास आमेर का टीकाई राजकुमार था ।[3] अकबर के शासन काल मे जितने युद्ध लडे गए उनमे भगवन्तदास तथा उसके पुत्र मानसिह ने ही भाग लिया था । अकबरनामा को पढने से कही भी नजर नही आता कि भगवन्तदास का भाई भगवानदास भी शाही सेवा मे था । दो तीन स्थलो पर भगवानदास का प्रयोग अवश्य किया गया है लेकिन प्रसग से स्पष्ट हो जाता है कि भगवन्तदास का प्रयोग पर्यायवाची शब्दो के रूप मे किया गया है । अतएव यह कहना बडा मुश्किल है कि अकबर ने भगवन्तदास को ही आमेर की गद्दी का टीका नही देकर उसके भाई भगवानदास को आमेर का राज्य दिया हो । नैणसी ने तथा आमेर की ख्यातो और वशावलियो के रचियताओ ने भगवानदास के लिए भी 'राजा' का प्रयोग किया है । नैणसी एक स्थान पर तो आमेर का टीका भगवन्तदास को मिलना लिखता है और दूसरे स्थान पर भगवानदास को आमेर का 'राजा' लिखता है ।[4] वशावलियो को पढने से यह भी स्पष्ट जाहिर होता है कि भगवानदास लवान का 'राजा' था ।[5] अत मैं इस निष्कर्ष पर पहुचा हू कि भारमल की मृत्यु के पश्चात् आमेर के कतिपय सरदारो ने भगवन्तदास की अनुपस्थिति

राजा भगवन्तदास

1574–1589

1 नैणसी की ख्यात, जिल्द 1, पृष्ठ 291 (राज० पुरातन ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित)

2 देखिए जम्वारामगढ शिलालेख 1613 A D वा रागमजरी लेखक पु डरीक विठ्ठल

इस ग्रन्थ की रचना मानसिह के भाई माधोसिह के सरक्षण मे हुई थी । अत इस ग्रन्थ को एकाएक गलत नही माना जा सकता है ।

3 अकबरनामा (वेवरिज कृत अनुवाद) जिल्द 2, पृष्ठ 244

4 नैणसी ख्यात, जिल्द 1, पृष्ठ 297

5 जयपुर की वशावली (सीतामऊ पुस्तकालय की प्रति), आमेर की ख्याते (स्वर्गीय ओझाजी के सग्रह मे)

ए० स्मिथ ने स्वीकार भी किया है लेकिन समकालीन ग्रन्थो मे इस घटना का कहीं वर्णन नही मिलता । अत किंवदती को ऐतिहासिक सत्य नही माना जा सकता ।

1570 मे नागौर के मुकाम पर जैसलमेर के शासक रावल हरराय ने अपनी पुत्री का विवाह अकबर के साथ करने की इच्छा प्रकट की । उस वक्त भगवन्तदास भी कदाचित बादशाह के साथ नागौर मे मौजूद था क्योकि इसे ही जैसलमेर की राजकुमारी का डोला लाने के लिए भेजा गया था ।

दिसम्बर 1572 मे अकबर के गुजरात अभियान मे भगवन्तदास बादशाह के साथ था । सरनाल के युद्ध मे इसने वफादारी और बहादुरी का परिचय दिया ।[1] अत इसे झडा और नक्कारा प्रदान किया गया जो इससे पहले हिंदू राजा को प्रदान नही किया गया था ।

भगवन्तदास को मेवाड के राणा प्रताप को समझाने के लिए भी भेजा गया था कि वह शातिपूर्वक अकबर की आधीनता स्वीकार कर ले ।

अब तक भगवन्तदास ने मुगल साम्राज्य की जो सेवा की थी वह कुवर के रूप मे की थी । उसका पिता राजा भारमल जीवित था । लेकिन फारसी के इतिहासकारो ने 1562 के पश्चात् जिस किसी घटना का वर्णन किया वहाँ भगवन्तदास के लिए राजा का प्रयोग किया । राजपूत परम्परा के अनुसार पिता के जीवनकाल मे उसके पुत्र को 'राजा' कहकर सम्बोधित नही किया जाता । ऐसा प्रतीत होता है कि फारसी की तवारीख लेखको ने इस परम्परा को कोई विशेष महत्व नही दिया । उनकी नकल करके आधुनिक इतिहासकारो ने भी इस पर कोई ध्यान नही दिया । अन्यथा कछवाहो के इतिहास की तथाकथित उलझन स्वय सुलझ जाती । भारमल की सही मृत्यु तिथि निश्चित करने में भी कठिनाई का सामना नही करना पडता और यह भी स्पष्ट हो जाता कि भारमल की मृत्यु के पश्चात् आमेर की गद्दी का अधिकारी कौन हुआ था ।

1573 मे अकबर ने गुजरात पर आक्रमण करने के लिये जो सेना भेजी थी उसके Advance Guard मे शुजातखां और सैयद महमूद के अलावा भगवन्तदास तथा रामसिंह को भी भेजा गया था । अहमदाबाद के युद्ध से पहले हतोत्साहित मुगल सेना को उत्साहवर्द्धन भगवन्तदास के द्वारा ही कराया गया था ।

अहमदाबाद की विजय के पश्चात् बादशाह अकबर की आज्ञा से भगवन्तदास सितम्बर–अक्तूबर 1573 मे राणा प्रताप से मिलने के लिए गोगुन्दा भेजे गये थे । भगवन्तदास के समझाने बुझाने पर राणा प्रताप अपने पुत्र और उत्तराधिकारी

1 इस युद्ध मे बादशाह के दाए व बाए भाग मे भगवन्तदास तथा उसका पुत्र मानसिंह था । अकबर के पास मुट्ठी भर सैनिक होते हुए भी वह शत्रु को पराजित करने में सफल हुआ था । अत विजय होने के पश्चात् उसने भगवन्तदास को विशिष्ट सम्मान प्रदान किया था ।

फरवरी 1585 मे राजा भगवन्तदास ने अपनी पुत्री मानबाई का विवाह हिन्दू और मुस्लिम प्रथा के अनुसार शाहजादा सलीम के साथ सम्पन्न किया। यह शादी राजा भगवन्तदास की हवेली से ही की गई थी और लडकी के मा बाप ने हिन्दू धर्म की परम्परा के अनुसार कन्यादान भी दिया था। अत इस विवाह का मुगलकालीन भारत के इतिहास मे सास्कृतिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है।

इस विवाह के कुछ समय पश्चात् ही अकबर ने राजा भगवन्तदास को 5000 का मन्सब प्रदान किया था।

दिसम्बर 1585 मे अकबर ने भगवन्तदास को काश्मीर–विजय करने के लिए भेजा। मार्च 1586 ई० मे राजा ने काश्मीर के शासक को अकबर के दरबार मे प्रस्तुत किया।

1586 मे राजा भगवन्तदास को काबुल भेजने की आज्ञा दी गई। वहाँ से वापस लौटने पर लाहोर मे 14 नवम्बर 1589 के दिन भगवन्तदास की इस्तफराग रोग से मृत्यु हो गई। अकबर की आज्ञा से शाहजादा सलीम आमेर शोक प्रकट करने के लिए आया। अकबर ने स्वय इसके पुत्र और उत्तराधिकारी मानसिह को एक व्यक्तिगत पत्र भी भेजा था। इस प्रकार राजा भगवन्तदास को अपने जीवनकाल मे भारत के समकालीन मुगल सम्राट अकबर का पूर्ण सहयोग विश्वास एव सम्मान प्राप्त था। इसके कारण वह अपने पैतृक राज्य आमेर मे ना केवल अनुशासन ही स्थापित कर सका, वरन् आमेर के राज्य का गौरव व प्रतिष्ठा राजस्थान की प्राकृतिक सीमाओ को लाघकर पजाब, गुजरात तथा मुगल साम्राज्य के दूसरे भागो म पहुचाया। इसका मिला–जुला परिणाम यह निकला कि आमेर का राज्य शीघ्र ही राजस्थान का प्रमुख राजपूत राज्य बन गया।

महाराजा मानसिह
1562–1614 A D

मानसिह का जन्म पौष बदि 13 वि० स० 1607 (1550 A D) के दिन ग्राम मोजमाबाद[1] मे हुआ था। जहागीर ने अपनी आत्मकथा मे इसे आमेर के राजा भगवानदास का भतीजा लिखा है। मआसिरुल उमरा के अनुवादक श्री व्रजरत्नदास ने इन्हे राजा भगवतदास के भाई जगतसिह का पुत्र बताया है लेकिन 'मआसिरुल उमरा' मे इन्हे राजा भगवतदास का पुत्र ही लिखा गया है। आमेर मे प्राप्त शिलालेखो, ख्यातो तथा वशावलियो मे इन्हे राजा भगवन्तदास का पुत्र लिखा गया है।
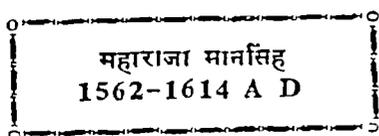
नैणसी ने अपनी ख्यात मे भगवानदास के तीन पुत्रो का वर्णन किया है

1 नैणसी, भाग I, पृष्ठ 297

कुवर सग्रामसिहजी (नवलगढ) का लेख 'Rajasthani Painting' मे मानसिह का जन्म-स्थान ग्राम मोजमाबाद लिखा है। मोजमाबाद दूदू के पास है। जिस हवेली मे मानसिह का जन्म हुआ था उसका फाटक नवीन है।

मील की दूरी कर स्थित है। अबुलफजल भ्रम से उदयपुर और उदयसागर को एक ही समझ बैठा। आमेर की ख्यातो मे इस भेंट का निम्न प्रकार वर्णन किया गया है —

"अर राणाजी षबर पाय डेरै आया आपस मे, सुष समाचार हूवा जदि राणाजी षई आज आपकी मिजमानी छै महाराज षई षीर घणी कराज्यो। सो राणा जी तयारी करी अर जीमण की तयारी मगाई। पुरसगारी हुई। अर राणाजी न षई आप भी जीमण बैठो। राणाजी षई आप जीमू जदि हजूर षई आप जीमवा बैठस्योतो म्हे भी जीमस्या। जदि राणाजी षई म्हारे गिरानी छै आप जीमो जदि आप उठ बैठया।" (पृष्ठ 15)[1]

अत राणाप्रताप और मानसिंह की भेंट को केवल दतकथा कहकर अस्वीकार नही किया जा सकता। लेकिन इस भेंट के साथ मानसिंह का अपने 'फूफा' अकबर के साथ मेवाड आने की जो बात राणाप्रताप के मुख से परवर्ती चारण व भाटो के द्वारा कहलाई गई है वह अनेक युगो बाद प्रचलित होने वाली कल्पनापूर्ण कथा हो सकती है। मूलकथानक ऐतिहासिक घटना से लेकर उसमे कल्पना का पुट दे दिया गया है। मानसिंह के असफल हो जाने के बाद ही बादशाह ने भगवन्तदास को प्रताप के पास भेजा था।

तत्पश्चात् अकबर मानसिंह को अपने पिता के साथ बगाल अभियान पर पटना तक ले गया था।

मार्च 1576 मे अकबर ने मेवाड पर चढाई करने का निश्चय किया। मेवाड पर भेजी जाने वाली सेना का प्रधान सेनापति कुवर मानसिंह कछवाहा नियुक्त किया गया। मानसिंह 2 अप्रेल 1576 के दिन अजमेर से मेवाड के लिए रवाना हुआ। जून 1576 मे राणा प्रताप तथा मानसिंह के बीच हल्दीघाटी के स्थान पर युद्ध हुआ। इस युद्ध[2] मे राणा प्रताप की पराजय तथा मानसिंह की विजय हुई।

जनवरी 1580 मे कुवर मानसिंह ने काश्मीर के निर्वासित शासक युसुफखा को फतहपुर सीकरी के स्थान पर अकबर से परिचित कराया।

इसी वर्ष मानसिंह को अपने पिता भगवन्तदास के साथ मिर्जा हकीम के विद्रोह का दमन करने के लिए काबुल जाने की आज्ञा दी गई। सिंध नदी के पश्चिमी

---

1 नैणसी ने इस भेंट का इन शब्दों में वर्णन किया है —

"(राणा) मेहमानी करी। जीमण पगा विरस हुवो। तद मानसिंह दरगाह गयो।" ख्यात, जिल्द 1, पृष्ठ 39

राजप्रशस्ति मे भी लिखा हुआ है कि भोजन के समय राणाप्रताप तथा मानसिंह के बीच मनोमालिन्य हो गया था—

"मानसिंहेन तस्यासी द्वैमनस्यं भुजे दिजो"

2 हल्दीघाटी के युद्ध का वर्णन विस्तार मे 'मेवाड के इतिहास' नामक ग्रन्थ मे किया गया है।

तट पर मानसिंह अपने बहादुर सैनिकों के साथ मौजूद था। लेकिन बादशाह की आज्ञानुसार इन लोगों ने मिर्जा हकीम की सेना का कोई विरोध नहीं किया और वह स्वयं काबुल वापस लौट गया। जून 1581 में जब बादशाह अकबर स्वयं काबुल गया तब कुंवर मानसिंह भी उसके साथ था। काबुल की विजय में मानसिंह ने अपने साथियों सहित सक्रिय सहयोग दिया था। अन्त युद्ध समाप्ति के पश्चात् मानसिंह को सिंधु नदी के तट की सुरक्षा के लिए नियुक्त किया गया।

मानसिंह ने भी अपने पिता तथा दूसरे हिन्दू सरदारों के साथ दीन इलाही को स्वीकार करने से इन्कार किया था।

1584 में अब्दुल्लाखां उजबेग ने बदख्शां को अपने अधिकार में कर लिया। अतः बदख्शां का निर्वासित शासक सुलेमान मिर्जा अपने पौत्र शाहरुख मिर्जा के साथ अकबर की सहायतार्थ काबुल आया। उस समय सीमान्त प्रान्त के गवर्नर मानसिंह ने बादशाह अकबर की ओर से शाहरुख मिर्जा का स्वागत किया था और अपने साथ उसे अकबर की राजधानी फतहपुर सीकरी ले गया जहां बादशाह ने निर्वासित राजकुमार से 5 जनवरी 1585 के दिन भेंट की।

दिसम्बर 1585 में मानसिंह ने काबुल पर अधिकार कर लिया। उस समय मिर्जा हकीम के नाबालिग पुत्रों को बन्दी बनाया गया तथा [illegible] मकाम पर उनका बादशाह से परिचय कराया गया।

इसी वर्ष अकबर ने मानसिंह को काबुल का सूबेदार नियुक्त किया। काबुल में रहते हुए इसने रोशनाईयों के विद्रोह का दमन किया। [illegible] वायु को पसन्द नहीं करता था और साथ ही [illegible] अफगान लोग बुरी तरह पीड़ित थे। अतः दिसम्बर 1587 में मानसिंह को काबुल से हटाकर बिहार का सूबेदार नियुक्त किया गया। [illegible] में कुछ समय ठहरा था। [illegible] अकबर से परिचय कराया (24 फरवरी 1587)।

अधिकार कर लिया था । अत बिहार मे शाति स्थापित कर लेने के पश्चात् मानसिंह को उडीसा पर आक्रमण करने का निश्चय करना पडा । आक्रमण का कारण यह था कि कुतुलुखा के नेतृत्व में अफगानो ने मुगल प्रदेशो पर छापे मारने शुरू कर दिये थे और कतिपय स्थानो से मुगल फौजदारो के पाव उखाड दिए थे । चूंकि मानसिंह ने सफलतापूर्वक बिहार मे विद्रोहियो का दमन किया था अतएव वादशाह ने उडीसा मे व्यवस्था करने का कार्य भी मानसिंह को सौपा लेकिन मानसिंह उस समय निम्न कारणो से तुरत उडीसा पर आक्रमण करने के लिए तैयार नही था —

(i) उसके सैनिक बिहार मे युद्ध लडते लडते थक गए थे ।

(ii) बगाल का मुगल सूबेदार सैदखा अपने सैनिको को मानसिंह की सहायता के लिए भेजने को तैयार नही था अत उसे (मानसिंह) पहाडखा तथा राय पत्रदास (बगाल के प्रमुख जमीदारों) को सैनिक सहायता देने के लिए तैय्यार करने में समय लग गया ।

अतएव मानसिंह अकबर से आज्ञा प्राप्त होने के लगभग एक वर्ष बाद (1589) बर्दवान के मार्ग से उडीसा पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुआ । आक्रमणकारी सेना का अग्रिम भाग मानसिंह के पुत्र जगतसिंह के नेतृत्व मे था । लेकिन जगतसिंह की अनुभवहीनता के कारण मुगलो को सफलता नही मिली, स्वय जगतसिंह को भाग कर बकुरा जिले मे स्थित विशनगढ के दुर्ग में शरण लेनी पडी । स्वाभाविक रूप से मुगलो और उडीसा के नए शासक (कुतुलुखा के पुत्र नासिर खा) के बीच सधि हो गई (अगस्त 1589) । इस सधि के अनुसार नासिरखा को उडीसा का शासक स्वीकार किया गया । उसने मुगल वादशाह का आधिपत्य स्वीकार किया तथा अकबर के नाम से खुतुवा पढवाना भी मजूर किया । इसी सधि की एक शर्त के अनुसार पुरी जिले मे स्थित जगन्नाथ का मदिर मुगल सम्राट के प्रत्यक्ष नियत्रण मे रखना तय पाया । मानसिंह का यह कृत्य उसकी कूटनीतिज्ञता का सबल प्रमाण था ।[1]

लेकिन यह सधि क्षणिक सिद्ध हुई क्योकि सधि की शर्तें अफगानो और उडीसा के राजा रामचन्द्र देव के अनुकूल नही थी । अकबर ने स्वय इस सधि की (nelur- tantly) अनिच्छा से स्वीकृति प्रदान की थी । 1589 मे मानसिंह को बिहार छोडकर जाना पडा क्योकि राजा भगवन्तदास की 14 नवम्बर 1589 के दिन मृत्यु हो गई थी । मानसिंह की अनुपस्थिति से फायदा उठाकर असन्तुष्ट रामचन्द्रदेव ने विशनगढ के राजा पर धावा बोल दिया क्योकि उसने मानसिंह के पुत्र जगतसिंह को शरण दी

1 "This was a stroke of diplomacy which aimed at concilia ting the Hindu sentiment and create a congenial atmosphere for posing the Mughals as the saviour of Hindu religion against the brutal aggressaions of the Afghans and there by preparing ground for crushing of the Afghans"

थी। अत रामचन्द्र देव की हरकतों को उसने प्रतिद्वन्द्वियों (उडीसा के भूतपूर्व शासक मुकुन्ददेव के पुत्रों) ने शीघ्र बादशाह अकबर के कानों तक पहुँचा दिया।[1] अतएव मानसिंह को उडीसा के विरुद्ध नवम्बर 1591 मे पुन कूच करना पडा। इस समय बगाल की सेना भी राजा मानसिंह के साथ थी। यद्यपि बगाल की सेना मानसिंह का पूर्ण सहयोग प्रदान नही कर रही थी, लेकिन फिर भी राजा मानसिंह ने नासिरखा के सधि पैगाम को स्वीकार नही किया क्योकि वह अच्छी तरह जानता था कि अफगान लोग मुगलो को भुलावे मे डालकर अपनी शक्ति बढाना चाहते थे। मानसिंह के नेतृत्व म मुगल सेना निरतर बढती गई। नासिर खा और उसके साथियो को Saranegarh के किले मे शरण लेनी पडी। इस प्रकार 1592 मे उडीसा मुगल साम्राज्य का अग बन गया।

नासिरखा को पराजित करने के पश्चात् मानसिंह ने उडीसा के [illegible] शाली जमीदारो का भी दमन किया। लेकिन मानसिंह की उडीसा विजय [illegible] अन्यत्र विजयो से भिन्न थी।[2] ना तो उडीसा के राजा रामचन्द्रदेव को [illegible] दार नियुक्त किया था और ना ही मानसिंह ने वहाँ कोई नया शासन स्थापित किया। जब रामचद्रदेव ने अकबर का आधिपत्य स्वीकार कर लिया तो उसका राज्य छीनकर किसी दूसरे राजा को नहीं दिया गया।

अकबर ने मानसिंह से प्रसन्न होकर उसे बिहार के अतिरिक्त बगाल का सूबा भी प्रदान किया। बगाल म मानसिंह [illegible] रामहल की स्थापना की [illegible] राजधानी उस सूबे की राजधानी बन गई। उसने शेरगढ के निकट [illegible] का भी निर्माण [illegible] किया।

बगाल व बिहार के सूबेदार के रूप मे

बाध्य किया। ढाका को मानसिंह ने अपना हेडक्वार्टर बना लिया। बगाल मे कतिपय विद्रोहों का दमन करके मानसिंह ने वहा शाति और व्यवस्था स्थापित की। 1593 मे अकबर ने मानसिंह को शाहजादा मुराद की सहायता के लिए दक्षिण जाने की आज्ञा दी। लेकिन आज्ञा जारी करते समय बादशाह ने लिखा था कि मानसिंह उसी सूरत मे दक्षिण के लिए रवाना हो जब बगाल मे उसकी आवश्यकता नही हो। चूकि मानसिंह दक्षिण नही गया था अत यह स्पष्ट है कि बगाल की परिस्थितिया अनुकूल नही थी।

1597 मे मानसिंह को सलीम के साथ मेवाड के राणा अमरसिंह के विरुद्ध जाने की आज्ञा दी गई। इस समय अजमेर मे रहते हुए सलीम का मस्तिष्क विकृत हो गया और उसने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह करने का तय किया। बादशाह इस वक्त दक्षिण में था। मानसिंह ने सलीम को सलाह दी थी कि वह बगाल जाकर वहा के विद्रोही अफगानो का दमन करे। लेकिन सलीम ने मानसिंह की सलाह न मानकर मुगल राजधानी आगरा की ओर कूच किया। बगाल मे उपद्रव और विद्रोह के समाचार पाकर राजा मानसिंह को भी सलीम के साथ ही साथ राजस्थान से रवाना होना पडा।

सलीम के विद्रोह के प्रति मानसिंह का दृष्टिकोण

शाहजादा सलीम, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, आमेर की राजकुमारी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। इसका विवाह भी मानसिंह की बहिन से हुआ था। लेकिन फिर भी मानसिंह ने विद्रोह काल मे शाहजादा सलीम का साथ नही दिया। इसके कई कारण हो सकते हैं। यहा केवल इतना लिखना ही पर्याप्त होगा कि मानसिंह सलीम के रहन-सहन के तरीके से प्रसन्न नही था। मानसिंह अपने दूरदर्शी दृष्टिकोण के बल पर यह जान गया था कि सलीम अपने इरादो मे सफल नही हो सकता। इसलिए उसने सलीम को विद्रोह के लिए प्रोत्साहित करने के स्थान पर बगाल जाकर बलवाइयो का दमन करने की नेक सलाह दी थी। लेकिन सलीम ने मानसिंह की इस सलाह को ठुकरा दिया। अत मानसिंह ने विद्रोही शहजादे का साथ ही नही दिया वरन् उसके विद्रोह का दमन करने मे भी एक वफादार मन्सबदार के रूप में अपनी योग्यता का परिचय दिया। इसका मिलाजुला परिणाम यह निकला कि अकबर ने अपने शासन काल के अन्तिम वर्ष मे राजा मानसिंह को 7000 जात व 6000 सवार का मन्सब प्रदान किया जो उसके शासन काल मे किसी भी सरदार–हिंदू अथवा मुसलमान–को प्रदान किया जाने वाला ऊचा से ऊचा मन्सब था।

अकबर की मृत्यु से कुछ समय पूर्व सलीम को राजगद्दी से वंचित करने के उद्देश्य से मिर्जा अजीज कोका तथा राजा मानसिंह के द्वारा सलीम के पुत्र खुसरो को

लिया। इसी समय भारमल ने अपने सम्बन्धों को घनिष्ठ बनाने की गरज से अपनी पुत्री का सम्राट के साथ विवाह करना चाहा। अकबर ने इसे भी स्वीकार करके अन्तर्जातीय विवाह की एक ऐसी नजीर अपने उत्तराधिकारियो के लिए प्रस्तुत की जो मुगल साम्राज्य के हित मे सर्वथा लाभप्रद सिद्ध हुई। अकबर ने कतिपय राजपूत राजघरानो के साथ वैवाहिक सम्बन्ध ही स्थापित नही किए, बल्कि इन राजपूत राजाओ की सैनिक योग्यता का विभिन्न विजयो मे पूरा पूरा उपयोग किया। अकबर ने प्रत्येक अभियान मे एक मुसलमान व एक हिन्दू सरदार को सेना नायक बनाने की नीति बना ली थी। इन सैनिक सेवाओं के ऐवज मे मन्सब व अतिरिक्त जागीरें प्रदान की जाने लगी। बहुत शीघ्र अकबर का इन राजपूत राज्यो पर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो गया। पहले राजा के मरने के बाद अकबर उसके पुत्र को उसकी इच्छानुसार उत्तराधिकारी स्वीकार करता था। लेकिन बाद मे उसने तथा उसके उत्तराधिकारियो ने अपनी इच्छा से भी राजा नियुक्त करने शुरू कर दिए थे। चूंकि अकबर की नीति पूर्ण अधिपत्य स्थापित करने की थी अत उसने प्रत्येक नए राजा के ललाट पर 'टीका' लगाने की रस्म जारी की। बाद मे यह रस्म एक ऐसी परिपाटी बन गई जिसका प्रयोग सम्राट की अनुपस्थिति मे उसके नुमाइन्दे भी करने लगे। आमेर, मारवाड, बीकानेर तथा कोटा राज्य के इतिहास इस बात के साक्षी है कि अकबर ने अपनी उदार एव सहिष्णु नीति के द्वारा राजपूत राज्यों को पूर्ण रूपेण अपने अधिकार मे कर लिया था। यदि अकबर ने ऐसी नीति नही अपनाई होती तो कदाचित् राजपूत राजाओं की सेवाए अपने दूसरे साथी राज्यो को पदाक्रान्त करने में उपयुक्त नही कही जा सकती थी। अकबर ने किस प्रकार पारिवारिक फसादो का बहाना बनाकर आमेर व मारवाड के राज्यो पर अपना राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित किया इसका वर्णन पिछले पृष्ठो में कर दिया गया है।

आमेर के राजा 1614 से 1621 तक

मानसिह का ज्येष्ठ पुत्र जगतसिह उसके जीवन काल मे ही 9 अक्तूबर 1599 के दिन आगरा मे मृत्यु को प्राप्त हो चुका था। अत अपने जीवित ज्येष्ठ पुत्र महासिह को मानसिह ने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था लेकिन मुगल बादशाह जहागीर ने मानसिह की इच्छा तथा उत्तराधिकार सम्बन्धी हिन्दू प्रथा की उपेक्षा करके मानसिह के एक मात्र जीवित पुत्र

भाऊसिह

भाऊसिह को 27 6 1615 के दिन आमेर के राज्य का टीका, चार हजारी मनसब तथा मिर्जाराजा की उपाधि दी। महासिह को सन्तुष्ट करने के लिए [illegible] (आधुनिक जबलपुर) की जागीर तथा 'राजा' की उपाधि प्रदान की गई। महासिह स्वयं तो अपनी नई जागीर के लिए चला गया लेकिन पुत्र और पत्नियों को [illegible] ले गया था। दक्षिण में रहते हुए महासिह की 26 वर्ष की अल्प आयु [illegible] हो गया। उस समय उसका पुत्र जयसिह केवल [illegible] वर्ष का था।

अपूर्व योग्यता और साहस का परिचय दिया था। अत उसे उचित इनाम इकराम दिए गए।

तत्पश्चात् जयसिंह को खानेजहा लोदी के नेतृत्व मे मलिक अम्बर (अहमदनगर) का दमन करने के लिए दक्षिण मे नियुक्त किया गया। जहागीर की मृत्यु के पश्चात् खानेजहा लोदी ने विद्रोह कर दिया। लेकिन जयसिंह विद्रोहियों से बहुत दूर था।

दक्षिण मे

1637 तक दक्षिण के विभिन्न युद्धो में अपनी सैनिक योग्यता का प्रमाण देकर जयसिंह ने प्रथम श्रेणी के सेनानायक की प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी।

14 जनवरी 1628 के दिन जयसिंह ने मुगल बादशाह जहागीर के पुत्र और उत्तराधिकारी शाहजहा से अजमेर मे आनासागर की पाल पर भेंट की। शाहजहा की आज्ञा से यह महावन (मथुरा) के विद्रोहियो का दमन करने के लिए अप्रेल 1628 मे गया था। तत्पश्चात् इसे खानेजहा लोदी के विद्रोह का दमन करने के लिए पुन दक्षिण भेजा गया। खानेजहा लोदी के विद्रोह का दमन करने में जयसिंह ने अपूर्व साहस और योग्यता का परिचय दिया था। अत बादशाह ने उसकी सेवाओ की सराहना की और उसका मन्सब भी बढाकर 4000 जात व 3000 सवार कर दिया गया।

मार्च 1638 में जयसिंह को शाहजादा शाहशुजा के साथ कन्धार के दुर्ग को विजय करने के लिए भेजा गया। जयसिंह की सेवाओ से प्रसन्न होकर बादशाह ने 19 अप्रेल 1639 के दिन 'मिर्जा राजा' की उपाधि से उसे विभूषित किया।

कन्धार में

शाहजहां की आज्ञानुसार ताजमहल के निर्माण के लिए मकराने का सगमरमर (बैलगाडियो के द्वारा) तथा आमेर व राजनगर के कुशल कारीगर जयसिंह के द्वारा ही आगरा भेजे गये थे।

शाहजहां ने प्रसन्न होकर 5000 जात व सवार का मन्सब जयसिंह को प्रदान किया तथा चाटसू का परगना भी उसे दिया गया।

"His unbroken record cf success established his reputation as a great warrior and skilful general, and at the young age of 25 he became Panj hazari which he shared with more senior officers like Gaj Singh, Shaista Khan etc" (Dr Tripathi)

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है मार्च 1638 में जयसिंह को शाहशुजा के साथ कन्धार विजय करने के लिए भेजा गया था। 1641 मे इसे शाहजादा मुराद के साथ काबुल जाने की आज्ञा दी गई। काबुल जाते समय मार्ग मे इसने नूरपुर, कागडा के राजा जगतसिंह को पराजित किया।

जयसिंह की अफगानिस्थान तथा मध्य एशिया में सेवाए

1642 में इसने दारा के साथ कन्धार की रक्षा की। इन सेवाओं की एवज

कन्धार के तृतीय अभियान में भी जयसिंह को शाहजादा दारा के साथ भेजा गया था लेकिन इस अभियान के दौरान दारा और जयसिंह के सम्बन्ध बिगड गए थे। अभियान की समाप्ति पर सभी सरदारों को इनामात दिए गए। उस समय मिर्जा राजा को केवल एक खिल्लत प्रदान की गई। अत 1654 से 1657 तक जयसिंह मुगल सम्राट का कृपापात्र नही रहा। जयसिंह ने दारा के इस अपमानजनक व्यवहार को विस्मृत नही किया।

इस प्रकार पिछले तीस वर्षों मे मिर्जा राजा जयसिंह ने बडी तत्परतापूर्वक मुगल साम्राज्य की सेवा की। सुदूर दक्षिण मे विद्रोही खानेजहालोदी एव महमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा के स्वाधीन राज्यों पर निरन्तर होने वाली सभी चढाइयों मे वह सम्मिलित हुआ तथा उनमें उसने महत्वपूर्ण भाग लिया। बलख तथा बदक्शा के युद्धो मे तथा कन्धार के तीनों घेरों के अवसरो पर भी जयसिंह ने उल्लेखनीय सेवाए की जिसके एवज मे कामा आदि परगने उसके पुत्र कीरतसिंह को मिले तथा मिर्जा राजा के मन्सब से अधिक सवार दो अस्पा सेह अस्पा कर दिए गए। परन्तु शाहजादा दारा मिर्जा राजा से अप्रसन्न हो गया था अत शाहजादा के शासनकाल मे उसकी सेवाओं का उसे उचित पुरस्कार नहीं मिल सका।

उत्तराधिकार के युद्ध मे मिर्जा राजा जयसिंह का भाग

कन्धार के तृतीय अभियान की समाप्ति के पश्चात् जोधपुर नरेश राजा जसवन्तसिंह को तो हफ्त हजारी बना दिया गया था जबकि मिर्जाराजा जयसिंह केवल पच हजारी मन्सबदार ही बना रहा। जयसिंह इस व्यवहार से असन्तुष्ट था। अत सुलेमान शिकोह के साथ विद्रोही शाहजादे शुजा के विरुद्ध भेजने से पूर्व मिर्जाराजा को भी 6000 जात व 5000 सवार का मन्सब प्रदान किया गया। शुजा को तो इसने बहादुरपुर के युद्ध मे पराजित कर दिया। लेकिन जब वह बनारस मे था तब ही उसे सूचना मिली कि औरगजेब और मुराद की सेनाओं ने दारा को सामूगढ़ के युद्ध मे पराजित कर दिया है अत उसने दारा की तरफ से लडना निरर्थक समझा।

मिर्जा राजा जयसिंह तथा औरगजेब के बीच उत्तराधिकार का सघर्ष छिड़ने से पूर्व जो पत्र-व्यवहार हुआ था उससे स्पष्ट है कि जयसिंह शाहजादा औरगजेब को मुगल दरबार से सम्बन्धित सूचनाए भिजवाता रहा था। लेकिन उसने युद्ध काल में किसी पक्ष का साथ नही दिया। युद्ध शुरू होने से पहले दारा ने जयसिंह के साथ अपने सम्बन्ध अच्छे करने की गरज से उसे निवाई का परगना प्रदान किया, उसका मन्सब बढाकर सात हजारी कर दिया गया और बहादुरपुर की विजय के बाद उसे लिवाली का परगना भी प्रदान किया गया। दारा ने इस समय जो [illegible] मिर्जाराजा के नाम भेजे थे उनमे खुशामदाना भाषा का प्रयोग किया गया था। 3 [illegible] 1658 के निशान मे लिखा गया था, "You have achieved what [illegible] P.

जीवन के द्वारा गिरफ्तार करवाकर उसे औरंगजेब के हवाले करना यदि उसकी दारा के प्रति बेवफाई नही तो कम से कम मिर्जाराजा का Revengeful attitude अवश्य बतलाती है। जसवन्तसिह उसका प्रतिद्वन्दी था। प्रतिद्वन्दी को पत्र लिखकर दारा से विमुख करना क्या सिद्ध करता है, इसका निर्णय स्वय पाठकगण निकालें।

जयसिह और शिवाजी

दारा के पतन के पश्चात् बादशाह औरंगजेब ने मिर्जाराजा जयसिह की सितम्बर 1659 में दक्षिण मे नियुक्ति की। उसकी नियुक्ति करते समय आदेश दिया गया था कि वह मराठो का दमन करे तथा बीजापुर पर निगाह रक्खे। जयसिह पूरे पाच वर्ष तक दक्षिण में रहा। इस बीच मे उसने रात और दिन एक करके अपने फर्ज को निभाया। स्वय मिर्जाराजा जयसिह ने एक पत्र मे औरंगजेब को लिखकर भेजा था—"जिस काम के लिए मैं भेजा गया हूँ उससे मैं दिन या रात मे एक मिनट भी आराम नही लेता हू।" जयसिह ने शिवाजी के विरुद्ध ऐसा वातावरण पैदा किया कि उसके सभी शत्रु आपस मे सगठित हो गए। शिवाजी के अधिकारियो को भी धन और मुगल सेवा मे ऊचे पद का प्रलोभन देकर तोडने का प्रयत्न किया गया। सासवाड को अपना केन्द्र–विन्दु बनाकर और मुगल चौकियाँ स्थापित करके जयसिह ने 14 मार्च 1665 के दिन शिवाजी पर आक्रमण करने के उद्देश्य से पूना की ओर कूच किया। पुरन्दर के किले पर घेरा डाल दिया गया।

शिवाजी के द्वारा आत्म-समर्पण

14 अप्रेल के दिन वज्रगढ के सैनिको ने आक्रमणकारी सेना के सम्मुख हथियार डाल दिए। यह किला स्वय मिर्जाराजा जयसिह के शब्दों मे "पुरन्दर के ताले की चाभी थी।" तत्पश्चात् पुरन्दर का विध्वस भी निश्चित प्रतीत होने लगा। शिवाजी का सेनापति मुरारबाजी आक्रमणकारी मुगल सेना के सेनापति दिलेरखा के द्वारा मारा गया। जैसे ही शाही सेना पावल के निकट पहुंची वैसे ही शिवाजी ने आत्म-समर्पण की चर्चा प्रारम्भ कर दी। स्वय मिर्जा राजा जयसिह के शब्दों मे "मेरे पूना पहुचने के समय तक वे मेरे पास उनके दो पत्र ला चुके थे। मैंने उनका कोई उत्तर नही देकर उनको निराश लौटा दिया। तब शिवाजी ने अपने एक विश्वसनीय सेवक कर्माजी के हाथ हिन्दी मे लिखकर एक लम्बा पत्र भेजा जिसमे मुझ से बार-बार यह याचना की कि मैं उस पत्र को केवल एक बार तो पढ़ ही लू। उसमें शिवाजी ने स्वामिभक्त रहने तथा बीजापुर के युद्ध में जहां की सफलता की सम्भावना उसके पहाडी और कठिन देश की अपेक्षा अधिक थी, हमारी मदद करने का वचन दिया उत्तर मे मैंने उनसे कहा कि यदि उनको अपने जीवन तथा सुरक्षा की इच्छा है तो वह बादशाह की नौकरी कर ले।" (हाल अनूदित से उद्धरित)

जयसिह से सुरक्षित वापस लौट जाने का आश्वासन प्राप्त करके शिवाजी मिर्जाराजा से मिलने के लिए 11 जून 1665 के दिन आया। जयसिह ने दर्शनार्थ

देख लिया, तुम्हारे पिता ने देख लिया और तुम्हारे बादशाह ने देख लिया कि मैं किस तरह का आदमी हू, परन्तु फिर भी तुमने जान-बूझकर मुझे इतनी देर से खडा कर रक्खा है । मुझे तुम्हारा मन्सब नही चाहिए ।" यह कहकर शिवाजी औरगजेब की ओर पीठ मोडकर चल दिए और एक खम्भे की आड मे आकर बैठ गए । रामसिह ने उन्हे लाख तरह से समझाने बुझाने की कोशिश की लेकिन वे जिद्द पर चढ गए और कहने लगे, "मेरी मृत्यु का निश्चित दिन आ पहु चा है, या तो तुम मुझे मार डालो, अन्यथा मैं स्वय अपनी हत्या कर लूंगा । भले ही तुम मेरा सिर काट डालो, परन्तु मैं सम्राट् के सामने कदापि नही जाऊ गा ।" अत औरगजेब की आज्ञा से कुवर रामसिह शिवाजी को अपने निवास स्थान पर लिवा लाए ।

कुवर रामसिह ने शिवाजी की रक्षा की

शिवाजी बादशाह के दरबार मे उपस्थित नही हुआ । मिर्जा राजा जयसिह के विरोधियो ने तथा उन असफल मुगल सरदारो ने जिन्हे शिवाजी छका चुका था, औरङ्गजेब के कान भरने शुरू किए ।[1] शाइस्ताखा की बहिन जो मुख्य वजीर जफरखा की बेगम थी और जहानआरा बेगम ने, जिसकी जागीर (सूरत) को शिवाजी ने लूटा था, बादशाह को और भडकाया । अत सम्राट् ने यह निश्चित किया कि या तो शिवाजी को मौत के घाट उतार दिया जाए अथवा उसे नजरबद रक्खा जाए । कुवर रामसिह को बहुत सा रुपया रिश्वत देने के बाद बादशाह के इस निर्णय का पता चला । अत उसने अर्ज की—"शहशाह ने शिवा को मार डालने का निश्चय किया है जो यहा पर मेरे पिता द्वारा दिए गए सुरक्षा के वचन को मानकर आये हैं । अतएव यह उचित है कि शहशाह पहले मुझे मार डालें और मेरी मृत्यु के बाद वह भले ही शिवाजी को मार डाले अथवा और जो कुछ चाहें उनके साथ करें ।" औरङ्गजेब एकाएक मिर्जा राजा जयसिह और रामसिह को अपना विरोधी बनाना नही चाहता था, अत उसने कुवर से जमानती बाड लिखवा लिया कि जब तक शिवाजी आगरे मे है तब तक वहां भाग नही जाए अथवा कोई और शरारत नही कर बैठे । तत्पश्चात् शिवाजी को रदान्दाजखा की हवेली मे नजरबद कर दिया गया । हवेली के चारो ओर फौलादखां का पहरा बिठा दिया गया ।

[illegible] औरङ्गजेब की इस कडी नजरबन्दी के उपरान्त भी शिवाजी 19 [illegible]

---

1 "यह शिवा कौन है जो जहांपनाह की उपस्थिति मे ही इतना [illegible] और उद्धत हो गया । और फिर भी, हजूर सलामत ने उसके आचरण [illegible] दिया ? यदि यही हालत रही तो हर एक छोटा जमींदार यहा आ जाएगा और [illegible] समान ही बिना दण्ड पाये अपनी कारगुजारी कर देगा ।" बादशाह [illegible] के लिए कतिपय सरदारो के द्वारा इस प्रकार अर्ज की गई थी ।

जयसिंह का मूल्यांकन

उसकी आर्थिक दशा बहुत बिगड़ गई थी। सर्वोच्च सम्मान[1] प्राप्त होते हुए भी इन आर्थिक कठिनाइयो, सामरिक-विफलता, निराशा तथा सार्वजनिक अपयश से क्षुब्ध जयसिंह के अन्तिम दिन दु खपूर्ण रहे। उसकी मृत्यु के साथ ही आमेर के राजघराने का भी महत्व घट गया और आगामी चालीस वर्षों तक भारतीय राजनीति मे वह पुन गौरव प्राप्त नही कर सका।

उसमे सैनिक एव सेनापति दोनों के ही गुण विद्यमान थे। शाहजहा के शासन काल में शायद ही ऐसा कोई वर्ष होगा जब जयसिंह ने शाही झडे के नीचे युद्ध नही लडा हो। प्रत्येक युद्ध मे अपनी योग्यता का परिचय देकर तरक्की पाई। इस योग्यता का प्रदर्शन करने की वजह से ही जयसिंह को भारत की सीमाओ के बाहर शाही शाहजादो के नेतृत्व मे सेना के एक पक्ष अथवा मध्य पक्ष की कमान सौंपी गई थी। बाद में तो उसे सेना का मुख्य सेनापति भी बना दिया गया था।

मआसिरूल उमरा का लेखक लिखता है, "उपायों तथा गम्भीर विचारो के लिए वे प्रसिद्ध थे ससार की प्रगति पहचानने और सामयिक विचारों को जानने वाले थे जिससे राज्य-प्राप्ति के आरम्भ से मृत्यु-पर्यन्त प्रतिष्ठा से बिता दिया तथा बराबर उन्नति करते गये।" यह सत्य है जब कभी कोई कठिन कार्य होता था तो सम्राट उसे सदा जयसिंह को ही सौंपता था। मिर्जा राजा अपनी असीम व्यवहार-कुशलता और धैर्य के बल पर कार्य कर भी लेता था। वह मुसलमानो के शिष्टाचार से पूर्ण अवगत था। स्वय तुर्की और फारसी भाषाओ का अच्छा ज्ञाता था। उर्दू और राजस्थानी मे भी सिद्धहस्त था।[2] उसके दरबार में फारसी, हिन्दी और सस्कृत भाषाओ के कई विद्वान रहते थे। बिहारी, पण्डित जगन्नाथ तथा कुलपति मिश्र उससे राजकीय सरक्षण पाते थे।

दूरदर्शिता तथा राजनयिक चतुराई (Diplomacy), बोली की मधुरता और शान्त नियोजित नीति उसके सहज स्वभाव के अङ्ग थे। परन्तु यह गुण राजपूत चरित्र में पाये जाने वाली इस प्रकार की बातो के सर्वथा विपरीत थे। सारांश यह है कि मिर्जाराजा जयसिंह अफगान और तुर्क, राजपूत और हिन्दुस्तानी की सयुक्त सेना का आदर्श नेता था जिसमे सवेगशील उदारता, अटल निर्भीकता, खरी स्पष्ट-वादिता तथा दूरदर्शी शूरवीरता का सुन्दर समागम मौजूद था।

---

1 पुरन्दर की सधि के बाद बादशाह औरङ्गजेब ने मिर्जाराजा का मन्सब बढ़ाकर 7000 जात व सवार दो अस्पा सेह अस्पा कर दिया था। यह ऊंचे दर्जे का मन्सब था (मआसिरुल उमरा, भाग I, P 162)

2 उसने जो कुछ सीखा था वह प्रारम्भ में अपनी माता महारानी दमयन्ती से सीखा था और तत्पश्चात निरन्तर मुसलमानों के सम्पर्क में रहने के कारण सीखा था।

किया। राज्याभिषेक के समय रामसिंह का मन्सब 4000 जात 3000 सवार का था।[1]

रामसिंह की आसाम मे नियुक्ति

इसी समय बादशाह औरंगजेब को सूचना मिली कि आसाम के लोगो ने गौहाटी पर अधिकार करके वहा के मुगल थानेदार सैयद फिरोजखां के पाव उखाड दिये हैं। अतएव 27 दिसम्बर 1667 के दिन राजा रामसिंह को आदेश दिया गया कि वह आसाम विजय करने के लिए रवाना हो जाये।

मध्यकाल मे आसाम कालापानी समझा जाता था। नवाब मीर जुमला के असफल अभियान के पश्चात मुगल कर्मचारी आसाम जाने से डरते थे। डा० जदुनाथ सरकार के शब्दो मे, "Service in Assam was extremely unpopular, and no soldier would go there unless compelled"[2]। इन परिस्थितियो मे राजा रामसिंह की नियुक्ति यही बतलाती है कि बादशाह उसे सजा देना चाहता था।

समकालीन विदेशी यात्री मनूसी लिखता है "As a further piece of revenge for the flight of Shivaji, Aurangzeb ordered Ram Singha, the Rajah's eldest son, to proceed upon the conquest of Assam, simply in the hope of getting rid of him, knowing what had happened there to the great Mirjumla"[3]

रामसिंह के पूर्वज (मिर्जाराजा जयसिंह तथा राजा मानसिंह) आसाम मे विद्रोहियों का दमन करके वहाँ मुगलो का प्रभुत्व स्थापित करने मे सफल रह चुके थे। अत रामसिंह को अपने वीर और साहसी पूर्वजो का योग्य उत्तराधिकारी जानकर आसाम विजय के लिए नियुक्त किया गया था।

लेकिन रामसिंह पर औरंगजेब को भरोसा नहीं था अत उसके साथ मीर गजर बेग हाजी को वाकया नवीस नियुक्त किया गया और नियुक्ति के समय बादशाह ने उससे कहा, "रामसिंह अविश्वासी व्यक्ति है। यह स्वय महाराजा के साथ मिलकर षडयन्त्र कर सकता है। इसलिए तुम इसकी movements के सम्बन्ध मे निरन्तर सूचना भेजते रहना ताकि मुझे अभियान की सफलता अथवा असफलता के विषय में

1. आलमगीरनामा, पृष्ठ 1051, 1061
2. History of Aurangzeb, vol, III, P. 212
3. (a) Storia do Mogor (Trans, by Irvine), vol II, P 153 (The writer of this book served under Mirja Rajah as an artillery officer)
(b) Padohah Buranji (Eng Trans) P. 164
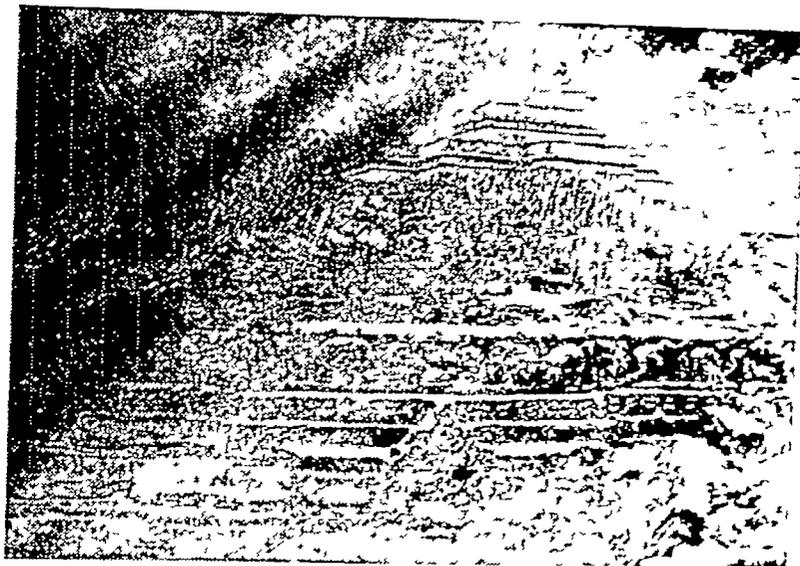
The "Old Fort" (Junagarh) at Mandor

Rana Kumbha's Palace, Chittor Fort

आसामियो और मुगल सेना के बीच अशान्त सम्बन्ध रहे। अन्त मे रामसिह मार्च 1671 में वापस रगामती आ गया और यहो उसने आगामी पाच वर्ष व्यतीत कर दिए। इस प्रकार सहायक सेनानायक रशीदखाँ के असहयोग के कारण तथा आसामियो के विलक्षण जोश व वहा की विषम भौगोलिक स्थिति के कारण रामसिह को अपने उद्देश्य मे सफलता नही मिल सकी।

1676 के प्रारम्भ में रामसिह को वापस बुला लिया गया। वह जून 1676 मे बादशाह औरङ्गजेब के दरबार मे उपस्थित हुआ। राजधानी पहुचने पर उसके मन्सब मे वृद्धि की गई। अब रामसिह पचहजारी मन्सबदार हो गया था जिनमे से 1000 सवार दो अस्पा सेह अस्पा थे।

1672 मे खैबर के दर्रे के आसपास के प्रदेश मे सीमान्त प्रदेश मे रहने वाली अफगान जातियो ने विद्रोह कर दिया था। विद्रोहियो ने मुगल सेनानायक मुहम्मद अमीन खाँ को पराजित कर दिया था। तत्पश्चात् कन्धार से अटक तक विद्रोहियो का आतक छा गया। 1674 मे दूसरा मुगल सेनानायक विद्रोहियो के हाथो मारा गया था। अत बादशाह औरङ्गजेब स्वय हसन अब्दाल तक गया और राजा रामसिह के पुत्र कुवर किशनसिह को लगभग 2½ वर्ष तक (सितम्बर 1674 से अप्रेल 1677 तक) अफगानिस्तान मे रखा।

रामसिह की अफगानिस्तान मे नियुक्ति

इसी बीच जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिह की मृत्यु हो गई। अत महाराजा रामसिह को खैबर के दर्रे की सुरक्षा के लिए अफगानिस्तान के मुगल सूबेदार अमीनखाँ के साथ नियुक्त किया गया (जून 1681)। रामसिह के इकलौते पुत्र किशनसिह की दक्षिण मे नियुक्ति की गई। रामसिह का हेड क्वार्टर जमरूद मे था। रामसिह और अमीनखाँ के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे। अत महाराजा अपने कर्त्तव्य को सुचारु रूप से निभा रहा था। लेकिन इसी बीच कुँवर किशनसिह की दक्षिण मे मृत्यु हो गई (10 अप्रेल 1682)। स्वाभाविक रूप से महाराजा को अत्यधिक दुख हुआ और वे ऐसे सख्त बीमार पडे कि पांच महीने बाद पुन तन्दुरुस्त हो सके। इसी बीच [illegible] अफरीदी ने विद्रोह किया जिसे रामसिह अपनी बीमारी के कारण नही दबा सके। अत महाराजा रामसिह के मन्सब में तक्फीक कर दी गई (29 नवम्बर 1685)।

कुवर किशनसिह की मृत्यु के पश्चात् बादशाह औरङ्गजेब ने उसके नाबालिग पुत्र विशनसिह को 400 का मन्सब प्रदान कर दिया था। अब बादशाह बारम्बार इस बात पर जोर दे रहा था कि विशनसिह को अपने स्वर्गवासी पिता के स्थान पर दक्षिण भेजा जाए। लेकिन महाराजा रामसिह इसके लिए तैयार नहीं थे। औरङ्गजेब महाराजा से बहुत सख्त नाराज हो गया और उनको [illegible] मे [illegible] कर दिया जहा घोर निराशा तथा सवेदना में उनकी जीवन लीला अप्रेल 1688 म [illegible] हो गई।

मार्च 1696 मे औरगजेब ने विशनसिंह को मथुरा की फौजदारी से हटाकर उसके स्थान पर एतिकादखाँ की नियुक्ति कर दी। विशनसिंह को बादशाह ने दक्षिण मे बुला लिया। विशनसिंह उस समय दक्षिण मे जाना नही चाहता था। अत उसने आगरा के मुगल सूबेदार शाहजादा शाहआलम को अपनी ओर करके उससे सिफारिश कराई कि बादशाह उसकी दक्षिण मे नियुक्ति के आदेश को रद्द करदे। औरगजेब की प्रिय पुत्री जिन्नत उसनिसा बेगम के पास भी सिफारिश कराई। अत औरगजेब ने आदेश दिया कि विशनसिंह के पुत्र जयसिंह को मुगल सेवा मे भेज दिया जाए और उसके साथ आमेर राजघराने के कम से कम आधे प्रमुख व्यक्ति भी भेज दिए जाए। विशन-सिंह की नियुक्ति शाहजादा शाहआलम की सिफारिश पर उसकी सेवा मे (आगरा) की गई।

बादशाह के आदेशानुसार जयसिंह को 1698 में दक्षिण भेजा गया। दक्षिण पहुचने पर बालक जयसिंह को वापस घर लौट जाने की आज्ञा मीर बख्शी की सिफारिश पर मिल गई (4 जुलाई 1698)। जयसिंह को सिर्फ आठ महीने की छुट्टी देकर भेजा गया था। तत्पश्चात् उसकी नियुक्ति शाहजादा आजमशाह के पुत्र के पास की गई (मार्च 1699)।

इसी बीच विशनसिंह की उसके छोटे पुत्र चिमाजी के साथ शाहजादा शाह-आलम के नेतृत्व में अफगानिस्तान मे नियुक्ति की गई। इस वक्त तक मुहम्मद अमीनखाँ मर चुका था। विशनसिंह अपने पुत्र चिमाजी तथा आमेर के आधे सरदारो सहित अप्रेल 1698 मे पेशावर पहुच गया। यही पर दरबन्द के फौजदार के रूप में कार्य करते हुए विशनसिंह की 19 दिसम्बर 1699 के दिन मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के उपरान्त भी उसका द्वितीय पुत्र चिमाजी अपने स्वर्गवासी पिता के सरदारो के साथ शाहआलम के पुत्र रफीउल कादर के पास पेशावर व जलालाबाद मे रहकर 1707 तक सेवा करता रहा।

विशनसिंह की मृत्यु के पश्चात् आमेर राज्य का टीका उसके ज्येष्ठ पुत्र जयसिंह II को को दिया गया जो इतिहास मे सवाई जयसिंह के नाम से प्रसिद्ध है।

सवाई जयसिंह

सवाई जयसिंह आमेर के उन प्रतिभाशाली शासको मे से एक था जिसने अपने पूर्वजो मानसिंह और मिर्जाराजा जयसिंह के समान अपने पैतृक राज्य के गौरव और प्रतिष्ठा को बढाया। वह अपने युग का माना हुआ कूटनीतिज्ञ था जिसने बादशाह औरगजेब के निर्बल उत्तराधिकारियो के शासनकाल मे मुगल राजनीति मे सक्रिय रूप से भाग लिया था। सवाई जयसिंह ने ही आधुनिक जयपुर शहर की नींव 1728 A D मे डाली था। तत्पश्चात् जयपुर आमेर राज्य की राजधानी हो गई। वह केवल एक सुयोग्य सेनानायक तथा [illegible] ही नही था, वरन अपने काल का एक माना हुआ Astronomer भी था। इसने जयपुर, दिल्ली, बनारस और मथुरा में सितारो की गतिविधियो का [illegible]

APPENDIX

जाट–मुगल संघर्ष (1638 to 1722 A D)

भरतपुर और धौलपुर के भूतपूर्व जाट प्रशासित राज्य राजस्थान के पूर्वी निहद्वार कहलाते हैं। इस प्रदेश के पूर्व मे उत्तर प्रदेश के आगरा और मथुरा जिला, उत्तर मे पजाब राज्य का जिला और गुडगावा एव दक्षिण मे मध्यप्रदेश का ग्वालियर जिला स्थित है।

संघर्ष आधुनिक राजस्थान की पूर्वी सीमा पर हुआ था

आईने अकबरी से पता लगता है कि सम्राट अकबर ने इस क्षेत्र को प्रशासनिक दृष्टिकोण से अकबराबाद (आगरा) सूबे मे शामिल करके अकबराबाद (आगरा), सहार तथा अलवर सरकारो (जिलों) के अन्तर्गत अनेक महालो (परगने अथवा तहसील) मे विभाजित किया था। भरतपुर का दक्षिण-पश्चिमी भूखड अकबराबाद जिले के अन्तर्गत टोडाभीम, हिन्डौन, बयाना, भुसावर, उज्जैन, पहरसर, खानुआ, सोगर-सोखरी, कठुमर परगनो मे, उत्तर-पूर्वी भाग मोल, हेलक तथा मऊ परगनो मे बटा था, जबकि उत्तरी भूखड (जिसे मेवात कहते हैं) सहार जिले में कामा, पहाडी और कस्बाखोह नामक परगनो मे शामिल था। इन परगनों मे जाट, मेव, गूजर, राजपूत, अहीर, मीणा आदि लडाकू कौम हिन्दू और मुसलमान कौमो के साथ रहती थी।[1] इन लोगों ने बीहड जगल, नदियो की खादर और पहाडियों की सघनता का लाभ उठाकर औरगजेब के समय मे सगठित होकर धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक स्वाधीनता को हासिल करने के लिए सशस्त्र सघर्ष किया।

बयाना के जादों राजपूत

मुहम्मद गोरी के सेना–नायकों ने बयाना और तवनगढ (तुहिनगढ) के किलों को जीतने के बाद आधुनिक करोली के यदुवशी जादो राजपूतो को इस क्षेत्र को छोडकर अन्य स्थानों पर शरण लेने के लिए वाध्य कर दिया था। अत यहां के शासक [illegible] के बारह पुत्रो ने जादों राजपूत कबीलों के साथ अकबराबाद सूबे में [illegible] अथवा वस्तिया वसाई। इसी के वशज मदनपाल के पाच पुत्र थे जिनमे (1) [illegible] ने सिनसिनी, (2) कान्हरदेव ने सेवर या सोगर (3) वीरदेव ने [illegible] मे [illegible] (4) वस्तपाल ने आगरा परगने मे मॉडोर और (5) सुवरदेव ने कम्वा खोह[2] नामक [illegible]

---

1 आईने अकबरी (अग्रेजी अनुवाद) भाग 2, पृ० 193, 202, 206

2. आधुनिक भरतपुर के उत्तर मे 26 मील, [illegible] पृ० 10–19 से पता लगता है कि जादो राजपूतों ने मुसलमानी धर्म [illegible] लिया और यह लोग खानजादा मेव कहलाने लगे जिन्होंने मेवात [illegible]

मील दूर मेरठ, होडल-पलवल से लेकर दक्षिण मे चम्बल नदी का किनारा तथा उसके पार गोहद तक फैल गये[1] और यह विशाल भूखड जटवाडा[2] कहलाने लगा।

हिन्दुओ के प्रति सम्राट शाहजहाँ की धार्मिक नीति अपने पूर्वजो सम्राट अकबर और जहागीर की भाति उदार, सहिष्णुतापूर्ण अथवा समन्वयवादी नही थी लेकिन परवर्त्ती सम्राटो की भाँति कट्टर मुस्लिम नीति भी नही थी । शासन के अन्तिम चरण मे सम्राट शाहजहा नम्रता के साथ मुस्लिम नीति की ओर झुका जिसका धर्मान्ध फौजदार तथा सूबेदारों ने लाभ उठाया। जागीर पुर्ननिर्धारण नीति के कारण खालसा का 7/10 भूमि नवीन मनसबदार अथवा जागीरदारों के नियन्त्रण मे चली गई।[3] इससे साम्राज्य की मालगुजारी अवश्य बढी लेकिन इसका जमीदार तथा काश्तकारो पर अधिक बोझ पडा, जिसका कामा-पहाडी के मेव तथा गोकुल-महावन के काश्तकार मजदूरो ने विरोध किया । सम्राट शाहजहा ने लगान वसूल करने तथा उपद्रवों को दबाने के लिए मुर्शिद कुलीखा तुर्कमान को कामा-पहाडी, मथुरा तथा महावन परगनो का फौजदार नियुक्त करके भेजा लेकिन उसने इन फौजी अभियानो का अनुचित लाभ उठाकर अपनी कामवासना को तृप्त किया । किसानों को हराने के बाद वह उनकी सौन्दर्यशील तरुणियो को अपने हरम मे डाल लेता था अत जब वह एक गढी का घेरा डाल रहा था, उस समय स्वाभिमानी जाट किसानो ने मदिरा मे चूर तुर्कमान को घेरकर 1638 ई० मे मार डाला ।[4] तत्पश्चात् फौजदार इरादतखां (1642-46 ई०) ने उदार नीति का अनुकरण किया । जाटो को धान दिखाकर अथवा धमकी देकर बस मे करना जितना कठिन है उतना ही प्रेम तथा दया भाव से बस मे करना सरल है । उसने वास्तव मे इनको प्रेम से दबाकर शान्ति-सुव्यवस्था स्थापित की ।

सम्राट शाहजहा के शासन-काल मे जाटों का उपद्रव

1 विलियम क्रुक भाग 3, पृ० 92-7, विलियम र्इविन कृत लेटर मुगल्स भाग 1, पृ० 321,

2 पेशवा दफ्तर सग्रह (मराठी) खड 30 पृ० 177, चन्द्र दफ्तर (मराठी) खड 1 पृ० 164,

3 डब्ल्यू० एच० मोरलैण्ड कृत दी एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इण्डिया पृ० 124-5, डा० बनारसीप्रसाद सक्सेना कृत हिस्ट्री ऑफ शाहजहाँ ऑफ दिल्ली पृ० 90-1, 244, 271, 291-4,

4 मआसिरुल उमरा (ए० मु० दगान) पृ० 436, 442 [illegible] (फ्रेन-जेव) भाग 3 पृ० 331-2, भाग 1, पृ० 321

जोधपुर किले के महल

जोधपुर किले के जनाने महल
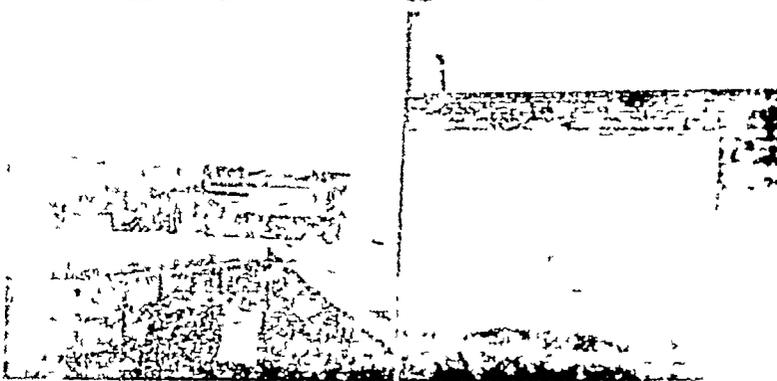
जोधपुर किले की प्राचीर पर रखी हुई पुरानी तोपें

जोधपुर की शृंगार चौकी

पर एक विशाल मस्जिद खडी की गई-जो अभी तक विद्यमान है। मथुरा का नाम इस्लामाबाद रखा गया।[16] आलमगीर की इस धार्मिक असहिष्णुता ने अन्यन्य गोत्री जाट, किसान तथा मजदूर और हिन्दू जमीदारो को एक शक्ति-सम्पन्न व बहुसख्यक एकता सूत्र मे बाध दिया। माल तथा प्रशासनिक अधिकारी, फौजदार तथा मुस्लिम जागीरदारो के साथ इनके कपट सम्बन्ध रहे। नियमित अत्याचार तथा हिन्दू धर्म-विरोधी भावनाओ ने 'भारतीय सपूतो के कोमल-हृदय को पाषाण की तरह कठोर बनाया।[17]

गोकुला जाट का दमन 1669 ई०

रौरियासिह[18] सिनसिनवार का पौत्र गोकुला[19] (कान्हाराम)-जिसे समकालीन तथा आधुनिक इतिहासकार तिलपत का जमीदार मानते हैं[20] लूटमार तथा राहजनी का पेशा अख्तियार करके गोकुल महावन मे जाकर बसा[21] जहाँ गगदेव की जाट सन्ततियो ने उसका साथ दिया और बाद मे गोकुला ने अपने प्रभाव से तिलपत[22] की जमीदारी हासिल की। उसने जाट परिवारो मे अच्छी साख पैदा करली और जाट जमीदार, किसान-मजदूरो को औरगजेब के धार्मिक अत्याचारो के विरुद्ध धर्म, मानव तथा जातीय स्वाधीनता के विरुद्ध एक कमान मे सगठित किया। ब्रज प्रान्त के जाट जमीदारो ने अपनी गढियो को मजबूत बनाकर सुरक्षात्मक साधनो से सज्जित किया[23] और युवको की टोलियो को इन गढियों की रक्षा के लिए तैनात किया। गोकुला जाट तथा उसके चाचा उदयसिह सिंघी (जो मौजा गिरसा मे जाकर बस गया था) ने युवको के हाथो मे प्रथम बार बन्दूकें देकर सिपाही बनाया और अपनी कमान मे बीस हजार नवयुवक भरती किये।[24] इन जाट क्रान्तिकारियो ने 10 मई 1669 ई० मे मथुरा मे

16 म० आ० पृ० 60, औरगजेबनामा भाग 2 पृ० 22,

17. म० उल उमरा (बगाल) पृ० 436,

18 सूदन कृत सुजान चरित्र पृ० 4, प० बलदेवसिह (पाण्डुलिपि) पृ० 14, वाकये राज० भाग 2 पृ० 41

19 प० बलदेवसिह (पाण्डुलिपि) पृ० 14, वाकये राज० भाग 2 पृ० 42 दीक्षित पृ० 6 आदि लेखको का मत है कि गोकुला सिनसिनवार था।

20 म० आ० पृ० 58, डा० सरकार (औरगजेब) भाग 3 पृ० 295

21 म० उल उमरा पृ० 436, औरगजेबनामा भाग 2 पृ० 20, [illegible] पृ० 12

22 दिल्ली तथा फरीदाबाद के दक्षिण मे स्थित,

23 म० उल उमरा पृ० 436,

24 ईसरदान कृत फतूहाते आलमगीरी (पाण्डुलिपि) पृ० 52 ब, 53 ब सरकार (औरगजेब) भाग 3 पृ० 332, डा० [illegible] जाटस पृ० 37

तक हसनअली मथुरा तथा सादाबाद के किसानो का दबाने तथा नये मुसलमान जागीरदारो को बसाने मे लगा रहा ।

आलमगीर की कट्टर मनोवृत्ति ने अद्भुत चमत्कार दिखलाये । उसने कतिपय मुर्दो मे जान डाल दी, रंको को राजा और डाकुओ को सरदार बना दिया । दक्षिण भारत मे सम्राट औरंगजेब युद्धो मे फंसा रहा । गोकुला के नेतृत्व मे जाट किसान के आन्दोलन को कुचलने के बाद अगले दस वर्ष तक इस क्षेत्र मे शान्ति-व्यवस्था कायम नही रह सकी । यमुना पार तथा दुआब प्रान्त की चुप्पी के बाद राजपूताना के पूर्वी सीमान्त प्रदेश मे मौजा सिनसिनी के जमीदार खानचन्द के पुत्र ब्रजराज और भज्जा (भगवन्त) ने सिनसिनवार जाटो का नेतृत्व सम्भाला । भज्जा के पुत्र राजाराम ने क्रान्ति की तीव्र ज्वाला जलाई और सिनसिनवार, सोगरिया तथा कुन्तल (खूटेल) जाटो का वृहद संघ तैयार किया । साम्राज्य को महान चुनौती देने के लिए प्रत्येक जमीदार, हलधर किसान, मजदूर समस्त परिवार तथा कबीलो की शक्ति संगठन में लग गया ।[1] राजाराम ने अऊ परगने के अन्तर्गत जाटोली-थून नामक नई बस्ती बसाई । आलमगीर ने उसे लूटमार बन्द करने के आश्वासन पर 575 गांवों की जागीर दी । उसने इस जागीर का सामयिक लाभ उठाया और सैनिक सेवा की नियमित शर्त पर इनाम के रूप मे अपने भाई-बन्धु तथा अन्य किसानो मे बांटा,[2] इससे उसे सैनिक शक्ति प्राप्त हुई और क्रान्ति, विकास तथा स्वाधीन परम्परा का मार्ग खुल गया । राजाराम ने सोगरिया सरदार राम चेहरा (राम की चाहर) के साथ मिलकर एक नियमित सेना तैयार की । नवयुवक सैनिको के हाथो मे आग्नेय अस्त्र, घोड़ा वगैरा देकर पूरा सिपाही बनाया, इनको गुरिल्ला (बज्जाकाना) युद्ध तथा अपने सरनायक की आज्ञा मे रहने की शिक्षा-दीक्षा दी । युद्ध के समय सरदार सदा

राजाराम जाट का मुगलो के साथ संघर्ष (1680–88)

राजाराम के द्वारा जाटों का संगठन

29 औरंगजेबनामा भाग 2 पृ० 21, 23, सरकार (औरंगजेब) भाग 3 पृ० 335

तक हसनअली मथुरा तथा मादावाद के किसानो को दबाने तथा नये मुसलमान जागीरदारो को वसाने मे लगा रहा ।

आलमगीर की कट्टर मनोवृत्ति ने अद्भुत चमत्कार दिखलाये । उसने जीवित मुर्दों मे जान डाल दी, रकों को राजा और डाकुओ को सरदार बना दिया । दक्षिण भारत मे सम्राट औरंगजेब युद्धो मे फसा रहा । गोकुला के नेतृत्व मे जाट किसान के आन्दोलन को कुचलने के बाद काफी समय तक इस क्षेत्र मे शान्ति-व्यवस्था कायम नही रह सकी । यमुना पार तथा दुआब प्रान्त की चुप्पी के बाद राजपूताना के पूर्वी सीमान्त प्रदेश मे मौजा सिनसिनी के जमींदार खानचन्द के पुत्र ब्रजराज और भज्जा, (भगवन्त) ने सिनसिनवार जाटो का नेतृत्व सम्भाला । भज्जा के पुत्र राजाराम ने क्रान्ति की तीव्र ज्वाला जलाई और सिनसिनवार, सोगरिया तथा कुन्तल (खूटेल) जाटो का वृहद संघ तैयार किया ।

राजाराम जाट का मुगलो के साथ सघर्ष (1680–88)

राजाराम के द्वारा जाटो का सगठन

आलमगीर को महान चुनौती देने के लिए प्रत्येक जमींदार, हलधर किसान, मजदूर सभा परिवार तथा कबीलो की शक्ति संगठित करने मे लग गया ।[1] राजाराम ने अऊ परगने के अन्तर्गत जाटोली-थून नामक नई बस्ती बसाई । आलमगीर ने उसे लूटमार बन्द करने के आश्वासन पर 175 गांवो की जागीर दी । उसने इस जागीर का सामयिक लाभ उठाया और सैनिक सेवा की नियमित शर्त पर इनाम के रूप मे अपने भाई-बन्धु तथा अन्य किसानो मे बांटा [illegible] उसे सैनिक शक्ति प्राप्त हुई और शान्ति, विराम तथा स्वाधीन रहने का मार्ग मिल गया । राजाराम ने सोगरिया सरदार राम चेहरा (रामकी चाहर) के साथ मिलकर एक नियमित सेना तैयार की । नवयुवक सैनिको के [illegible] वगैरा देकर पूरा सिपाही बनाया, इनको गुरिल्ला (छापामार) युद्ध तथा [illegible] नायक की आज्ञा मे रहने की शिक्षा-दीक्षा दी । युद्ध के [illegible]

---

29 औरगजेबनामा भाग 2 पृ० 21, 23, [illegible] 3 पृ० 335

देता था जिसे पार करके एक साधारण व्यापारी क्या एक चिड़िया भी नहीं निकल सकती थी।[8]

सिकन्दरा लूट का प्रथम विफल प्रयास 1685 ई०

औरंगाबाद के सूबेदार शफीखा को 7 सितम्बर 1684 ई० में आगरा का सूबेदार बनाया गया लेकिन वह जाटो की छापामार टुकडियो को दबाने मे पूरी तरह असफल रहा।[9] भ्रष्ट मुगल कर्मचारियों ने सूबेदार का साथ नही दिया, वे जाट सरदारों से पूरी तरह मिलकर लूट के साझेदार थे। फौजदार शफीखा ने सिनसिनी गढ़ी को अपना लक्ष्य बनाया। इस योजना को सुनकर जाट सरदार राजाराम ने एक दिन आगरा परगना में शाही खालसा के कुछ गावो को लूटा और आगरा किले को घेर लिया। सूबेदार शफीखा और किलेदार ने फाटक बन्द करवा दिये। वहा से उन्होंने अकबर की समाधि-सिकन्दरा की ओर कूच किया लेकिन फौजदार मीर अबुलफजल ने दस मील दूर क्रान्तिकारियो का सामना किया, जिसमे वह सख्त घायल हुआ। जाट सैनिको ने पीछे हटकर शिकारपुर मे रतनपुर के नीचे गावो को लूटा जिसमे नगद तथा जिन्स के रूप मे पर्याप्त माल हाथ लगा।[10]

आलमगीर ने जाट क्रान्तिकारियो के उपद्रवों की गम्भीरता को भली तरह आका। यद्यपि उसकी दृष्टि मे राजाराम अकुलीन जाट, फसादी चोर, [illegible] (लडने वाला) काफिर (हिन्दू विद्रोही) था।[11] उसने दिसम्बर 1685 ई० मे दोनों फौजदारों की अदलाबदली की और मई 3, 1686 ई० को अपने धाभाई कोकल्ताश जफर-जग खानजहाँ बहादुर को छ लाख 29 हजार रुपया शाही खजाने से नगद देकर आगरा भेजा।[12] जफरजग ने यहाँ आकर अपनी विशाल सेनाओं को इधर-उधर छितरा दिया लेकिन उसे सफलता नही मिली। 19 अगस्त 1686 ई० को खानजहां के पुत्र सिपहदारखा को आगरा का सूबेदार बनाया गया। इससे खानजहा को सूबे की प्रशासनिक शक्ति भी मिल गई। दिसम्बर 1686 ई० को शाहजादा मुहम्मद आजमखा को आगरा अभियानों की कमान सभालने का आदेश दिया। जुलाई 1687

प्रबन्ध करने का आदेश भेजा।[16] राजाराम जाट ने वेदारबख्त के आने से पूर्व ही अपनी निश्चित योजना का लाभ उठाया और मार्च 1688 ई० के अन्तिम सप्ताह में एक रात्रि को सिकन्दरा को जाकर घेर लिया। उसने (अकबर) मकबरा के सुदर द्वारों पर लगे कांसे के फाटकों को तोड डाला। दीवार, छत तथा फर्शों में जड़े अमूल्य तथा चमकीले रत्न और सोने चादी के पत्थरों को उखाड़ा। सोने चादी के बर्तन, दीवालगिरी (चिराग), मूल्यवान कालीनों आदि को लूट कर ले गया। जिन वस्तुओं को वहां से हटाने में असमर्थ रहा उनको तोड़-फोड़ कर छितरा दिया। अकबर की समाधि में से उसकी अस्थियों को बाहर निकाल कर अग्नि में झोंका गया। मकबरा का रक्षक मीर अहमद चुप खडा रहा। राजाराम शीघ्र ही सिकन्दरा से हट गया और आगरा के पास शाहजहां चैत्यालय को प्रदत्त आठ गावों को घेर कर लूटा। इससे आलमगीर को भारी ठेस लगी और उसने आगरा प्रान्त के प्रमुख सेनापति खानजहा और नायब मुजफ्फरखां को क्रमश एक हजार तथा पाच सौ सवारों का भत्ता कम कर दिया।[17]

शाहजादा वेदारबख्त के प्रयास और राजपूत मनसबदारों की सहायता 1688 ई०

शाहजादा वेदारबख्त ने आगरा पहुंच कर मथुरा को अपनी सैनिक छावनी बनाया और विशाल पैमाने पर सैनिक तथा युद्ध सामग्री एकत्रित करना शुरू किया। मथुरा की बादशाही मस्जिद-जो शहर के बीच में सबसे अधिक सुरक्षित स्थान पर थी—शस्त्रागार बनाया और बड़ी-बड़ी तोप—गहन दाह, दाहरी, धुंआ तथा रहकलाओं का निर्माण कराया।[18] मुगल छावनी में मुगल दस्ते, सेना सचालक तथा अन्य अधिकारी भी जाटों के (जिनको इस क्षेत्र की समस्त जनता का हार्दिक सहयोग प्राप्त था) प्रहार से भयभीत थे, यहां तक कि स्वयं वेदारबख्त भी छावनी से बाहर नहीं निकल सकता था। स्वयं नवयुवक शाहजादा घबरा गया। एक ओर उसने सम्राट से [illegible] तथा अधिक सेना भेजने का आग्रह किया, दूसरी ओर राजाराम से [illegible] करने की इच्छा व्यक्त की।[19] सम्राट ने धर्म, जाति तथा [illegible] राजपूत तथा साम्राज्य के जाटों को रजपूती तलवारों की नोक से [illegible] उठाया। उसने आमेर (जयपुर) के महाराजा [illegible] का [illegible] जाटों को दबाने के लिए फरमान [illegible]

घायल हुये । अप्रेल मे खैर गढी के बाहर निर्णायिक युद्ध हुआ, अमरसिह स्वय अपने मित्र नन्दा जाट तथा मुरसान के अन्य पडौसी मित्रो के साथ निकल भागा । उसके सेनानायक विरज् तथा तौला खर्जा की ओर भाग गये । मई के करीब अमरसिंह के एक पुत्र ने खैर का किला हरीसिंह को सौप दिया । 4 महीने तक कछवाहा सेनापति ने अमरसिह का पीछा किया लेकिन सादाबाद के जागीरदार तथा सादाबाद के जलाल नामक बलूची जागीरदारो ने उसकी रक्षा की[21]। बरसात मे दुआब प्रान्त के अभियानों को स्थगित करके हरीसिंह को मथुरा पहुचना पडा । सितम्बर-अक्टूबर मे कछवाहा नरेश ने नवीन सेना की भरती की । आमेर राज्य से विशाल सैनिक दल भरती होकर मथुरा पहुचा । आगरा तथा हिन्डौन से 1200 सवार और 2000 पैदल क्रमश 4 आना व एक आना रोजाना पगार पर भरती किये गये । अक्टूबर के अन्त तक 52,000 सवार तथा पैदल जगी तथा जिन्सी तोपखाना तैयार होगया ।[22]

सिनसिनी पतन के बाद समस्त जाटो ने जोरावर के भाई फतहसिंह को अपना सरदार बनाया[23]। उसने सिनसिनी के दक्षिण मे पींगोरा[24] गढी को नया केन्द्र बनाकर जाट-क्रान्ति का सचालन किया । सर जदुनाथ सरकार के अनुसार "वह (बिमनसिंह स्वय अपने प्रपिता राजा रामसिंह और पिता मिर्जा राजा जयसिंह की भाति उच्च मनसब प्राप्त करने की लालसा तथा ऐश्वर्य की ज्वाला मे जल रहा था ।"[25] लेकिन वह लिखित आश्वासन के अनुसार 6 महीने क्या 6 वर्ष तक भी जाट जनशक्ति को नही दबा सका । महाराजा बिसनसिंह ने विशाल राजपूत सेना के साथ सोगर[26]की गढी को अपना लक्ष्य बनाया, लेकिन सोगर की गढी कासाट, अवार रारह सेवर आदि गढियो से सुरक्षित थी । यह सभी गढिया 15 मील के घने जगल, काटेदार झाडी और बानगगा-रुपारेल नदियो की कछारो के

अवार तथा सोगर गढियो पर अधिकार (दिसम्बर 1690–फरवरी 1692 ई०)

21. जयपुर अखबारात, कानूनगो (डिग्गी) पृ० 93–94,

22 जयपुर अखबारात, कानूनगो (डिग्गी) पृ० 97–98,

23 प बलदेवसिह (पाण्डुलिपि) पृ० 16, वाक्या राज० भाग 2 पृ० 46, ओडायर पृ० 25, गजे० ई० राज० पृ० 30, जयपुर अखबारातो से पता लगता है कि फतहसिंह सिनसिनी घेरा के समय पींगौरा की नई गढी को शक्तिशाली बना रहा था ।

24 सिनसिनी के दक्षिण मे 23 मील, सोगर के दक्षिण-पश्चिम मे 16 मील,

25 सरकार (औरगजेब) भाग 5 पृ० 300

26 भरतपुर के उत्तर में 4 मील,

पीगोरा आक्रमण के समय भुमावर परगने के रणसिंह, श्योसिंह, पवार राजपूत और गढी केसरा के जमींदार हरकिसन चौहान ने विशेष योग दिया।

भटावली, सौख, रायसीस गढ़ियों का पतन (दिसम्बर 1692–फरवरी 1693 ई०)

औरंगजेब ने सुप्रसिद्ध सेनापति दिलेरखा रुहेला के पुत्र कमालुद्दीनखा को बयाना, हिन्डौन परगनो का फौजदार नियुक्त किया, जुलाई–अगस्त मे वह इनके विरुद्ध भी बढा लेकिन उसे यथार्थ सफलता नही मिली।[34] अत सम्राट ने बयाना-हिन्डौन की फौजदारी महाराजा बिसनसिंह को दी। महाराजा ने भटावली दुर्ग का दिसम्बर मे घेरा डाला, हरीसिंह ने उत्तर पश्चिम की ओर बढकर जनवरी 9, 1693 ई० मे सौख गढी पर आक्रमण किया, यहा पर 500–600 जाट क्रान्तिकारी काम आये। फतहसिंह जाट और चूरामन गढी से निकल गये, सौख गढी मे कठूमर परगना की बहुसख्यक किसान रैयत बन्दी थी, उसे छुडाकर बहरामन्दखा के करोरी मुहम्मद मूसा को सौप दिया। इसके बाद राजपूत सेनाओ ने दक्षिण पूर्व की ओर हटकर रायसीस पर अधिकार कर लिया। फरवरी 1693 ई० के प्रथम सप्ताह मे भटावली पर भी महाराजा का अधिकार हो गया।[35]

जाट गढियो के दमन के बाद महाराजा बिसनसिंह ने जाटो के राजपूत मित्रो को दबाया, मेवात का फौजदार महामदखा बडोदा[36] के जमींदार कान्हा और देवीसिंह

जाट-मित्रो की पराजय, फरवरी दिसम्बर 1693

नरूका सरदारो के विरुद्ध बढा। फरवरी मे उसने बडोदा के दक्षिण मे 4 मील टाड का घेरा डाला जबकि उसके सेनानायक सैयिद अब्दुल गफ्फार ने उसके दक्षिण पूर्व मे इटमेडा को घेरा लेकिन दोनो ही असफल रहे। मार्च मे राजपूत सेनायें भी पहुच गई, 19 अप्रेल को बडोदा मित्र सेनाओ के हाथ लगा, इस युद्ध मे 4175 रैयत और 33 गाडिया बन्दी बनाकर हरीसिंह की छावनी मे भेजे गये। जून 1693 ई० मे राजपूत सेनाओ ने गढी केसरा के सरदार हरकिसन चौहान को हराया। इसके बाद शाही सेनाओ ने रणसिंह पवार को लक्ष्य बनाया सरदार ने झारोटी के जगलो मे शरण ली, अक्टूबर मे दोनो मे मुठभेड हुई जिसमे 570 क्रान्तिकारी जाट मय दो सरदारो के काम आये और 245 स्त्री पुरुष बन्दी बनाये गये। सितम्बर के दूसरे सप्ताह मे उन्होने बागड गढी को बरबाद किया, नवम्बर मे उसने अन्य दो जाट गढियो पर अधिकार कर लिया।

---

34 जयपुर अखबारात म० आ० 212, औरंगजेबनामा 387 से पता लगता है कि वह सफल हुआ और उसके मनसब मे 500 जात की वृद्धि की गई (30 नवम्बर 1692 ई०)

35 जयपुर अखबारात, कानूनगो (हिस्ट्री) पृ० 106–8,

36 लछमणगढ (अलवर) के उत्तर मे 9 मील, नगर के पश्चिम मे 20 मील,

किया, जहा जाटनियो ने युद्ध मे भाग लिया इसके बाद जाट सरदार बडगाव[46] और रतनगढ[47] पहुचे, राजपूतो ने मई के दूसरे सप्ताह मे बडगाव, और जून के प्रथम सप्ताह मे रतनगढ पर भी अधिकार कर लिया लेकिन जाट सरदार उनके हाथ नही लग सके और वह चम्बल पार निकल गये। राजपूतो ने इसके बाद सरकार रणथम्भोर के विद्रोही परगनो मे प्रवेश किया और वहा से अक्टूबर मे मथुरा वापिस लौट गये।[48]

जावरा अभियान दिसम्बर 1694-मई 1695 ई०

साम्राज्यवादी राजपूत सेनाये चार वर्ष तक दक्षिण पश्चिमी भूखड के जाट सरदारो के दमन मे व्यस्त रही लेकिन उनको वास्तविक लाभ नही हुआ, इन अभियानो का लाभ उठाकर नन्दा जाट ने यमुना पारी-महावन, सादाबाद, जलेसर, नोह[49] के जाटो को सगठित किया और आधुनिक मुरसान के उत्तर पूर्व मे 2 मील दूर जावरा गढी का निर्माण कराया। इस गढी की सुरक्षा के लिये अनेको गढियाँ अथवा नगले बसाये गये, उसने कहरारी गढी की रक्षा का भार अपने भाई बैरीमाल के हाथो सौपा। पर्याप्त सगठन के बाद जाट क्रान्तिकारियो ने इन परगनो मे लूटमार शुरू की, जमीदार तथा जाट जिलेदारो ने इसमे सक्रिय भाग लिया यहा तक कि मुगल फौजदार भी इनकी लूट के साझीदार बन गये। सम्राट आलमगीर ने इन क्रान्तिकारियो को दबाने के लिए नवम्बर के मध्य मे हस्ब उल हुकम भेजा। अत दिसम्बर 1694 ई० मे राजपूत सेनाओ ने नन्दा जाट विरोधी अभियान शुरू किया। भयकर दुर्भिक्ष पड जाने के कारण सेना को खाद्य पदार्थ जुटाने की समस्या थी, महाराजा स्वय नियमित फौजी अभियानो के कारण 50 लाख रुपये का कर्जदार था, महाराजा बिसनसिंह मथुरा छावनी मे रसद की व्यवस्था तथा मार्गों की सुरक्षा-व्यवस्था के लिए रुके और हरीसिंह खगारोत ने महावन मे सैनिक छावनी डाली। उसने स्थान स्थान पर जावर गढी को घेरने तथा खाद्यान्न की हिफाजत के लिए अनेको छोटी छोटी गढिया बनवाई। 24 फरवरी को राजपूतो ने महावन मे अपनी छावनी उठाली और अनौडा गाव की ओर कूच किया, उसने बैरीमाल का

---

46 करौली के पश्चिम मे 16, बयाना के दक्षिण मे 26 मील और महरायन के उत्तर पूर्व मे 20 मील

47 बडगाँव के दक्षिण–पश्चिम मे 7 मील और सरमथुरा के दक्षिण-पश्चिम मे 4 मील,

48 अखबारात (जयपुर) कानूनगो (हिन्दी) पृ० 125-39 तथा हिस्टोरिकल एरेन्ज (1960) पृ० 55-57,

49 जलेसर के उत्तर–पूर्व मे 7 मील,

किया, जहा जाटनियो ने युद्ध मे भाग लिया इसके बाद जाट सरदार बडगाव[46] और रतनगढ[47] पहुचे, राजपूतो ने मई के दूसरे सप्ताह मे बडगाव, और जून के प्रथम सप्ताह मे रतनगढ पर भी अधिकार कर लिया लेकिन जाट सरदार उनके हाथ नही लग सके और वह चम्बल पार निकल गये। राजपूतो ने इसके बाद सरकार रणथम्भोर के विद्रोही परगनो मे प्रवेश किया और वहा से अक्टूबर मे मथुरा वापिस लौट गये।[48]

साम्राज्यवादी राजपूत सेनायें चार वर्ष तक दक्षिण पश्चिमी भूखड के जाट सरदारो के दमन मे व्यस्त रही लेकिन उनको वास्तविक लाभ नही हुआ, इन अभियानो का लाभ उठाकर नन्दा जाट ने यमुना पारी-महाबन, सादाबाद, जलेसर, नोंह[49] के जाटो को सगठित किया और आधुनिक मुरसान के उत्तर पूर्व मे 2 मील दूर जावरा गढी का निर्माण कराया। इस गढी की सुरक्षा के लिये अनेको गढियाँ अथवा नगले बसाये गये, उसने कैहरारी गढी की रक्षा का भार अपने भाई बैरीसाल के हाथो सौंपा। पर्याप्त सगठन के बाद जाट क्रान्तिकारियो ने इन परगनो मे लूटमार शुरू की, जमीदार तथा जाट जिलेदारो ने इसमे सक्रिय भाग लिया यहा तक कि मुगल फौजदार भी इनकी लूट के साझीदार बन गये। सम्राट आलमगीर ने इन क्रान्तिकारियो को दवाने के लिए नवम्बर के मध्य मे हस्ब उल-हुक्म भेजा। अत दिसम्बर 1694 ई० मे राजपूत सेनाओ ने नन्दा जाट विरोधी अभियान शुरू किया। भयकर दुर्भिक्ष पड जाने के कारण सेना को खाद्य पदार्थ जुटाने की समस्या थी, महाराजा स्वय नियमित फौजी अभियानो के कारण 50 लाख रुपये का कर्जदार था, महाराजा बिसनसिंह मथुरा छावनी मे रसद की व्यवस्था तथा मार्गों की सुरक्षा-व्यवस्था के लिए रुके और हरीसिंह खगारोत ने महाबन मे सैनिक छावनी डाली। उसने स्थान स्थान पर जावर गढी को घेरने तथा खाद्यान्न की हिफाजत के लिए अनेको छोटी छोटी गढिया बनवाई। 24 फरवरी को राजपूतो ने महाबन से अपनी छावनी उठाली और अनौडा गाव की ओर कूच किया, उसने बैरीसाल को

जावरा अभियान दिसम्बर 1694-मई 1695 ई०

46 करौली के पश्चिम मे 16, बयाना के दक्षिण मे 26 मील और मडरायल के उत्तर पूर्व मे 20 मील

47 बडगाँव के दक्षिण-पश्चिम मे 7 मील और सरमथुरा के दक्षिण-पश्चिम मे 4 मील,

48 अखबारात (जयपुर) कानूनगो (डिग्गी) पृ० 125-39 तथा हिस्टोरीकल एलेज (1960) पृ० 55-57,

49 जलेसर के उत्तर-पूर्व मे 7 मील,

किया । [2] जाट सरदारों ने राजपूतों के दुराव अभियान का लाभ उठाया और वह शीघ्र ही कज्जकाना टुकड़ियों के साथ करौली-धौलपुर के बीहड़ जङ्गलों को छोड़ कर अपने क्षेत्र में वापिस लौटे और शाही परगनों में लूटमार करना शुरू किया । [3] आधुनिक लेखकों ने चूरामन के राजनैतिक जीवन पर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध न होने के कारण पूर्ण प्रकाश न डालकर उसे लुटेरा अथवा विद्रोही सरदार माना है, इसका महत्वपूर्ण कारण समकालीन दरबारी लेखकों की विचारधारा है जिन्होंने मुगल साम्राज्यवादी भावना से हिन्दुस्तान के खण्डीय आन्दोलनों को लुटेरों का गिरोह अथवा विद्रोह की दृष्टि से आंका । वास्तविकता यह है कि असफल मातृभूमि के सेवक विद्रोही और सफल विद्रोह राष्ट्रीय क्रांतियां मानी जाती हैं । चूरामन वास्तव में सफल विद्रोही था, जिसे न केवल जाटों का ही बल्कि राजपूत, गूजर, मीना, मेव तथा अन्यान्य मुसलमान जमींदार, मजदूर, किसान तथा बुद्धिजीवियों का समर्थन प्राप्त था। वह मुगल सम्राटों के धार्मिक तथा राजनैतिक अत्याचार और आर्थिक उत्पीड़न के विरुद्ध लड़ा । [4] चूरामन नीति-निपुण, कुशल-साहसी, योद्धा, दृढ संगठक, पारदर्शी उच्च राजनयिक, अवसरवादी और सफल मित्र था । उसके चरित्र में जाटों के अड़ियलपन के साथ मराठों की चतुरता, राजनयिक सूक्ष्म दूरदर्शिता का सुन्दर सम्मिश्रण था ।[5] उसने अज्ञातवासी जाट परिवारों को गढ़ियों में बसाकर जाट एकता, स्वदेश-प्रेम तथा धार्मिक स्वाधीनता की भावना को दृढ किया । सौख गढ़ी के पतन के बाद अऊ, पहाड़ी, कामा, कठूमर परगनों की सरहद पर थून[6] नामक नवीन गढ़ी बनवाई और गढ़ी की रक्षा तथा काश्तकारी में योग देने के लिए चमार (जाटव) परिवारों को जाट प्रधान गांव में लाकर बसाया ।[7] क्रमशः थून गढ़ी के अन्तर्गत 80 गांव शामिल होगये और थून सिनसीनी के 110 गांवों का एक पृथक् राज्य बन गया ।[8] उसने अपना जीवन लुटेरों के रूप में शुरू किया । काफिले तथा राहगीरों को लूटकर उसने कुछ समय में ही 500 सवार, 1000 पैदल सुसज्जित लुटेरों का एक छापामार दल तैयार किया । उसने रुस्तम जाट तथा उसके पुत्र खेमकरन सोगरिया से मित्रता की । सोंख तथा अडींग के कुन्तल जाटों को मिलाया । हाथरस के नन्दा जाट का पुत्र भूरेसिंह अपने दोनों पुत्र दयाराम तथा भूपसिंह की कमान में 100 सवारों के साथ उसकी सेना

---

2 पं० बलदेवसिंह (पाण्डुलिपि) पृ० 16, वाकया राज० 2/46, दीक्षित पृ० 187, ओडायर पृ० 25,

3 जयपुर अखबारात, कानूनगो (हिन्दी) पृ० 141

4 कानूनगो (हिस्टोरिकल लेख) पृ० 50,

5 सरकार (औरंगजेब) 5/302, कानूनगो पृ० 45-46,

6 सिनसिनी के 8 मील उत्तर पश्चिम में स्थित

7 इमादुस्सादात (ना० प्रि० प्रेस) पृ० 55,

8 वाकया राज० भाग 2 पृ० 46, दीक्षित पृ० 20,

आगरा का सूबेदार नियुक्त हुआ । उसने सिनसिनी मे थानेदार आमिल तथा गुप्तचरो की नियुक्ति की । राजाराम के वयोवृद्ध पिता भज्जा ने सिनसिनी पर अधिकार करने की चेष्टा की लेकिन 1702 ई० मे वह मर गया । दो साल के प्रयासो के बाद, सिनसिनी पर जाटो का अधिकार हो गया । सम्राट ने यह समाचार सुनकर बेदारबख्त को (1704–5) मालवा से आगरा जाने का आदेश दिया लेकिन वह बीमारी का बहाना बनाकर नही आया ।[13] अक्टूबर 1705 ई० मे बेदारबख्त के श्वसुर मुख्यार खा ने सिनसिनी पर धावा बोला, चूरामन गढी से निकलकर भाग गया, 9 अक्टूबर को सिनसिनी तीसरी बार मुगलो के अधिकार मे आ गई ।[14]

चूरामन ने अगले दो वर्ष मे असीम शक्ति हासिल करके आगरा प्रान्त के समस्त जाटो को सगठित किया । आलमगीर की मृत्यु (20 फरवरी 1707 ई०) के बाद उसके पुत्र उसी वसीयत को लात मार कर साम्राज्य की गद्दी के लिए मचल उठे । जाजऊ युद्ध मे आलमगीर के ज्येष्ठ पुत्र मुअज्जम (बहादुरशाह) ने 8 जून 1707 ई० को विजय प्राप्त की और वह आगरा मे शाही गद्दी पर बैठा । मुहज्जम ने जाजऊ युद्ध मे जाट सरदार की सेवायें भी प्राप्त की थी, लेकिन चूरामन दो भाइयो की हार जीत के परिणाम को गहरी दृष्टि से देखता रहा । अपनी छापामार टुकडियो को दोनो सेनाओ के पास लगा रखा था, उसने निर्भीकता से दोनो पक्षो को बुरी तरह लूटा । जाट सैनिक कीमती सामान, शाही खजाना, अस्तबल, बहुमूल्य हीरा-जवाहरात लूट कर ले गये । इस युद्ध मे चूरामन को धन तथा यश दोनो ही मिले । आजम की हार के पश्चात उसके सैनिक ग्वालियर की ओर भाग निकले । धौलपुर के पास चम्बल नदी के बीहड जगलो मे जाट तथा रुहेलों ने मिलकर मुगल सैनिको पर हमला बोला । समस्त बीहड मृतको मे भर गई । कोई भी सैनिक लुटेरा दलो की लूट से नही बच सका । जाट सरदार अपार धन के साथ अपने क्षेत्र मे वापिस लौटा ।[15] जाजऊ युद्ध के बाद विजेता मुअज्जम बहादुरशाह की उपाधि धारण करके राजसिंहासन पर बैठा । उसने शत्रु तथा मित्र दोनो को सम्मानित किया । गृह युद्ध से चूरामन ने अधिक लाभ उठाया । एक साधारण 'लुटेरा' सरदार को साम्राज्य मे यथेष्ठ स्थान प्राप्त करने का सफल अवसर मिला और इन विद्रोहपूर्ण दिनो मे उसकी उपेक्षा करना असम्भव हो

> चूरामन जाट सम्राट द्वारा सम्मानित सितम्बर 1707 ई०

---

13 महाराजकुमार डा० रघुवीरसिंह कृत मालवा इन ट्रान्सिट पृ० 36

14 म० आलमगीरी पृ० 296, मनूची 4/242, इर्विन 1/322, सरकार (औरगजेब) 5/303, कैम्ब्रिज हिस्ट्री 4/306

15 म० उल उमरा पृ० 438, इर्विन 1/27, 2/89, मियरउल मुतखरीन ०

लेकिन 26 सितम्बर 1708 ई० के दिन सम्राट ने महाराजा जयसिंह और अजीतसिंह को मनसब प्रदान किया। फिर भी चूरामन ने मुगल फौजदार रिहाजखा बहादुर को कांमा अभियान मे पूरी मदद दी, उसने कांमा के जमीदार अजीतसिंह जो उसकी उन्नति मे बाधक था—से शाही लगान अदा करने की माग की और अक्टूबर 1708 ई० मे कांमा पर आक्रमण किया। अजीतसिंह कछवाहा ने लवाणा के कल्यानात अनर्यसिंह की सहायता ली, दस हजार राजपूतो ने 20 हजार मित्र-सेना का सामना किया। 18 अक्टूबर को भयकर युद्ध हुआ जिसमे रिहाजखा बहादुर काम आया। खारिदखाँ तथा चूरामन घायल हो गये। चूंकि चूरामन कामा के राजपूतो को दबाना चाहता था और अन्त में वह सफल रहा[21] इसलिए सम्राट बहादुरशाह ने चूरामन को सिख विरोधी अभियान मे जाट टुकडियो के साथ जाने का आदेश दिया। 1710 ई० मे ढसन साघौरा तथा लोहगढ (10 दिसम्बर 1710 ई०) युद्धो मे भाग लिया।[22] वह सम्राट के साथ लाहौर पहुचा। बहादुरशाह की मृत्यु (27 फरवरी 1712 ई०) के बाद लाहौर गृहयुद्ध मे चूरामन ने ज्येष्ठ पुत्र अजीम उस्मान का साथ दिया, उसे छावनी की रसद व्यवस्था सौंपी गई थी, जिसे उसने उत्तमता से निबाहा।[23] लाहौर युद्ध के बाद चूरामन पुन वापिस लौटा और लूटमार की पुरानी नीति को अख्तियार किया। डच यात्रियो के सस्मरणो से पता लगता है कि अक्टूबर 1712 ई० मे दिल्ली से आगरा तक का शाही मार्ग प्रगतिशील जाट किसानो के हाथों मे था और सारा माग उनसे भर गया था। 1715 ई० मे भारत की यात्रा करने वाला अग्रेज यात्री जान सर्मन भी इसी प्रकार का उल्लेख करता है।[24] डा० कानूनगो के अनुसार एक विजेता विद्रोही जिसने अपने पौरुष तथा भयाक्रान्त बल से साम्राज्य की सीमाओ मे शक्ति प्रधान जागीर बनाई और अनेको गाव अपने कब्जे मे कर लिये, वह सम्राट जहादारशाह के सैनिक बलहीन साम्राज्य मे कभी भी भयभीत नही हो सकता था और न सर्वोच्च सत्ता मे अपनी भक्ति ही प्रदर्शित कर सकता था।[25] उसने

21 जयपुर अखबारात 5 जमादि उल आखिर, 1120 हि०, 8 जमादि II, 2 शाबान, माघ सुदी 7, कार्तिक सुदी 5 स० 1765, वीर विनोद 768–78, 884, इर्विन भाग 1 पृ० 323, महाराजकुमार पृ० 168, नरेन्द्रसिंह पृ० 79–81

22 म० उल उमरा पृ० 439, इर्विन 1/323, महाराजकुमार 168, कानूनगो पृ० 48

23 खाफीखा II/44–45, म० उल उमरा (ना० प्र०) III/328 इर्विन 1/161 राजस्थान इस्टीट्यूट आफ हिस्टोरिक रिसर्च जरनल (दिसम्बर) 196 52–53

24 इर्विन भाग 1 पृ० 321 (एफ वालिनटन IV 302 के अ मानी मक्तन पृ० 1694 दिनाक 8, 16, 30 जून 1715 ई०

25 हिस्ट्री आफ जाट्स पृ० 49

छबीलाराम नागर को दो पक्षो के आन्तरिक गतिरोध का शिकार बनना पडा।[80] राजा छबीलाराम नागर की जगह खानदौरान समसामउद्दौला की नियुक्ति की गई, वह शान्ति सभा का सक्रिय सदस्य था। चूरामन को फौजी ताकत से हराना मुश्किल था, अत उसने चूरामन को उचित सम्मान की शर्तें रखकर साम्राज्य का उच्च मनसबदार बनाने का प्रयास किया। फर्रुखसियर ने चूरामन को दरबार मे उपस्थित होने का फरमान जारी किया। 6 सितम्बर 1713 ई० को चूरामन 400 सवारो के साथ दिल्ली के निकट बाराहपूला पहुँचा जहाँ अजीम उश्शान के मामृजात भाई राजा बहादुर राठौड ने उसकी एक राजा के अनुरूप अगवानी की। 20 अक्टूबर को सम्राट ने जाट सरदार को बहादुरखा की उपाधि से विभूषित किया। राव का पद देकर उत्तर मे दिल्ली से बाहर बाराहपूला से लेकर दक्षिण मे चम्बल नदी पर्यन्त, पूर्व मे आगरा से लेकर पश्चिम मे आमेर नरेश जयसिंह की सीमाओ तक शाही मार्गों की राहदारी का भार सौंपा।[31] राहदारी अधिकार ने जाटो की लूटमार परम्परा को नैतिक करार देकर सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया। उसने प्रशासन की निर्बलता, आन्तरिक मतभेद तथा राजनैतिक प्रवचनाओ से और भी अधिक लाभ उठाने का प्रयास किया। अमीर उल उमरा हुसैनअली खा स्वय चिरस्थाई मित्रता का प्रस्ताव लेकर चूरामन के पास आया और 1714 ई० मे उसने बरौदामेब (नगर), कठूमर, अखैगढ़ (नदबई), हेलक और अऊ नामक पाच परगने स्थाई रूप से चूरामन को जागीर मे दिये। राहदारी के विशाल क्षेत्र तथा परगनो की स्वतन्त्र जागीर ने प्रभुत्त्व का मार्ग खोल दिया। 1715 ई० मे फर्रुखसियर ने द्वितीय बख्शी मुहम्मद अमीनखा और उसके पुत्र कमरुद्दीन को सोगरिया सरदार रुस्तम तथा उसके पुत्र खेमकरन के पास भेजा उन्होंने खेमकरन को बहादुरखा की उपाधि से सम्मानित किया और आधुनिक भरतपुर मलाह, अघापुर, बराह, इकरन गाव तथा अन्य कुछ देहात परगना रूपवास के जागीर मे दिये।[32] जाट सरदार इन जागीरो से सन्तुष्ट नही हुये और उन्होंने अन्य मुस्लिम जागीरदारो के क्षेत्र मे हस्तक्षेप किया, व्यापारियो से मनमानी राहदारी वसूल की, राहदारो की लूट मे आगरा-दिल्ली परगने मे चारो ओर आर्तनाद गूज उठा। जाट सरदार ने मोजाबाद और कामा, सहार परगनो मे लूटमार शुरू की, मेवात क्षेत्र मे शान्ति

30 मआसीर उल उमरा 430, मिर्जा मुहम्मद कृत इबरतनामा पृ० 65 (ब) इर्विन I/262, 323, कानूनगो पृ० 50

31 अखबारात 13 रबी II, 11 सव्वाल 1125 हि० इबरतनामा पृ 62 (ब) वीर विनोद 1642, इर्विन I/323, इम्पी गजे VIII/75, वाक्या राज पृ 47, सोढाबर पृ 25, कानूनगो 51, महाराजकुमार 169, दीक्षित 24

32 प बलदेवसिंह(पाण्डु)पृ०19, वाक्या राज० II/47, इम्पी० गजे VIII/75, सोढाबर पृ 25, कानूनगो 47, वीर विनोद 1642

स्वतन्त्र राज्य का द्योतक था किन्तु साम्राज्य में कोई भी योग्य साहसी सेनापति नही था जो जाटो से टक्कर ले सके। चूरामन ने कछवाहा नरेश के विरुद्ध जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह से राजनैतिक मित्रता स्थापित की। वह स्वय स्वतन्त्र जाट राज्य की स्थापना का स्वप्न देख रहा था और स्वतन्त्र राज्य के राजा की तरह अपनी जागीर का प्रबन्ध कर रहा था लेकिन उसने सगोत्री तथा स्वजातीय बन्धुबान्धवो की ईर्ष्या तथा उत्तेजना के भय से 'राजा' की उपाधि धारण नही की।[2] 1720 ई० के अन्त मे मुहम्मदखा बगश के नायक सेनापति दिलेरखा के विरुद्ध बुन्देलखण्ड की रैयत ने विद्रोह किया, उन्होंने काल्पी पर अधिकार कर लिया। दिलेरखा के विरुद्ध महाराजा छत्रसाल ने ओरछा, दतिया तथा चन्देरी के बुन्देला राजाओ की सहायता प्राप्त की, चूरामन ने भी छत्रसाल के पास सैनिक सहायता भेजी, 25 मई को मौंधा युद्ध मे दिलेरखा के सहित 800 मुगल सिपाही काम आये।[3] मुहम्मदशाह ने जोधपुर के विरुद्ध दिल्ली मे सैनिक तैयारिया शुरु की। महाराजा अजीतसिंह ने 30,000 सवारो के साथ सांभर, डीडवाना, टोडा, अमरसर आदि पर अधिकार कर लिया।[4] उसने जाट सरदार चूरामन को अपनी सहायता के लिए लिखा, उसने अपने पुत्र मोहकमसिंह की कमान मे सेना देकर अजमेर भेजा,[5] सआदतखां मुगल सेनाओ के साथ दिल्ली से जोधपुर की ओर बढ़ा मार्ग मे जाटो ने उसकी सेनाओ को दिल्ली के आगे बढने से रोक दिया। इसी समय नीलकठ नागर की पराजय तथा मृत्यु के समाचार सुनकर सआदतखा को आगरा वापिस लौटना पडा। दिल्ली जाने से पूर्व सूबेदार सआदतखा, आगरा मे नीलकठ नागर को अपने नायब के रूप मे छोड गया और उसे जाटो के विरुद्ध बढने का आदेश दिया। नागर दस हजार सवार तथा पैदल सेना के साथ फतहपुर सीकरी परगना की सीमा पर पहुचा। सितम्बर 1721 ई० मे मुगल सेना ने पिचना नामक गाव को बरबाद किया, मोहकमसिंह शीघ्र ही नागर के मुकाबिले मे पहुचा। 26 सितम्बर को दोनो मे युद्ध हुआ जिसमे नागर काम आया उसके हाथ छावनी का माल असबाब लगा। सैनिको को युद्धबन्दी बनाया और मर्तबे के अनुसार दण्ड अदा करने पर उनको छोडा[7] गया।

---

2 इर्विन ii/213

3 इर्विन ii 120, 228; महाराजकुमार 177, सतीश 177, कानूनगो 57; डा० भगवानदास गुप्ता कृत छत्रसाल बुन्देला पृ० 76-78

4 प० विश्वेश्वरनाथ रेऊ कृत मारवाड का इतिहास भाग 1 पृ० 319, इ० हस्ता डा० VIII/43, म० उलउमरा (ना प्र स) भाग 1/58

5 रेऊ भाग 1/322, इर्विन ii/120

6 इर्विन ii/120, सतीश 177, वफीखा ii 132-33; रेऊ 330

7 सियार i 218, इर्विन ii/121, सतीश 178, महाराजकुमार 177; डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव कृत अवध के दो नवाब पृ० 29-30; कानूनगो पृ० 57, इंडियन हिस्ट्री ix 348, इलियस्टन ii/557

और जाट विरोधी अभियानो के सचालन के कारण कूटनीति मार्ग सफल नही होसका। बदनसिह स्वय निराश होकर वापिस लौट आया।[11] सआदतखाँ छ महीनो के कपट व्यवहार तथा उच्चतम सैनिक प्रयासो के बाद भी जाट एकता का दमन नही कर सका। जाटों ने गुरिल्ला प्रणाली को अपनाया जिससे वह घबडा गया।

मोहकमसिह ने अपने भाई बदनसिह को आगरा से वापिस लौटते ही बखिशाफी के भय से बन्दी बनाकर कारागृह मे डाल दिया। नवयुवक सरदार की यह

बदनसिह विरोधी छावनी मे 1722 ई०

दूरदर्शिता, अविवेक तथा अन्याय के रूप में राजनैतिक रगमच पर प्रकट हुई। विभिन्न जाट गोत्री सरदारो के हस्तक्षेप से बदनसिह को कारागृह से मुक्ति मिली[12] और वह अपने परिवार के साथ परगना भुसावर मे स्थित मौजा जहाज[13] मे पहुचा। यहाँ पर लरगर्या[14] गाँव के प्रभावशाली जाट जमींदार रतीराम से मुलाकात हुई। रतीराम ने अपनी पुत्री हँसिया का सम्बन्ध जाट जाति के अफलातून[15] (प्लेटो) राजा सूरजमल के साथ किया और वह बदनसिह को लेकर महाराजा सवाई जयसिह के पास जयपुर (आमेर) पहुचा। बदनसिह की मित्रता ने महाराजा जयसिह का मार्ग खोल दिया।[16] जयसिह ने अपने कलक के टीके को अग्रेजो की भाँति दूसरी बार आक्रमण करके साफ किया। महाराज सवाई जयसिह के हृदय मे थून अभियान की विफलता काटा की तरह चुभ रही थी। सम्राट ने महाराज जयसिह को आगरा की सूबेदारी दी, खानदौरान तथा निजाम उलमुल्क ने उसकी सैनिक सहायता की और शाही खजाने से 2 लाख रुपया दिया। अत जयसिह मोहकमसिह के विरुद्ध सितम्बर 1722 ई० को बढा।[17] जयपुर नरेश महाराजा सवाई जयसिह ने 50000 मजबूत सेना, शाही जगी

---

11 इर्विन II 121; कानूनगो 57, महाराजकुमार 177; अवध के दो नवाब 31

12 प० बलदेवसिह पृ० 19, ओडायर पृ० 26; इम्पी० गजे० VIII/75 वीर विनोद 1642; वाक्या राज० II/47, टॉड II/299, चौबे 5 तथा कानूनगो 57 का मत है कि चूरामन ने बदनसिह को कैदी बनाया।

13 बल्लभ गढ के पूर्व मे 4 मील, भुसावर के दक्षिण पूर्व में 14 मील

14 भुसावर के दक्षिण में 8 मील

15 इमाद पृ० 55

16 पुराने कागजात (पाण्डुलिपि) श्री उपेन्द्रनाथ शर्मा, भरतपुर के पास उपलब्ध है।

17 इर्विन II/237

दार मजदूर किसान सघ के विनाश का मूलभूत आधार था लेकिन इस अभियान की सफलता फौलादी सघ की भावना को नही बदल सकी। जाट सरदारो के कज्जकानी युद्ध, विद्रोह अथवा लूटमार ने नवीन क्रान्ति तथा विकास का मार्ग खोल दिया जिसका

भरतपुर राज्य की स्थापना
ठाकुर बदनसिंह
1723 ई०

अन्तिम परिपक्व रूप प्रगट होने लगा। 1723 ई० के प्रारम्भ मे जाट भाग्य का वास्तविक उदय हुआ और स्वतन्त्र राज्य–स्थापना की निहित भावना को साकार रूप मिला। महाराजा सवाई जयसिंह ने 18 मार्च 1723 ई० के दिन दीग पहुचकर बदनसिंह को ठाकुर चूरामन की जमींदारी, अब तक सम्राटो द्वारा जाटो को प्रदत्त अधिकार सौप और उसे जाटो का सरदार बनाकर ठाकुर का पद दिया।[20] समय की गति देख कर ठाकुर बदनसिंह ने शाही परगनो का खिराज देना स्वीकार करके जाट एकता को महान् सकट से बचा लिया।[21] ठाकुर बदनसिंह जीवन पर्यन्त महाराजा सवाई जयसिंह का कृतज्ञ रहा। उसने जयपुर मे लक्ष्मण डूंगरी के पास बदनपुरा नामक छावनी बसाई और अपने निवास के लिए महल बनवाये। प्रत्येक दशहरा दरबार मे एक जागीरदार की तरह उपस्थित रहा और अपनी शान्ति नीति से आगरा प्रान्त के कई विद्रोही परगने पट्टे पर लिए, मेवात के विद्रोह[22] ने महाराजा जयसिंह को बाध्य कर दिया कि वह इन परगनो को ठाकुर बदनसिंह को सौंप दे। जून 19, 1725 ई० को ठाकुर बदनसिंह ने महाराजा जयसिंह को करार के रूप मे लिखा "चूरामन की जाट सीमाये, गांव तथा धरती–जो महाराजा की अनुकम्पा से मुझे प्राप्त हुए हैं–उसके एवज मे मैं दरबार की सेवा मे उपस्थित रहूँगा और प्रतिवर्ष 83,000 रुपया पेशकश के रूप मे अदा करूँगा।"[23] लेकिन यह करारनामा स्थाई नही रह सका और जाट सगठन एक स्थाई राज्य भरतपुर मे बदल गया।

---

20 सिमार 219, इर्विन II/123, महाराजकुमार 178, सतीश 178, म० उमरा (ना प्र स) 1/ 127-8, ग्राउस 23, कानूनगो 59, वीर विनोद 1643, गजे ईस्टर्न राज० पृ० 30, वनभास्कर पृ० 3081

21 मोहासर 26, इम्पी० गजे० VIII/ 75, कैम्ब्रिज हिस्ट्री IV/ 348

22 सूदन पृ० 7

23 व्यवहार, भटनागर पृ० 219

BIBLIOGRAPHY

1 Fatuhat -ı-Alamgırı by Ishar Dass Nagar (Ms)
2 Jaıpur Akhabarats
3 Alamgırnamah
4 Sır J N Sarkar 'Hıstory of Aurangzeb'
5 Dr K R Qanungo 'Hıstory of Jats'
6 Imperıal Gazetteer
7 Raȷputana Gazetteer (Bharatpur, Dholpur & Karaulı)
8 Hıstory of Jaıpur State by Dr M L Sharma (Unpublıshed)
9 Hıstory of Raȷputana ın 18th century by V S Bhatnagar (Unpublıshed)
10. Hıstory of the Sammıcal House of Dıggı by D K R Qanungo (Unpublıshed)
11 Maagır-ı-Alamgırı
12 Maagır-ul-Umara
13 Later Mughals by Irvıne
14 Partıes and Polıtıcs by Dr Satısh Chandra
Ellıot of Dawson, vols VII & VIII

14

मेवाड का इतिहास 1540 से 1707 तक
(History of Mewar from 1540 to 1707)

महाराणा उदयसिंह 1540–1572 A D

महाराणा सागा की मृत्यु के पश्चात् मेवाड मे गद्दी के लिये सघर्ष छिड गया था। यह सघर्ष उस समय अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था जब बनवीर ने राजगद्दी का अपहरण कर लिया। बनवीर के हाथो उदयसिंह की धाय 'पन्ना'[1] ने उसकी किस प्रकार रक्षा की थी यह कहानी बचपन मे ही प्रत्येक भारतीय बालक को उसकी मा अथवा दादी सुना देती है। कुम्भलगढ मे रहते हुए ही 1537 ई० मे मेवाड के कतिपय असन्तुष्ट सरदारो ने चित्तौड से भाग कर उदयसिंह को अपना महाराणा स्वीकार किया था। तत्पश्चात् 1540 मे बनवीर को माहोली के युद्ध मे पराजित करके उदयसिंह ने चित्तौड पर अधिकार किया। उसके बाद ही मेवाड के शेष भाग पर उदयसिंह का अधिकार हुआ था। अत आधुनिक इतिहासकार वि० स० 1597 (1540 ई०) को ही उदयसिंह के राज्याभिषेक की तिथि मानते है।

1540 के पश्चात् उदयसिंह को सिरोही की गद्दी के उत्तराधिकार के फसाद मे भाग लेना पडा और जोधपुर के शासक राव मालदेव के विरुद्ध युद्ध लडना पडा। इस युद्ध (हरमाडा के युद्ध) का वर्णन पिछले पृष्ठो मे किया जा चुका है। तत्पश्चात् 1559 ई० मे उदयपुर शहर की नीव डाली। मेवाड के राज्य की राजधानी चित्तौडगढ को असुरक्षित समझ कर ही महाराणा उदयसिंह ने उदयपुर की नीव डाली थी।

---

1 पन्ना धाय खीची जाति की राजपूतानी थी। बनवीर ने उदयसिंह के धोखे मे इसके बच्चे को ही तलवार के घाट उतार दिया था। पन्ना उदयसिंह को टोकरे मे बैठाकर और ऊपर से पत्ते ढककर [illegible] साथ देवलिया के शासक रावल रामसिंह के पास पहुँची थी [illegible] देवलिया प्रतापगढ तथा डूगरपुर के राजाओ ने बनवीर [illegible] उदयसिंह को शरण देने मे असमर्थता प्रकट की तो अन्त मे पन्ना [illegible] पहुँची और वहा पर महाराणा उदयसिंह का बचपन [illegible]

BIBLIOGRAPHY

1 Fatuhat –ı–Alamgırı by Ishar Dass Nagar (Ms)
2 Jaıpur Akhabarats
3 Alamgırnamah
4 Sır J N Sarkar 'Hıstory of Aurangzeb'
5 Dr K R Qanungo 'Hıstory of Jats'
6 Imperıal Gazetteer
7 Rajputana Gazetteer (Bharatpur, Dholpur & Karaulı)
8 Hıstory of Jaıpur State by Dr M L Sharma (Unpublıshed)
9 Hıstory of Rajputana ın 18th century by V S Bhatnagar (Unpublıshed)
10. Hıstory of the Sammıcal House of Dıggı by D K R Qanungo (Unpublıshed)
11 Maagır–ı–Alamgırı
12 Maagır–ul–Umara
13 Later Mughals by Irvıne
14 Partıes and Polıtıcs by Dr Satısh Chandra
Ellıot of Dawson, vols VII & VIII

14

मेवाड का इतिहास 1540 से 1707 तक
(History of Mewar from 1540 to 1707)

महाराणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् मेवाड मे गद्दी के लिये संघर्ष छिड गया था। यह संघर्ष उस समय अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था जब बनवीर ने राजगद्दी का अपहरण कर लिया। बनवीरके हाथो उदयसिंहको धाय 'पन्ना'[1] ने उसकी किस प्रकार रक्षा की थी यह कहानी बचपन मे ही प्रत्येक भारतीय बालक को उसकी मा अथवा दादी सुना देती है। कुम्भलगढमे रहते हुए ही 1537 ई० मे मेवाड के कतिपय असन्तुष्ट सरदारो ने चित्तौड मे आकर उदयसिंह को अपना महाराणा स्वीकार किया था। तत्पश्चात् 1540 मे बनवीर को माहोली के युद्ध मे पराजित करके उदयसिंह ने चित्तौड पर अधिकार किया। उसके बाद ही मेवाड के शेष भाग पर उदयसिंह का अधिकार हुआ था। अत आधुनिक इतिहासकार वि० स० 1597 (1540 ई०) को ही उदयसिंह के राज्याभिषेक की तिथि मानते है।

महाराणा उदयसिंह
1540–1572 A D

1540 के पश्चात् उदयसिंह को सिरोही की गद्दी के उत्तराधिकार के प्रसाद मे भाग लेना पडा और जोधपुर के शासक राव मालदेव के विरुद्ध युद्ध लडना पडा। इस युद्ध (हरमाडा के युद्ध) का वर्णन पिछले पृष्ठों मे किया जा चुका है। तत्पश्चात् 1559 ई० मे उदयपुर शहर की नींव डाली। मेवाड के राज्य की राजधानी चित्तौडगढ को असुरक्षित समझ कर ही महाराणा उदयसिंह ने उदयपुर की नीव डाली थी।

---

1 पन्ना धाय खीची जाति की राजपूतानी थी। बनवीर ने उदयसिंह के धोखे मे इसके बच्चे को ही तलवार के घाट उतार दिया था। पन्ना उदयसिंह को टोकरे मे बैठाकर और ऊपर से पत्ते ढककर अपने साथियो के साथ देवलिया के शासक रावत रामसिंह के पास पहुँची थी लेकिन देवलिया प्रतापगढ तथा डूगरपुर के राजाओ ने बनवीर के भय से उदयसिंह को शरण देने मे असमर्थता प्रकट की तो अन्त मे पन्ना कुम्भलगढ पहुँची और वहा पर महाराणा उदयसिंह का बचपन बीता।

उदयपुर की स्थापना का रोचक वृत्तान्त हमे राजस्थानी साहित्य के विभिन्न ग्रथो मे इस प्रकार मिलता है। एक दिन महाराणा उदयसिंह शिकार खेलते-खेलते आहड तक पहुँच गए। वहा से वे पीछोला तालाब की पाल पर पहुँचे। पीछोला तालाब का निर्माण पन्द्रहवी शताब्दी मे एक बन्जारे के द्वारा करवाया गया था। यही पर एक झाडी के अन्दर एक साधू बैठा था। इसी योगी ने महाराणा को सलाह दी थी कि यदि उस स्थान को राजधानी बना लिया जायगा तो यह शहर महाराणा के वशजो के हाथ से कभी नही जाएगा। उदयसिंह को भी साधु की बात जच गई। उन्होने अपने साथियो से कहा "अगर इन पहाडो के घेरे मे राजधानी बनाई जावे तो रसद की भी कमी नहीं होगी और मजबूती के साथ (शत्रुओ के विरुद्ध) पहाडी लडाई लडने का मौका भी मिलेगा।" इस प्रकार पीछोला झील के किनारे एक पहाडी पर उदयपुर शहर की स्थापना की गई। इसके कुछ समय पश्चात् पूर्व की दिशा मे सात मील के फासले पर 8 अप्रेल 1565 के दिन उदयसागर तालाब की प्रतिष्ठा करके पाल बधवाई और तालाब के किनारे महल बनवाए।

उदयसिंह ने मेवाड की नई राजधानी बसाकर ठीक ही किया था क्योकि इसके कुछ समय पश्चात् ही अकबर ने चित्तौड पर हमला कर दिया। मेवाड का राज्य राजस्थान का प्रमुख राजपूत राज्य गिना जाता था। यहा के राणा ने हरमाडा के युद्ध के पश्चात् शीघ्रता से अपनी शक्ति बढा ली थी और उसके अधिकार मे बहुत सा प्रदेश आ गया था। 1562 मे उदयसिंह ने मालवा के शासक बाजबहादुर को अपने यहा पनाह देकर मुगल सम्राट अकबर को चित्तौड पर आक्रमण करने का बहाना भी दे दिया था। चित्तौड पर अधिकार किए बगैर राजस्थान के शेष भाग पर अकबर का आसानी से अधिकार नहीं हो सकता था। चित्तौड का किला गुजरात और मालवा के मार्ग मे भी पडता था। अतएव सामरिक दृष्टि से अकबर के लिए चित्तौड पर अधिकार करना अनिवार्य था। दुर्भाग्य से इसी समय मेडता का निर्वासित शासक जयमल भी महाराणा उदयसिंह की शरण मे पहुँच गया। चित्तौड पर अधिकार करने की अकबर की सुपुप्त इच्छा जाग उठी और उसने चित्तौड के किले पर आक्रमण कर दिया। 23 अक्तूबर 1567 के दिन अकबर चित्तौड से लगभग ६ मील उत्तर दिशा मे नगरी नामक स्थान पर पहुँच गया।

अकबर के द्वारा घेरा डालने से पहले ही उदयसिंह 8000 बहादुर राजपूतो को जयमल के नेतृत्व मे किले की रक्षा का भार सौंपकर स्वय अपने कुँवरो तथा रानियो के साथ मेवाड के दक्षिणी पहाडो मे चले गए। उदयसिंह ने अपने सरदारो के परामर्श पर किले की रक्षा का उत्तरदायित्व जयमल तथा अन्य सरदारो को सौंपा था। मालवा व गुजरात के विरुद्ध निरतर लडे गए युद्धो ने सुरक्षा के साधन

[illegible] । यदि उदयसिंह स्वयं चित्तौड मे ठहरकर उसकी रक्षा करने का निश्चय करता तो कदाचित उसका भी उसी प्रकार अन्त हो जाता जिस प्रकार [illegible], इत्यादि का हुआ । पश्चात् का बदला कौन लेता ? अतएव उदयसिंह पर कायरता का आरोप कतिपय इतिहासकारों के द्वारा लगाया गया है वह उचित नहीं है । उदयसिंह अपनी वीरता का परिचय हरमाडा इत्यादि के युद्धो मे दे चुका था ।

महाराणा उदयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र प्रतापसिंह थे जो जैवताबाई (अक्षयराज सोनगरा की बेटी) के गर्भ से 9 मई 1540 के दिन उत्पन्न हुए थे। 'प्रताप' संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका अर्थ 'ऐश्वर्य' होता है। अपने 25 वर्षीय शासनकाल में प्रताप ने अपने नाम को सार्थक करके दिखा दिया था।

महाराणा प्रताप
1572–1597

महाराणा उदयसिंह अपने जीवनकाल में अपने छोटे पुत्र जगमाल को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर गए थे क्योंकि जगमाल की माता महारानी भटियाणी पर उनकी विशेष कृपा थी। अतएव महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के पश्चात् सलूम्बर के किशनदास और देवगढ के सागा ने गुप्त रूप से जगमाल को गद्दी पर भी बैठा दिया। मातम समाप्त होने के पश्चात् ग्वालियर के रामसिंह और झालौर के अक्षयराज के प्रयत्नों के फलस्वरूप प्रताप को गोगूंदा में 28 फरवरी 1572 के दिन गद्दी पर आरूढ किया गया। जगमाल जहाजपुर की तरफ चला गया और अजमेर के सूबेदार के प्रयत्नों से उसे अकबर बादशाह ने पहले जहाजपुर का परगना और फिर सिरोही का आधा राज्य प्रदान कर दिया। मेवाड की गद्दी प्राप्त करने में असफल जगमाल अपने जीवन-पर्यन्त (1583 तक) मुगल सम्राट् अकबर की सेवा में रहा।

चित्तौड के किले के साथ मेवाड का अधिकांश भाग अकबर के अधिकार में जा चुका था। उसने चित्तौड को 'सरकार' का केन्द्र बनाकर अधिकृत प्रदेश को 26 माहलोमें विभाजित कर दियाथा। इस प्रकार एक ओर मेवाड में मुगलों का आधिपत्य बढता जा रहा था और दूसरी ओर जगमाल के विद्वेष के कारण मेवाड में आन्तरिक स्थिति शांतिप्रद नहीं थी। इस प्रकार प्रताप मेवाड के जिस सिंहासन पर बैठा था वह फूलों की सेज नहीं था। अतएव कुम्भलगढ को सुरक्षित स्थान समझ कर राणा प्रताप वहां जाकर रहने लगे। मेवाड के नए राणा को चित्तौड में मुगलों के पांव उखाडने से पहले अपने राज्य के साधनों को व्यवस्थित एवं पुष्ट करना अधिक आवश्यक था। इस समय अकबर भी गुजरात विजय करने में व्यस्त था। अतः जगमाल के दरबार में उपस्थित होने पर भी मेवाड की गद्दी के उत्तराधिकार फसाद में हस्तक्षेप करने का कोई विचार अकबर के मस्तिष्क में नहीं आया। लेकिन गुजरात विजय के पश्चात् बादशाह का ध्यान अवश्य मेवाड के राज्य की ओर गया था क्योंकि 'गुजरात-विजय का स्थायित्व राजपूताना में मुगल शक्ति के पुष्टीकरण पर निर्भर था'। इसके अतिरिक्त अकबर का उद्देश्य एक सुसंगठित साम्राज्य स्थापित करने का था। अतः वह प्रत्येक स्वतंत्र राजा को अपना आधिपत्य स्वीकार कराने के लिए उत्सुक था। मेवाड के राज्य का अधिकांश भाग हाथ से निकल जाने के बावजूद भी वहां

अकबर राणा प्रताप का पूर्ण समर्पण चाहता था

[illegible] (प्रताप) ने बादशाह का आधिपत्य स्वीकार नही किया था। अत गुजरात विजय सम्पन्न करने के पश्चात् बादशाह ने आमेर के मानसिंह को डूगरपुर विजय करने की आज्ञा दी। डूगरपुर से लौटते समय मानसिंह ने जून 1573 मे राणा प्रताप से उदयपुर मे भेट की। लेकिन मानसिंह की बात मानकर अकबर [illegible] स्वीकार करने तथा व्यक्तिगत रूप से मुगल दरबार मे हाजिरी देने के लिए राणा प्रताप तैयार नही हुआ। मानसिंह के स्वागत के लिए राणा प्रताप ने उदयसागर की पाल पर एक भोज का आयोजन किया था। भोजन के समय दोनो में [illegible] मनोमालिन्य हो गया, मानसिंह शाही दरबार मे लौट गया और वर्षो [illegible] हल्दीघाटी के युद्ध मे अपनी बेइज्जती का बदला लेने का जो अतिरंजित वर्णन [illegible] ख्यातो के आधार पर किया है उसका समर्थन किसी भी सुप्रमाणित ऐतिहासिक तथ्य से समर्थन नही होता। ऐसा प्रतीत होता है कि युगो बाद जो ख्यात लिखी गई उनके आधार पर यह दतकथा प्रचलित हो गई। महाराजकुमार डा० रघुबीरसिंह ने ठीक ही लिखा है कि "अनेको युगो बाद प्रचलित होने वाली राणा प्रताप सम्बन्धी अनेकानेक कल्पनापूर्ण कथाओ मे ही इसकी भी गणना होनी चाहिए।"

था, लेकिन यह सत्य अवश्य है कि राणा अपनी ओर से दिल्ली के साधन-सम्पन्न मुगल बादशाह से उस समय झगडा मोल लेने के लिए तैयार नही था। वह उस समय युद्ध को टालकर अपनी शक्ति एव साधनो को सगठित करने के पक्ष मे था। अतएव उसने मीठी बातो तथा ऊपरी दिखावे के द्वारा मुगल सम्राट को भुलावे मे रखने के इरादे से अपने ज्येष्ठ पुत्र को राजा भगवन्तदास के साथ आगरा भेज दिया। इस समय अकबर भी बगाल और बिहार जीतने की योजना बना रहा था। अतएव कुवर अमरसिंह को अपने दरबार में देखकर कोई खास सन्तोष नही हुआ और कुछ दिनो बाद कुवर अमरसिंह को मेवाड लौट जाने की आज्ञा दे दी।

इस घटना के कुछ समय पश्चात् राजा टोडरमल जब राणा के इलाके से होकर गुजरा और उसने भी प्रताप से भेंट की तब वह भी यही धारणा लेकर गया था कि राणा बादशाह से झगडा मोल लेने को उत्सुक नही था।

मैत्री की इन सब प्रत्यक्ष स्वीकारोक्तियो के होते हुए भी राणा प्रताप अपनी शक्ति को जुटाने मे प्रयत्नशील रहा। अकबर भी उसकी व्यक्तिगत हाजिरी के लिए हठ करता रहा। बादशाह के प्रति मैत्री-भाव प्रदर्शित करने पर भी अकबर ने उसे कोई यथेष्ट मान्यता प्रदान नही की और न चित्तौड के विजित खण्ड को लौटा देने की ही स्वीकृति प्रदान की। अत राणा प्रताप का असन्तोष बढता गया। उसने अकबर के विरोधियो के साथ मित्रता स्थापित करना शुरू किया। ग्वालियर के असन्तुष्ट राजा तथा अडियल अफगानो और जोधपुर के राव चन्द्रसेन व सिरोही के राव सुलतान के साथ उसने मैत्री सधि की। अकबर इसे किस प्रकार बर्दाश्त कर सकता था? जब तक राणा प्रताप स्थाई रूप से अकबर की आधीनता स्वीकार नही कर लेता तब तक गुजरात मार्ग की सुरक्षा, तीर्थयात्रियो और व्यापारियो का आवागमन तथा व्यापार का यातायात निश्चिन्त नही रह सकता था।

अकबर और प्रताप के बीच विरोध के कारण

राजस्थान के मार्ग से सूरत और गुजरात के बन्दरगाहो के साथ जो व्यापारिक यातायात होता था उसको राणा प्रताप और राव चन्द्रसेन अवरुद्ध कर रहे थे। अकबर ने इन सब घटनाओ के पीछे राणा प्रताप का ही हाथ समझा। उसने शांति-प्रिय ढग से प्रताप को अपने अधिकार मे करने के जो तीन प्रयत्न किये थे वे विफल हो चुके थे। अत लगभग समस्त उत्तर भारत अपने अधिकार मे कर लेने के पश्चात् अकबर ने 1576 मे प्रताप पर आक्रमण करने का निश्चय किया। मार्च 1576 मे बादशाह स्वय अजमेर तक आया। मानसिंह को सेना का मुख्य सेनापति नियुक्त करके अकबर स्वय अपनी राजधानी वापस चला गया।

कुवर मानसिंह को 5000 का ऊचा मन्सब प्रदान किया गया और उसकी सेना मे गाजीखां, ख्वाजा गयासुद्दीन अली आसफ खां, सैयद अहमद खां, सैयद

ऐतिहासिक युद्ध लडा गया तो Offensive मेवाड की सेना की ओर से लिया गया था और युद्ध शुरू होने के थोडे ही समय बाद जगन्नाथ कछवाहा तथा आसफ खा के नेतृत्व मे आक्रमणकारी मुगल सेना का अग्रिम भाग बुरी तरह खदेड दिया गया। कुछ समय के पश्चात मुगल सेना के बाए और दाहिने भाग की भी वही गति हुई। मुगल सेना मे हलचल मच गई। इसी समय मुगलो के पार्श्व भाग के सेनानायक मेहतरखा ने सैनिको को प्रोत्साहित किया। इसी समय बरहा के सैय्यदो ने डटकर राजपूतो का सामना किया। शीघ्र ही मेवाड की सेना के दाहिने भाग का नेता राजाराम साह अपने पुत्रो सहित मारा गया। जयमल का पुत्र रामदास भी मारा गया। दोनो पक्षो के जगी हाथी युद्ध के मैदान मे जूझ उठे। राणा प्रताप व मानसिंह का द्वन्द युद्ध भी हुआ। इस द्वन्द युद्ध मे कुवर मानसिंह ने अवर्णनीय दृढता दिखलाई। इसी समय यह खबर फैल गई कि अकबर बादशाह स्वय सेना लेकर रणक्षेत्र मे पहुँच गया है। इस झूठी खबर के फैलने से दो फायदे हुए—(i) मुगल सेना मे जो हलचल मच गई थी वह दब गई और सैनिक पुन युद्ध मे जूझ पडे। (ii) राणा प्रताप ने भी आक्रमण की तीव्रता को कम करके को लियारी की ओर पीछे हटाली। युद्ध मे राणा प्रताप का शरीर उन बाणो से लगभग छन गया था जो मुगलो की ओर से निरन्तर उस पर चलाये जा रहे थे। राणा प्रताप तो स्वय युद्ध के मैदान से निकल भागा। लेकिन थोडी दूर पहुँचने पर उसके वफादार घोडे चेतक के प्राण पखेरू उड गये। पीछे हटती हुई राजपूत सेना का मुगल सेना ने किसी प्रकार पीछा नही किया। सेना बहुत थक चुकी थी और गर्मी भी बहुत सख्त थी।

प्रताप की पराजय के कारण

युद्ध प्रारम्भ होने पर सफलता राणा को मिली थी। लेकिन वह कतिपय कारणो से उसे किसी भी प्रकार स्थाई नही बना सका था। इसमे तो सदेह नही कि राणा की सेना की अपेक्षा मुगल सैनिको की सख्या बहुत अधिक थी। लेकिन राणा प्रताप ने आक्रमण करते समय न तो किसी प्रकार की सुनिश्चित व्यवस्था ही अपनाई थी और न सेना के विभिन्न भागो के पारस्परिक समन्वय बनाए रखने का कोई प्रयास ही किया था। इसका परिणाम यह निकला कि विभिन्न योद्धाओं ने व्यक्तिगत वीरता का आशातीत परिचय युद्ध-भूमि मे दिया भी लेकिन फिर भी एक-दूसरे से पूर्णतया असम्बद्ध होने के कारण युद्ध के अन्तिम परिणाम मे किसी प्रकार के परिवर्तन की आशा नही हो सकती थी। इसके अतिरिक्त राणा ने अपनी पृष्ठ रक्षा के लिये कोई सैनिक दल ही नही रखा था और न [illegible] के लिए प्रशिक्षित विशेष सेना का कोई आयोजन किया था। इस युद्ध मे राणा प्रताप ने भी परम्परागत राजपूत नीति का अनुसरण करके [illegible] पर [illegible] किया था। लेकिन अच्छा निशाना लगाने वाले [illegible] युद्ध-

इस युद्ध मे कोई अधिक जन-क्षति नही हुई थी। मृत्यु सख्या दोनो पक्षो की बराबर रही थी। प्रत्येक पक्ष के लगभग 500 सैनिक ही वीर गति को प्राप्त हुए थे। लेकिन फिर भी हल्दी घाटी के युद्ध को इतना अधिक बढा चढा कर वर्णित किया गया है कि आधुनिक इतिहास का विद्यार्थी इसे भूल से इस्लाम एव हिन्दुओ का सघर्ष समझ बैठता है। यह केवल मुगल साम्राज्य और मेवाड राज्य के बीच एक सघर्ष था। इस युद्ध मे राजनैतिक अधिकार के अतिरिक्त और कोई उद्देश्य सम्मिलित नही था।
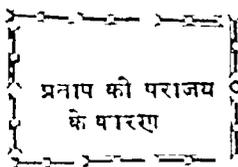
राणा प्रताप ने कुम्भलगढ के निकट दुरूह पहाडो मे जाकर शरण ली थी। अतएव कुँवर मानसिंह को गोगूदा पर अधिकार करने मे शीघ्र सफलता प्राप्त हो गई। गोगूदा पहुँचने पर मुगल सेना सम्पर्कहीन हो गई। वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो जाने के पश्चात् सेना रसद के अभाव मे तडफने लगी। पशु मास तथा आम के फल खाकर सैनिको ने अपने प्राणो की रक्षा की। लेकिन फिर भी मानसिंह तथा आसफखा ने राणा के इलाके मे लूटमार नही होने दी। इसका परिणाम यह निकला कि अकबर को मानसिंह पर सन्देह हो गया और उसने उसे वापस बुला भेजा, राजधानी पहुँचने पर उसे दरबार मे उपस्थित होने की आज्ञा नही मिली और जब माफी बक्शी गई तब 'राणा का इलाका लूटने' का आदेश देकर पुन भेजा (दिसम्बर 1576 मे)।

अकबर शायद मानसिंह और उसके पिता राजा भगवन्तदास को 'राणा का इलाका लूटने' का आदेश नही देता। लेकिन जैसे ही मानसिंह ने गोगूदा से पीठ फेरी वैसे ही राणा प्रताप ने मुगल थानो पर छापे मारने शुरू कर दिये और समस्त गोगूदा के प्रदेश पर पुन अपना अधिकार कर लिया। मानसिंह और भगवन्तदास के पीछे ? अकबर स्वय भी मेवाड की ओर रवाना हुआ। नवम्बर 1576 मे उदयपुर नगर के पास होता हुआ वह स्वय तो वागड की ओर चला गया और विजित प्रदेश की सुरक्षा का भार कछवाहो के ऊपर छोड गया। बादशाह अकबर इस प्रकार ससैन्य मेवाड होकर गुजरा। अपनी इस मेवाड यात्रा मे अकबर को केवल इतना लाभ हुआ कि दक्षिणी राजस्थान पर उसका आधिपत्य स्थापित हो गया तथा राजस्थान के नरेश इतने अधिक आतंकित हो गए कि अब राणा प्रताप की खुले रूप मे सहायता करने वाला कोई राजा नही बचा। लेकिन मुगल सत्ता को मेवाड मे पूर्णरूपेण शाति स्थापित करने मे कोई सफलता नही मिली, फिर भी राणा प्रताप के राज्य की सीमायें अत्यधिक सकुचित हो गई। उत्तर मे कुम्भलगढ से लगाकर दक्षिण मे ऋषभदेव से कुछ आगे तक तथा पूर्व मे देबारी से लगाकर पश्चिम मे सिरोही की सीमा तक उसकी सीमाए सीमित हो गई।

राजा भगवन्तदास और मानसिंह ने उन स्थानो पर पुन अधिकार

दिया। "The Rana had established perfect order in his land to the extent that women and children had no cause to fear anybody. People enjoyed so much of internal security that even the Rana could not punish those who had no fault He had made provision for the diffusion of education The land under his sway abounded in milk, fruits, trees and provision of various kinds"

चावन्ड के इन राजमहलो मे रहते हुए 19 जनवरी 1597 के दिन राणा प्रताप की मृत्यु हो गई। चावण्ड मे करीब $1\frac{1}{2}$ मील के फासले पर एक झरने के किनारे इनकी दाह क्रिया की गई जहा उनकी छतरी आज भी विद्यमान है।

राणा प्रताप की मृत्यु एव उनका मूल्याकन

इस प्रकार स्पष्ट है कि राणा प्रताप ने अनेको कठिनाइयो, कष्टो एव पराजयोंको निरन्तर सहते रहने परभी जीवन पर्यन्त अकबरकी आंशिक आधीनता तक स्वीकार नही की। "उसकी दृढता, धीरज, अडिग आत्मविश्वास तथा अनवरत प्रयत्न ससार के इतिहासकी बहुत ही अनोखी और सर्वथा अनुकरणीय वस्तुयें हैं। किन्तु सुसगठित शक्तिशाली स्वाधीन भारत के इस नये वातावरण मे तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओ का राष्ट्रीय दृष्टिकोण से निष्पक्ष अनुदर्शन करने पर राणा प्रताप के विशिष्ट आदर्श की सकीर्णता और उसकी विरोधपूर्ण नकारात्मक नीति ने हर प्रकार की रचनात्मकता का पूर्ण अभाव सुस्पष्ट हो जाते हैं।" राणा प्रताप का यह अनवरत विरोध भारतीय एकता और राष्ट्रीय सुसगठन के लिए प्रयत्न करने वाले नवयुवकों का आदर्श बन सकता है, लेकिन यह तो मानना पड़ेगा कि जिस सिद्धान्त पर वे अडे हुए थे वह सिद्धान्त तत्कालीन अन्य राजपूत शासकों के सिद्धान्त से भिन्न था। जबकि राणा प्रताप मेवाड की स्वतंत्रता एव सिसोदिया राजवश की प्रभुता के लिए सघर्षशील था उस समय राजस्थान का कोई अन्य राजा उससे प्रेरित होकर खुले रूप से उसके साथ नहीं आया। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि राणा प्रताप के अलावा अन्य राजपूत राजा कायर [illegible] हो गये थे कि अपने मौलिक हक के लिए अपनी [illegible] के लिए तैयार हो गये थे। यदि इन राजाओ को अपने [illegible] होती तो वे भी अवश्य प्रताप के साथ [illegible] अकबर का विरोध करते। अकबर के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के [illegible] था कि बादशाह तो केवल उनके [illegible], धार्मिक और धार्मिक जीवन में हस्तक्षेप [illegible] स्वीकार करने वाले राजाओ को [illegible] था। [illegible]

दिया । 'The Rana had established perfect order in his land to the extent that women and children had no cause to fear anybody People enjoyed so much of internal security that even the Rana could not punish those who had no fault He had made provision for the diffusion of education The land under his sway abounded in milk, fruits, trees and provision of various kinds"

चावन्ड के इन राजमहलो मे रहते हुए 19 जनवरी 1597 के दिन राणा प्रताप की मृत्यु हो गई । चावण्ड मे करीब $1\frac{1}{2}$ मील के फासले पर एक झरने के किनारे इनकी दाह क्रिया की गई जहा उनकी छतरी आज भी विद्यमान है ।

राणा प्रताप की मृत्यु एव उनका मूल्याकन

इस प्रकार स्पष्ट है कि राणा प्रताप ने अनेको कठिनाइयो, कष्टो एव पराजयो को निरन्तर सहते रहने पर भी जीवन पर्यन्त अकबर की आंशिक आधीनता तक स्वीकार नही की । "उसकी दृढता, धीरज, अडिग आत्मविश्वास तथा अनवरत प्रयत्न ससार के इतिहास की बहुत ही अनोखी और सर्वथा अनुकरणीय वस्तुयें है । किन्तु सुसगठित शक्तिशाली स्वाधीन भारत के इस नये वातावरण मे तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओ का राष्ट्रीय दृष्टिकोण मे निष्पक्ष अनुदर्शन करने पर राणा प्रताप के विशिष्ट आदर्श की सकीर्णता और उसकी विरोधपूर्ण नकारात्मक नीति मे हर प्रकार की रचनात्मकता का पूर्ण अभाव सुस्पष्ट हो जाते हैं ।" राणा प्रताप का यह अनवरत विरोध भारतीय एकता और राष्ट्रीय सुसगठन के लिए प्रयत्न करने वाले नवयुवको का आदर्श बन सकता है, लेकिन यह तो मानना पडेगा कि जिस सिद्धान्त पर वे अडे हुए थे वह सिद्धान्त समकालीन अन्य राजपूत राजाओ के सिद्धान्त से भिन्न था । जबकि राणा प्रताप मेवाड की स्वतत्रता तथा सीसोदिया राजवश की प्रभुता के लिए सघर्षशील था उस समय राजस्थान का कोई अन्य राजा उससे प्रेरित होकर युद्ध स्थल मे उसके साथ नही आया । इसका यह तात्पर्य नही है कि राणा प्रताप के अलावा अन्य राजपूत राजा कायर हो चुके थे अथवा इतने निर्बल हो गये थे कि अपने भौतिक सुख के लिए अपनी स्वतन्त्रता को बेचने के लिए तैयार हो गये थे । यदि इन राजाओ को अपने घर-बार धर्म अथवा रक्षा की चिन्ता होती तो वे भी महाराणा प्रताप के साथ कधा से कधा मिलाकर अकबर का विरोध करते । अकबर के साथ सम्पर्क स्थापित करने के पश्चात् इन राजाओ को विश्वास हो गया था कि बादशाह तो केवल उनकी अधीनता चाहता था ना कि उनके सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन मे हस्तक्षेप करना चाहता था । आधिपत्य स्वीकार करने वाले राजाओ को साम्राज्य मे ऊचे से ऊचे पद पर नियुक्त किया जाता था । सामान्य

पैसा दिया । इसने हरीदास झाला के नेतृत्व मे एक स्थायी सेना भी स्थापित की जिसमे पैदल, घुडसवार, हाथी और रथ थे । तोपखाना भी कायम किया और गोडवाना तथा मुल्तान से अनुभवी तोपचियो की सेवाए प्राप्त करके उन्हे अपनी सेना मे भर्ती किया । सैनिक सामग्री भी जुटाई थी । इस प्रकार एक ओर तो महाराणा अमरसिंह ने मेवाड मे आन्तरिक व्यवस्था स्थापित की और दूसरी ओर मुगलो के साथ सघर्ष भी जारी रक्खा जो कि उसे विरासत मे अपने स्वर्गीय पिता से प्राप्त हुआ था ।

मुगल सम्राट् अकबर ने पजाब मे फारिग होकर 1599 के प्रारम्भ मे मेवाड पर चढाई करने का निश्चय किया । क्योकि अकबर के लिये दक्षिण जाना आवश्यक था, अत उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र सलीम के नेतृत्व मे एक सेना 19 सितम्बर 1599 के दिन अजमेर की ओर रवाना की । सलीम के साथ राजा मानसिंह को भी भेजा गया । एक ओर तो शाही सेना मेवाड के प्रदेशो पर अधिकार करती हुई उदयपुर तक बढ गई और दूसरी ओर महाराणा अमरसिंह ने पहले ऊटाले के मुगल थाने पर, बाद मे माडल और फिर अन्य थानो को लूटा तथा वह मालपुरा तक पहुँच गया । सौभाग्य से इस समय सलीम का मस्तिष्क विकृत हो गया और वह जून 1600 मे राजस्थान छोडकर इलाहाबाद की ओर चला गया । राजा मानसिंह को भी बगाल लौटना पडा क्योकि वहा भी उपद्रव और विद्रोह हो रहे थे । सलीम के विद्रोह ने अकबर को अनेक कौटुम्बिक उलझनो मे उलझा दिया । अत उसके जीवनकाल मे मुगलो की मेवाड पर कोई अन्य चढाई नही हो सकी । अक्टूबर 1603 मे उसने शाहजादा सलीम को मेवाड जाने का आदेश दिया था । लेकिन सलीम फतहपुर सीकरी से आगे नही बढा । अतएव महाराणा अमरसिंह को अपनी शक्ति सगठित करने तथा भावी मुगल आक्रमणो का सामना कर सकने की तैयारी का पूरा-पूरा अवसर मिल गया ।

जहाँगीर ने जिस काम को अपने पिता के जीवन काल मे करने मे अरुचि प्रदर्शित की थी, वही कार्य उसने बादशाह बनते ही अपने हाथो मे लिया । नवम्बर 1605 मे शाहजादा परवेज और आसफखा जफर बेग के नेतृत्व मे एक सेना, जिसमे 22000 घुडसवार थे, मेवाड विजय करने के लिए रवाना की । लेकिन इस समय मुगलो को कोई उल्लेखनीय सफलता नही मिली । इसके दो कारण थे—

(1) जहागीर के पुत्र खुसरो ने राजगद्दी प्राप्त करने के लिए विद्रोह कर दिया था । अत उसे शाहजादा परवेज और आसफखा को मेवाड मे वापस बुलाना पडा ।

(2) राणा अमरसिह ने आक्रमणकारी सेना से मेवाड की रक्षा करने के लिए देसूरी, बदनोर और माडल मे शक्तिशाली चौकिया स्थापित कर दी थीं ।

लेकिन जहागीर ने मेवाड विजय का विचार छोडा नही, समय और परिस्थितियो के अनुसार स्थगित कर दिया । अत उसने जुलाई 1608 मे

गीर के मेवाड विजय करने के सप्त वर्षीय प्रयत्नो का भी अन्त हुआ। संधि-पत्र की शर्तें इस प्रकार थी—

(i) महाराणा अमरसिंह को दूसरे राजाओ के समान शाही सेवा मे शामिल कर लिया गया।

(ii) लेकिन महाराणा अमरसिंह को व्यक्तिगत रूप से शाही दरबार मे उपस्थित नही होने की अनुमति दे दी गई।

(iii) राणा अमरसिंह के स्थान पर उसका ज्येष्ठ पुत्र कु वर कर्ण शाही दरबार मे जाएगा।

(iv) महाराणा 1000 घुडसवारों को कु वर कर्ण के साथ शाही सेवा मे भेजेगा।

(v) चित्तौड का किला तो महाराणा को लौटा दिया जाएगा लेकिन वह उसकी मरम्मत नही करा सकेगा और न किला बन्दी ही करा सकेगा।

इस प्रकार जहागीर ने अमरसिंह के द्वारा मुगल आधिपत्य स्वीकार कर लेने के पश्चात् वह आशातीत सफलता प्राप्त की जो उसका प्रतापी पिता भी प्राप्त नही कर सका था और अमित सतोष तथा अपूर्व गौरव का अनुभव किया।

कु वर कर्ण जब बादशाह जहागीर के दरबार मे अजमेर पहुँचा तब उसे दाहिनी ओर की पक्ति मे सर्व प्रथम खडा किया गया, सारा मेवाड का विजित प्रदेश उसे लौटा दिया गया और डूगरपुर, बासवाडा व देवलिया के राज्य भी उसे लौटा दिये गये। इसके अतिरिक्त कु वर कर्ण को मुगल प्रशासनिक सेवा मे पाच हजार का मन्सब भी प्रदान किया गया। इसी समय कु वर कर्ण के पुत्र जगतसिंह का भी बादशाह से परिचय कराया गया।

महाराणा अमरसिंह ने मुगल सम्राट् का अधिपत्य स्वीकार करके भावुक लोगो की दृष्टि मे एक घोर अपराध किया था। इतिहास मे उनका नाम अपमान-जनक शब्दो मे लिखा गया। लेकिन यह आलोचना युक्तिसगत नही है। पैंतालीस वर्षों के निरन्तर युद्धो ने मेवाड की शक्ति को क्षीण कर दिया था। केवल सैनिक शक्ति ही क्षीण नही हुई थी, वरन् आर्थिक दृष्टि से भी मेवाड बर्बाद हो चुका था। खेतो मे उपज नही हो रही थी। महाराणा की सेना के स्तम्भ, मेवाड के जागीरदार युद्ध से इतना अधिक थक गए थे कि उन लोगो ने अमरसिंह के पुत्र कर्ण को युद्ध समाप्त करके मुगल बादशाह के साथ सधि कर लेने के लिए विवश किया था। इन परिस्थितियो मे अमरसिंह के लिए संधि करके मुगल बादशाह की अधीनता स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नही था। शान्ति स्थापित हो जाने

इस प्रकार वृहद् पैमाने पर भवन निर्माण का कार्य प्रारम्भ करके महाराणा कर्णसिंह ने मेवाड की बेरोजगार जनता को रोजगार प्रदान किया। जो लोग शारीरिक कार्य के लिए अयोग्य थे उन्हे दान के रूप मे आर्थिक सहायता दी गई। इस प्रकार महाराणा अमरसिंह के शासनकाल मे मेवाड की मुगलो के साथ जो संधि स्थापित हो गई थी उससे लाभ उठाकर कर्ण ने मेवाड की आन्तरिक व्यवस्था की ओर अपना पूरा ध्यान लगाया।

इसी समय बादशाह जहागीर के पुत्र खुर्रम ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह का झडा खडा कर दिया। विद्रोह काल मे शाही सेनाए निरतर खुर्रम का पीछा कर रही थी। अत मार्च 1623 मे बिलोचपुर के युद्ध मे पराजित हो जाने के पश्चात् बागी शाहजादा राजस्थान की ओर आया। उसने आमेर को लूटा और माडू की राह ली। उस समय अल्प समय के लिए वह मेवाड भी गया था। यद्यपि फारसी तवारीखो मे खुर्रम की उदयपुर यात्रा का वर्णन नही है, लेकिन राजस्थानी भाषा के सभी ग्रथो मे इसका वर्णन है। इसके अतिरिक्त विद्रोहकाल मे महाराणा कर्णसिंह का भाई राजा भीम सीसादिया खुर्रम के साथ था। खुर्रम के स्वय भी व्यक्तिगत रूप से महाराणा कर्ण के साथ सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे। अत बहुत सम्भव है कि वह माडू जाते समय उदयपुर गया हो।[1] मेवाड की परम्परा के अनुसार जब शाहजादा खुर्रम उदयपुर मे ठहरा हुआ था तब उसने महाराणा कर्ण के साथ पगडी बदली थी। लाल रग की यह पगडी अब भी उदयपुर म्यूजियम मे सुरक्षित है। भाईचारे मे पगडी बदलने की जिस घटना का डा० ओझा और कविराजा श्यामलदास ने जो वर्णन किया है वह जनश्रुति के आधार पर हो सकता है क्योकि समकालीन ऐतिहासिक आधार ग्रथ उसके सम्बन्ध मे मौन है लेकिन विद्रोहकाल मे खुर्रम का उदयपुर जाकर (अप्रेल-मई 1623) इनेगिने दिन ठहरना ऐतिहासिक सत्य है। हो सकता है कि इस यात्रा का कोई राजनैतिक परिणाम नही निकला हो क्योकि मेवाड के महाराणा ने खुले रूप मे विद्रोही शाहजादे को कोई सहायता नही दी थी, लेकिन फिर भी यह घटना मेवाड के इतिहास मे कम महत्व नही रखती। शाहजहा के शासनकाल मे मेवाड के मुगल साम्राज्य के साथ जो मधुर सम्बन्ध रहे उसका एक कारण खुर्रम की मेवाड यात्रा हो सकती है।

जहागीर की मृत्यु के पश्चात् जब शाहजादा खुर्रम गद्दीनशीन होने के लिए दक्षिण से आगरा जा रहा था तब वह राजस्थान के मार्ग से गुजरा था। उस वक्त गोगूदा मे खुर्रम और महाराणा कर्णसिंह की 1 जनवरी 1628 के दिन

---

1 राज प्रशस्ति, अमरकाव्य वशावली तथा राजप्रकाश मे खुर्रम की उदयपुर यात्रा का जिक्र है।

प्रयत्न किया। स्वाभाविक रूप से मुगल सम्राट् शाहजहा महाराणा की इन आकाक्षावादी सैनिक कार्यवाहियो से असन्तुष्ट हो गया। अत महाराणा जगतसिंह ने 1615 की सधि के अनुसार देलवाडा के कल्याण झाला के नेतृत्व मे मेवाड की सेना को दक्षिण के युद्धो मे भाग लेने के लिए भेजा। कल्याण झाला के साथ महाराणा ने जो पत्र शाहजहा की सेवा मे भेजा था उससे शाहजहा सन्तुष्ट हो गया और उसने महाराणा जगतसिंह के विरुद्ध किसी प्रकार की कोई भी सैनिक कार्यवाही नही की।

लेकिन शाहजहा और जगतसिंह का मनमुटाव दिलो मे बदस्तूर बना रहा। अत जैसे ही शाहजहा को अवकाश मिला वैसे ही वह 1643 मे अजमेर तक पहुँच गया। अजमेर तक तो शाहजहा जियारत का बहाना करके आया था लेकिन इनायत खा लिखता है कि शाहजहा अजमेर से चलकर चित्तौड तक पहुँच गया था। इस समय महाराणा जगतसिंह युद्ध के लिए तैयार नही था। अत उसने अपने पुत्र राजसिंह को बादशाह की सेवा मे भेजा। बहुमूल्य भेंटें इत्यादि देकर उसने सम्भावित सकट से मेवाड की रक्षा करली। महाराणा जगतसिंह 'बलवानपि शक्तेन नृप सधि विधायस' की नीति मे विश्वास करता था।[1] अत 1643 के बाद महाराणा यदा-कदा शाहजहा की सेवा मे बहुमूल्य भेंटें भेजकर खुला सघर्ष टालते रहे। 1648 मे बल्ख और बदख्शा के युद्धो मे मुगल सेना के द्वारा प्राप्त सफलताओ पर बधाई देने के लिए महाराणा जगतसिंह ने अपने पुत्र राजसिंह को आगरा भेजा था। लेकिन जब मुगल सम्राट 1649 मे कधार के फसाद मे उलझ गया तो वह 1615 की सधि की अवहेलना करके चित्तौड के किले की दीवारें और दरवाजे बनवाने मे लग गया। शाहजहा को कधार के फसाद से शीघ्र फुर्सत नही मिल सकी।

इस प्रकार मुगलो के साथ सघर्ष को टालकर महाराणा जगतसिंह ने मेवाड में रचनात्मक कार्यो की ओर अपना ध्यान दिया। इसे भवन निर्माण के प्रति अभिरुचि थी। उदयपुर में पिछोला झील के महल इसके शासनकाल मे ही बनवाए गए थे। उदयपुर शहर का सुप्रसिद्ध जगदीशजी का मन्दिर इसके शासन काल म ही बनवाया गया था। महाराणा जगतसिंह ने केवल भवन निर्माण काय की ओर ही ध्यान नही दिया बल्कि विद्वानो को सरक्षण प्रदान किया तथा धर्म शास्त्रो व

---

1. जगतसिंह काव्य by कवि रघुनाथ
   यह महाराणा जगतसिंह का समकालीन था। महाराणा जगतसिंह शक्ति-शाली शत्रु के साथ सधि तथा निर्बल शत्रुओ का दमन करने मे विश्वास करते थे।

इस समय राणा राजसिंह के प्रति शाहजादा दाराशिकोह की पूरी सहानुभूति थी। महाराणा राजसिंह को जैसे ही इस सहानुभूति का मालूम पडा, वैसे ही उन्होंने राव रामचन्द्र चौहान, राघवदास झाला, सावलदास राठौड और पुरोहित गरीबदास का एक शिष्टमण्डल दारा की सेवा मे भेजा। इन लोगो ने खलीलपुर के मुकाम पर दारा से भेंट की। तत्पश्चात् दारा की सिफारिश पर बादशाह ने चन्द्रभान ब्राह्मण को मुगल-मेवाड सघर्ष का अन्त करने के लिए उदयपुर भेजा। चन्द्रभान के साथ अब्दुलकरीम को भी भेजा गया था। इस समय चन्द्रभान ने पत्रो के द्वारा जो सूचना मुगल दरबार मे भिजवाई थी वह 'इन्शा-ए-चन्द्रभान' मे लिपिबद्ध हो कविराजा श्यामलदास ने सम्बन्धित पत्रो को मय उनके हिंदी अनुवाद के 'वीर विनोद' मे छाप दिया है।[2] वार्तालाप के पश्चात् राणा के पास मुगल सम्राट् की सख्त शर्तें स्वीकार करने के अलावा और कोई रास्ता नही बचा। वह पुर और मण्डल के परगने छोडने के लिए राजी हो गया। उसने शेख अब्दुलकरीम के हमराह अपने नाबालिग पुत्र को मुगल दरबार मे भेजा जिसका शाहजहा ने सौभागसिंह नाम रखा। बादशाह नें सौभागसिंह को उचित उपहार देकर वापस भेज दिया। दारा समझने लगा कि उसकी सिफारिश पर मुगलो की मेवाड के साथ जो सधि हुई है उससे महाराणा को कुछ भी नुकसान नही हुआ है। अपनी इस भावना को दारा ने एक पत्र मे प्रकट किया था जो इस सधि के तुरन्त पश्चात् मिर्जा राजा जयसिंह के नाम लिखा था।[3] लेकिन महाराणा राजसिंह को पुर और मण्डल के हाथ से निकल जाना खटकता रहा और उन्होंने उदयकरण चौहान और शकरभट्ट को दक्षिण मे दारा के प्रतिद्वन्दी औरगजेब के पास भेजा। औरगजेब ने इस अवसर से लाभ उठाकर इन्द्र भट्ट और किदाई ख्वाजा के द्वारा महाराणा के लिए निशान खिल्लत इत्यादि भिजवाई। औरगजेब ने किस प्रकार

---

1 दारा ने मिर्जा राजा जयसिंह को एक पत्र लिखा था जिसमे यह प्रकट होता है कि उसकी महाराणा के साथ सहानुभूति थी। पत्र का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है "चूकि एक अलग सेना राणा के प्रदेश के विरुद्ध भेज दी गई है और चूकि मैंने कृपा और उदारता के कारण सदैव राणा के हितो को अपने ध्यान मे रखा है, मेरी इच्छा है कि उसकी निष्ठा और भक्ति के विषय मे सत्य को सम्राट के सम्मुख प्रकट कर दूं ताकि वह और उसका प्रदेश विजयी सेना के आघात (आक्रमण) से बच जाए।"

2 देखिए वीर विनोद, P P 403-12

3 दारा के शब्दो मे ही "राणा का प्रदेश और सम्मान यथापूर्वक सम्पूर्ण हैं। यह सम्पूर्ण राजपूत जाति को ज्ञात होना चाहिए कि मैं उनका कितना हितैषी हूं।'

दुर्भाग्यवश महाराणा राजसिंह और औरंगजेब की मित्रता अधिक समय तक नही निभ सकी । 1660 मे किशनगढ की राठौड राजकुमारी चारूमती[1] के साथ विवाह करके महाराणा राजसिंह ने बादशाह औरंगजेब को अप्रसन्न कर दिया था । लेकिन राजसिंह ने उदयकरण चौहान के द्वारा पत्र भेजकर स्थिति को स्पष्ट कर दिया और इस प्रकार मेवाड के मुगलो के साथ पुन formal सम्बन्ध कायम हो गये ।

राजसिंह अपने काल के उन चतुर शासको मे से एक था जो अकारण शक्तिशाली मुगल साम्राट् से बैर मोल लेकर अपने राज्य को विनाश की ओर धकेलना नही चाहता था । अत वह निरंतर रूप से मुगल बादशाह तथा राजस्थान के अन्य प्रमुख राजपूत राजाओ के पास दूत तथा भेंटें भेजता रहा। इस प्रकार भारत के मुगल सम्राट को मैत्री के भुलावे मे डालकर राजसिंह ने 20 वर्ष का समय (1658 से 1679 तक के बीच का समय) अपनी स्थिति को सुदृढ करने, चित्तौड की किले-

1. चारूमती किशनगढ के राठौड राजा रूपसिंह की पुत्री थी । रूपसिंह तो सामूगढ के युद्ध मे मारा जा चुका था । उसके नाबालिग पुत्र और उत्तराधिकारी ने अपनी बहिन चारूमती का डोला शाही हरम मे भेजना स्वीकार कर लिया था । डोला ले जाने के लिये शाही अहदी और नाजिर किशनगढ पहुँच गये । उस वक्त चारूमती ने एक विधर्मी से शादी करने के बजाय राणा राजसिंह से शादी करना उचित समझ कर उसे पत्र भेजा जिसको पाकर महाराणा किशनगढ आए और चारूमती से शादी करके पुन मेवाड लौट गये । औरंगजेब को जब इसकी सूचना प्रतापगढ के रावल हरीसिंह के द्वारा मिली तो उसने गयासपुर और बसावर के परगने राजसिंह से छीनकर हरीसिंह को दे दिये । इन परगनो की वापिसी के लिये राजसिंह ने जो अर्जी बादशाह औरंगजेब को भेजी थी उसे 'वीर विनोद' मे छापा जा चुका है । इस अर्जी को पढने से प्रकट है कि औरंगजेब को राजसिंह से यह असन्तोष था कि उसने बादशाह जहांगीर की आज्ञा का उलंघन करके मुगल सम्राट् की आज्ञा के बगैर राजवंशीय विवाह कर लिया और इसलिये यह दोनो परगने तकफीफ कर दिये गये थे । लेकिन राजसिंह ने उदयकरण चौहान के द्वारा जब स्थिति को स्पष्ट करते हुए बादशाह के पास पत्र भेजा तो औरंगजेब ने इस घटना को अधिक बढाने के बजाय वही समाप्त कर दिया । कदाचित औरंगजेब चारूमती के विवाह द्वारा किशनगढ और मेवाड की Union को मुगल साम्राज्य के लिये अहितकर समझता था । लेकिन जब उसे मालूम पडा कि विवाह बलपूर्वक किया गया है तो उसने इसे वहीं खत्म कर देना ठीक समझा ।
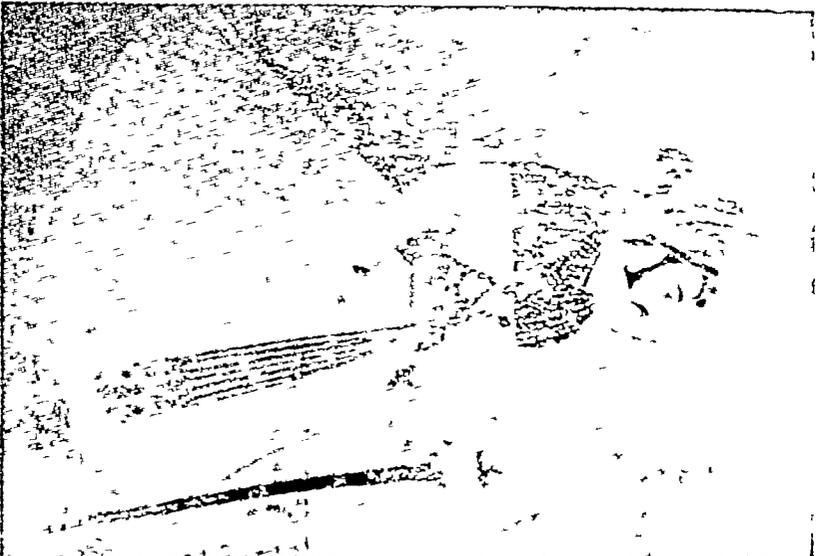
जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह
1775 ई० के लगभग बने चित्र का फोटोग्राफ
(कुमार सग्रामसिंह जी नवलगढ के सग्रह से)
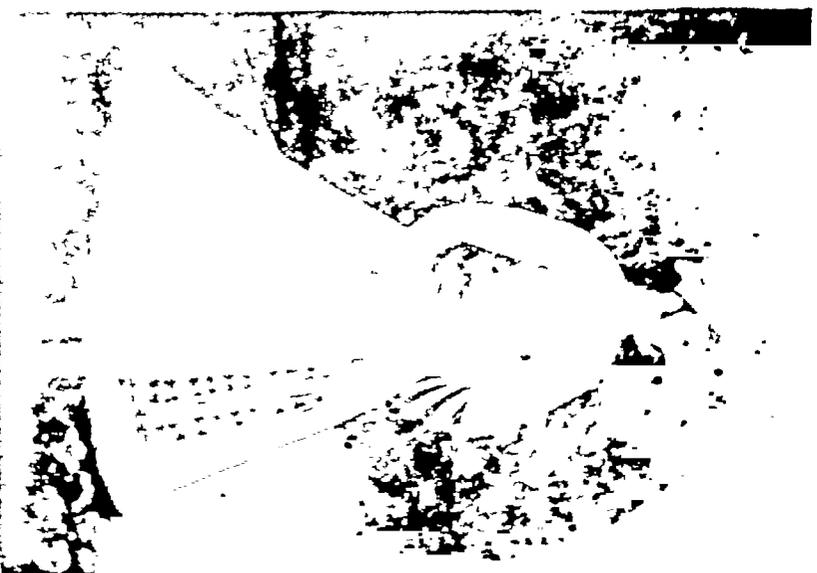
जोधपुर नरेश महाराजा गजसिंह
1750 के लगभग बने चित्र का फोटोग्राफ
(कुमार सग्रामसिंह जी नवलगढ के सग्रह से)

और हसनअली को उदयपुर भेजा । इस समय औरगजेब की आज्ञा से मेवाड में लगभग 175 मन्दिर नष्ट किये गए जिनमे से एक जगदीश जी का मन्दिर भी है जो उदयपुर शहर के मध्य मे स्थित है । इस मन्दिर की प्रत्येक प्रतिमा को आक्रमणकारी सेना ने खण्डित किया था । लेकिन जैसे ही बादशाह औरगजेब स्वय चित्तौड से अजमेर के लिये रवाना हो गया वैसे ही राजपूतो ने छापेमार युद्ध नीति अपना कर मुगलो के Communication को खत्म कर दिया ।[1] इस प्रकार जब जून 1680 मे मुगलो की मेवाड मे स्थिति चिन्ताजनक हो गई तो बादशाह ने मेवाड अभियान का उत्तरदायित्व अपने तृतीय पुत्र अकबर के हाथो से छीनकर दूसरे पुत्र आजम को सौंपा और अकबर को मारवाड मे नियुक्त किया ।

औरगजेब के अभियान से पूर्व ही राणा राजसिह ने पहाडो मे जाकर शरण ले ली थी । इन्ही पहाडो मे 22 अक्तूबर 1680 के दिन उसका देहान्त हो गया । उसके ज्येष्ठ पुत्र जयसिह को कुरज नामक स्थान पर गद्दीनशीन किया गया ताकि वह सघर्ष का नेतृत्व कर सके ।

स्पष्ट है कि महाराणा राजसिह केवल एक वीर और साहसी योद्धा ही नही था, वह एक कुशल कूटनीतिज्ञ, विद्या और कलाप्रेमी मेवाड की सर्वतोमुखी उन्नति चाहने वाला शासक था जिसका शासनकाल मेवाड के इतिहास मे आज भी स्वर्णाक्षरो मे अ कित है ।

महाराणा जयसिह
1680–1698
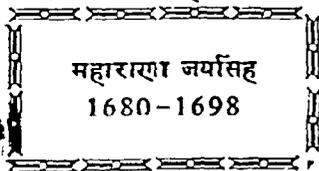
महाराणा राजसिह के ज्येष्ठ पुत्र जयसिह का जन्म 15 दिसम्बर 1653 के दिन हुआ और स्वर्गीयमहाराणा की मृत्यु के लगभग दो सप्ताह पश्चात् इनका कुरज[2] के स्थान पर राज्याभिषेक हुआ (3 नवम्बर, 1653) ।

22 नवम्बर के दिन मेवाड और मुगलो की सेना मे घमासान युद्ध हुआ जिसके परिणामस्वरूप जिलवाडा मुगलो के हाथ मे चला गया । तत्पश्चात् गगासिह ने चित्तौड के किले पर आश्चर्यजनक आक्रमण किया और महाराणा के मन्त्री दयालशाह ने सूबा मालवा मे सारगपुर, देवास, सिरोंज, माडू और उज्जैन को लूटा (दिसम्बर 1680) । राजपूतो की इस लूटमार ने मेवाड मे मुगलो के बढाव को रोक दिया ।

---

1. "इस समय मेवाड मे सर्वत्र विद्रोह की आग भडक उठी थी, और मार्च, 1680 के बाद तो राजपूत विद्रोहियो ने इतना अधिक उपद्रव मचाया और राजपूत सेना ने ऐसी तेजी और दृढता के साथ हमले किए कि उनके डर के मारे शाही सेना पूर्णतया निश्चेष्ट हो गई ।"
—पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृष्ठ 143

2. कुरज उदयपुर शहर से 50 मील उत्तर सहारा परगने मे है । महाराणा राजसिह की मृत्यु के समय जयसिह यहा के मोर्चे पर तनात थे । राजसिह की मृत्यु ओडा गाव मे हुई थी ।

इसके वाद मेवाड और मुगलो के बीच तो 1698 तक शाति रही लेकिन महाराणा जयसिंह को अन्य घरेलू समस्याओ का सामना करना पडा जिनका सक्षेप मे वर्णन इस प्रकार है।

महाराणा जयसिंह और उनके ज्येष्ठ पुत्र महाराजकुमार अमरसिंह के बीच शराव अधिक पीने के कारण मनमुटाव हो गया था। मनमुटाव इतना अधिक वढ गया था कि अपने ननमाल बूंदी से सहायता लेकर और मेवाड के कतिपय सरदारो को अपने पक्ष मे करके अमरसिंह ने मेवाड की गद्दी पर अधिकार कर लिया। महाराणा जयसिंह उदयपुर को अपने अधिकार मे करने के लिए सेना सहित जिलवाडा तक पहुँच गए। इस वक्त सरदारो ने महाराणा और उनके महाराजकुमार के वीच समझौता करा दिया।

इस घरेलू फसाद मे निवृत्त होने के वाद महाराणा जयसिंह ने उदयपुर शहर से 36 मील दक्षिण दिशा मे जयसमुद्र तालाव का निर्माण प्रारम्भ किया। इसके अतिरिक्त दो तालाव और भी इनके द्वारा वनवाए गए थे। तालाव की पाल पर महाराणा के वनवाए हुए महल आज भी मौजूद हैं जिन्हे रूठी रानी के महल कह कर पुकारा जाता है।

महाराणा जयसिंह ने 1681 मे मुगल बादशाह के साथ जो सन्धि की थी उसके परिणामस्वरूप हथियार-बन्द लडाई का तो अन्त हो गया लेकिन मेवाड के महाराणा ने पूर्ण जोश के साथ मुगलो के पक्ष का समर्थन नहीं किया। युद्ध का अन्त हो जाने से मेवाड की प्रजा को राहत अवश्य मिल गई। औरंगजेब के इतिहासकार सर जदुनाथ सरकार ने ठीक ही लिखा है, "The Rajput war was a drawn game so far as actual fighting was concerned, but its material consequenees were disastrons to the Maharana's subjects They retained their independence among the sterile craps of the Aravali, but their cornfields in the plain below

---

इनायत करने मे, जिसके अम्न और तरक्की के पाच हजारी जात, पाच हजार सवार, और हजार सवार दो अस्पा, और 2 करोड दाम इनाम होते है, सरवन्दी बवशकर दोनो जागीरें तरक्की की तनख्वाह व इनाम मे दी जाती हैं, खिल्लत और हाथी इनायत किए जाने मे इज्जत बढाई जाती है, मुनासिब है कि हमारी बडी उम्दा मेहरबानियों का शुक्र अदा करके अपने इकरार के मुताबिक मान जामिनी अजमेर के दीवान के पास जमा करे, और हर वर्ष जजिया का एक लाख रु० मुकरर की हुई किस्तो से सूवे के सरकारी खजाने मे अदा करता रहे।'

—वीर विनोद, P 671-72

इसके बाद मेवाड और मुगलो के बीच तो 1698 तक शान्ति रही लेकिन महाराणा जयसिंह को अन्य घरेलू समस्याओ का सामना करना पडा जिनका संक्षेप मे वर्णन इस प्रकार है।

महाराणा जयसिंह और उनके ज्येष्ठ पुत्र महाराजकुमार अमरसिंह के बीच शराब अधिक पीने के कारण मनमुटाव हो गया था। मनमुटाव इतना अधिक बढ गया था कि अपने ननसाल बूंदी से सहायता लेकर और मेवाड के कतिपय सरदारो को अपने पक्ष मे करके अमरसिंह ने मेवाड की गद्दी पर अधिकार कर लिया। महाराणा जयसिंह उदयपुर को अपने अधिकार मे करने के लिए सेना सहित जिलवाडा तक पहुँच गए। इस वक्त सरदारो ने महाराणा और उनके महाराजकुमार के बीच समझौता करा दिया।

इस घरेलू फसाद से निवृत होने के बाद महाराणा जयसिंह ने उदयपुर शहर से 36 मील दक्षिण दिशा मे जयसमुद्र तालाब का निर्माण प्रारम्भ किया। इसके अतिरिक्त दो तालाब और भी इनके द्वारा बनवाए गए थे। तालाब की पाल पर महाराणा के बनवाए हुए महल आज भी मौजूद है जिन्हे रूठी रानी के महल कह कर पुकारा जाता है।

महाराणा जयसिंह ने 1681 मे मुगल बादशाह के साथ जो सन्धि की थी उसके परिणामस्वरूप हथियार-बन्द लडाई का तो अन्त हो गया लेकिन मेवाड के महाराणा ने पूर्ण जोश के साथ मुगलो के पक्ष का समर्थन नहीं किया। युद्ध का अन्त हो जाने से मेवाड की प्रजा को राहत अवश्य मिल गई। औरंगजेब के इतिहासकार सर जदुनाथ सरकार ने ठीक ही लिखा है, "The Rajput war was a drawn game so far as actual fighting was concerned, but its material consequenees were disastrons to the Maharana's subjects They retained their independence among the sterile craps of the Aravali, but their cornfields in the plain below

---

इनायत करने मे, जिसके अस्प और तरक्की से पाच हजारी जात, पाच हजार सवार, और हजार सवार दो अस्पा, और 2 करोड दाम इनाम होते है, सरबन्दी बख्शकर दोनो जागीरें तरक्की की तनख्वाह व इनाम मे दी जाती हैं, खिलअत और हाथी इनायत किए जाने से इज्जत बख्शी जाती है, मुनासिब है कि हमारी बडी उम्दा मेहरबानियो का शुक्र अदा करके अपने इकरार के मुताबिक साल जामिनी अजमेर के दीवान के पास पेश करे, और हर वर्ष जजिया का एक लाख रु० मुकरर की हुई किस्तो मे सूबे के सरकारी खजाने मे अदा करता रहे।'

—वीर विनोद, P 671-72

15

राजस्थान के किले

(Forts of Rajasthan)

ऐतिहासिक काल के प्रारम्भ होने के साथ-साथ दुर्ग निर्माण की कला से मानव परिचित हो चुका था। एशिया माइनर, ग्रीस तथा दजला फरात व नील नदियो की घाटियो मे रहने वाले लोग अपनी रक्षा के लिये गढ अथवा गढिया बनवाया करते थे।

विदेशो के समान भारत-भूमि मे निवास करने वाले आदि मानव को जगली जानवरो, विदेशी आक्रमणकारी तथा चोर-लुटेरो से रक्षा करने के लिए प्रत्येक गाव की चार-दीवारी बनवानी पडी। आर्यों के आगमन से पूर्व भी भारत मे गढ तथा परकोटे वाले ग्राम (Fortified Towns) मौजूद थे। ऋग्वेद मे, जो सभ्य ससार की प्राचीनतम पुस्तक मानी जाती है, इस प्रकार के गढों का उल्लेख है जिनको दस्यो ने बनवाया था और नष्ट करने के लिए इन्द्र को कष्ट उठाने पडे थे।

वैदिक साहित्य का अध्ययन स्पष्ट करता है कि आर्य लोग 'पुर' शब्द का प्रयोग गढ के अर्थ मे करते थे। समकालीन महाकाव्यो मे तथा पुराणों मे गढ़ों का वर्णन मिलता है लेकिन उस युग मे गढ और कस्बे मे कोई अन्तर नहीं समझा जाता था। चौथी शताब्दी ईसवी पूर्व मे जब सिकन्दर महान् ने इस देश पर आक्रमण किया तब भारत मे Valled & fortified Towns मौजूद थे।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र, शिल्प शास्त्र, शुक्रनीतिसार और युक्ति कल्पतरु को पढने से सभ्यता और सस्कृति के विकास के साथ-साथ गढो के निर्माण की कला मे उन्नति का आभास भी मिलता है। अत मनसार ने अपने 'शिल्प शास्त्र' मे दुर्गों का विस्तार से वर्णन किया है। मनसार के अनुसार दुर्ग 6 प्रकार के हो सकते हैं —
(i) गिरी दुर्ग (ii) देव दुर्ग (iii) वन दुर्ग (iv) जल दुर्ग (v) मरु दुर्ग (vi) मिश्र दुर्ग। गिरी दुर्ग भी तीन प्रकार के हो सकते हैं —

(i) प्रान्तर गिरी दुर्ग, यह दुर्ग पहाडी की चोटी पर समतल भूमि मे बनाए जाते थे। इन दुर्गों को बनाते वक्त मैदान तक पहुचने के लिए एक गुप्त नाल (Secret tunnel) रक्खी जाती थी।

(ii) गिरी पार्श्व दुर्ग—पहाड के ढाल पर बनाए जाते थे।

(iii) गुहा दुर्ग—किसी पहाड की घाटी मे बनाये जाते थे।

दुर्ग बनाने से पूर्व भूमि का चुनाव किस प्रकार किया जाय, किले की दीवारें कितनी ऊची हो, कितने-कितने फासले पर बुर्ज बनाए जाय, किनके द्वारा रखे

तेरहवी शताब्दी के पश्चात जब उत्तर भारत पर मुसलमानो का राज्य स्थापित हो गया और यह सुल्तान अपने राज्य और शक्ति का विकास करने मे जुट गए तब दुर्गो का महत्व अधिक बढ गया । अत तेरहवी शताब्दी के पश्चात राजस्थान मे जो दुर्ग बनवाये गए उनका ध्येय रक्षा के अतिरिक्त निजी वैभव का प्रदर्शन भी था । अत इन दुर्गो मे कतिपय भव्य भवन भी बनवाये गये जो इन निर्माताओ के कला प्रेम के ज्वलत उदाहरण के रूप मे आज भी विद्यमान है । लेकिन दुर्गो का निर्माण करवाते वक्त धार्मिक भावना भी विद्यमान रहती थी । दुर्गो के भीतर भव्य मन्दिरो का होना यह सिद्ध करता है कि यह राजपूत राजा देवी-देवताओ की प्रतिमाओ को टूट-फूट और विनाश से बचाना चाहते थे । धार्मिक पूजा प्रत्येक हिन्दू स्त्री एव पुरुष की नित्य आराधना का एक आवश्यक अग था । दुर्ग के भीतर मन्दिर होने मे इस धार्मिक कृत्य के लिए बाहर नही जाना पडता था ।

बडे दुर्गो के भीतर प्रजा के निवास की भी व्यवस्था की जाती थी । पर्याप्त मात्रा मे रसद को सगृहीत करने के लिए उचित स्थान बनाये जाते थे । इस प्रकार दुर्गो को बनवाते समय उन्हे स्वावलम्बी (Self-sufficient) बनाने का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाता था ।

ऊपर लिखा जा चुका है कि राजस्थान मे अनेको गढ और गढिया है । लेकिन यदि इनका architectural दृष्टिकोण से अवलोकन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि यह सब गिरी दुर्ग है । किसी न किसी पहाडी पर यह दुर्ग बनाये गये थे । निर्माण करते समय ऐसी पहाडियो को चुना जाता था जो अत्या-धिक ढालू (Steep) हो और उन पर पहुचने का मार्ग सरल नही हो । इस प्रकार पहाडी पर बना होने के कारण दुर्ग का रक्षात्मक महत्व बढ जाता था । साथ ही धरातलीय टूट-फूट की सम्भावनायें कम हो जाती थी और ऊचाई पर होने के कारण दुर्ग की प्रभावपूर्णता भी बढ जाती थी ।

राजस्थान के दुर्गो की दूसरी विशेषता यह है कि लगभग सभी दुर्गो के चारो ओर चौडी खाई है । इस खाई मे पानी भरे जाने का प्रबन्ध है । चौडी और गहरी खाई मे घिरे होने के कारण शत्रु सरलता से किले के भीतरी भाग तक नही पहुच सकता । किले की दीवारो पर चढना अथवा दीवार से कूद कर बाहर निकल जाना चौडी और गहरी खाई के कारण असम्भव होता था ।

तीसरी विशेषता यह है कि सभी दुर्ग लम्बे चौडे भूभाग के घेरे मे बने हुए है । घेरा कम से कम एक मील इसलिए रखा जाता था जिससे राजा के महल इत्यादि आसानी से बन सकें और संकट के समय पर किले के बाहर [illegible] करने वाली जनसख्या भी किले मे आश्रय प्राप्त कर सके ।

राजस्थान के सभी दुर्गो मे भव्य भवनो के अतिरिक्त बाग, तालाब एव बावडियो का भी समुचित प्रबन्ध होता था । सभी किलो मे देवालय [illegible] । इन भवनो मे सुन्दरता और महानता का आभास मिलता है ।

तेरहवी शताब्दी के पश्चात जब उत्तर भारत पर मुसलमानो का राज्य स्थापित हो गया और यह सुल्तान अपने राज्य और शक्ति का विकास करने मे जुट गए तब दुर्गों का महत्व अधिक बढ गया। अत तेरहवी शताब्दी के पश्चात राजस्थान मे जो दुर्ग बनवाये गए उनका ध्येय रक्षा के अतिरिक्त निजी वैभव का प्रदर्शन भी था। अत इन दुर्गों मे कतिपय भव्य भवन भी बनवाये गये जो इन निर्माताओ के कला प्रेम के ज्वलत उदाहरण के रूप मे आज भी विद्यमान हैं। लेकिन दुर्गों का निर्माण करवाते वक्त धार्मिक भावना भी विद्यमान रहती थी। दुर्गों के भीतर भव्य मन्दिरो का होना यह सिद्ध करता है कि यह राजपूत राजा देवी-देवताओ की प्रतिमाओ को टूट-फूट और विनाश से बचाना चाहते थे। धार्मिक पूजा प्रत्येक हिन्दू स्त्री एव पुरुष की नित्य आराधना का एक आवश्यक अग था। दुर्ग के भीतर मन्दिर होने से इस धार्मिक कृत्य के लिए बाहर नही जाना पडता था।

बडे दुर्गों के भीतर प्रजा के निवास की भी व्यवस्था की जाती थी। पर्याप्त मात्रा मे रसद को सगृहीत करने के लिए उचित स्थान बनाये जाते थे। इस प्रकार दुर्गों को बनवाते समय उन्हे स्वावलम्बी (Self-sufficient) बनाने का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाता था।

ऊपर लिखा जा चुका है कि राजस्थान मे अनेको गढ और गढिया हैं। लेकिन यदि इनका architectural दृष्टिकोण से अवलोकन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि यह सब गिरी दुर्ग हैं। किसी न किसी पहाडी पर यह दुर्ग बनाये गये थे। निर्माण करते समय ऐसी पहाडियो को चुना जाता था जो अत्याधिक ढालू (Steep) हो और उन पर पहुचने का मार्ग सरल नही हो। इस प्रकार पहाडी पर बना होने के कारण दुर्ग का रक्षात्मक महत्व बढ जाता था। साथ ही धरातलीय टूट-फूट की सम्भावनायें कम हो जाती थी और ऊचाई पर होने के कारण दुर्ग की प्रभावपूर्णता भी बढ जाती थी।

राजस्थान के दुर्गों की दूसरी विशेषता यह है कि लगभग सभी दुर्गों के चारो ओर चौडी खाई है। इस खाई मे पानी भरे जाने का प्रबन्ध है। चौडी और गहरी खाई से घिरे होने के कारण शत्रु सरलता से किले के भीतरी भाग तक नही पहुच सकता। किले की दीवारों पर चढना अथवा दीवार से कूद कर बाहर निकल जाना चौडी और गहरी खाई के कारण असम्भव होता था।

तीसरी विशेषता यह है कि सभी दुर्ग लम्बे चौडे भूभाग के घेरे मे बने हुए हैं। घेरा कम से कम एक मील इसलिए रक्खा जाता था जिससे राजा के महल इत्यादि आसानी से बन सकें और सकट [illegible] पर किले के बाहर निवास करने वाली जनसख्या भी किले मे आश्रय प्राप्त कर सके।

राजस्थान के सभी दुर्गों मे भव्य भवनो के अतिरिक्त रक्षा, रसद के साधनो का भी समुचित प्रबन्ध होता था। सभी किलो मे देवालय मिल जाते हैं। इन भवनो मे सुन्दरता और महानता का आभास मिलता है।

तेरहवी शताब्दी के पश्चात जब उत्तर भारत पर मुसलमानो का राज्य स्थापित हो गया और यह सुल्तान अपने राज्य और शक्ति का विकास करने मे जुट गए तब दुर्गों का महत्व अधिक बढ गया। अत तेरहवी शताब्दी के पश्चात राजस्थान मे जो दुर्ग बनवाये गए उनका ध्येय रक्षा के अतिरिक्त निजी वैभव का प्रदर्शन भी था। अत इन दुर्गों मे कतिपय भव्य भवन भी बनवाये गये जो इन निर्माताओ के कला प्रेम के ज्वलत उदाहरण के रूप मे आज भी विद्यमान है। लेकिन दुर्गों का निर्माण करवाते वक्त धार्मिक भावना भी विद्यमान रहती थी। दुर्गों के भीतर भव्य मन्दिरो का होना यह सिद्ध करता है कि यह राजपूत राजा देवी-देवताओ की प्रतिमाओ को टूट-फूट और विनाश से बचाना चाहते थे। धार्मिक पूजा प्रत्येक हिन्दू स्त्री एव पुरुष की नित्य आराधना का एक आवश्यक अग था। दुर्ग के भीतर मन्दिर होने से इस धार्मिक कृत्य के लिए बाहर नही जाना पडता था।

बडे दुर्गों के भीतर प्रजा के निवास की भी व्यवस्था की जाती थी। पर्याप्त मात्रा मे रसद को सगृहीत करने के लिए उचित स्थान बनाये जाते थे। इस प्रकार दुर्गों को बनवाते समय उन्हे स्वावलम्बी (Self-sufficient) बनाने का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाता था।

ऊपर लिखा जा चुका है कि राजस्थान मे अनेकों गढ और गढिया है। लेकिन यदि इनका architectural दृष्टिकोण से अवलोकन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि यह सब गिरी दुर्ग हैं। किसी न किसी पहाडी पर यह दुर्ग बनाये गये थे। निर्माण करते समय ऐसी पहाडियो को चुना जाता था जो सर्वाधिक ढालू (Steep) हो और उन पर पहुचने का मार्ग सरल नही हो। इस प्रकार पहाडी पर बना होने के कारण दुर्ग का रक्षात्मक महत्व बढ जाता था। साथ ही धरातलीय टूट-फूट की सम्भावनायें कम हो जाती थी और ऊचाई पर होने के कारण दुर्ग की प्रभावपूर्णता भी बढ जाती थी।

राजस्थान के दुर्गों की दूसरी विशेषता यह है कि लगभग सभी दुर्गों के चारो ओर चौडी खाई हैं। इस खाई मे पानी भरे जाने का प्रबन्ध है। चौडी और गहरी खाई से घिरे होने के कारण शत्रु सरलता से किले के भीतरी भाग तक नही पहुच सकता। किले की दीवारो पर चढना अथवा दीवार से कूद कर बाहर निकल जाना चौडी और गहरी खाई के कारण असम्भव होता था।

तीसरी विशेषता यह है कि सभी दुर्ग लम्बे चौडे क्षेत्र मे फैले हुए हैं। घेरा कम से कम एक मील [illegible] रक्खा जाता था [illegible] इत्यादि आसानी से बन सकें और [illegible] पर किले के [illegible] भी किले से प्राप्त कर सकें।

राजस्थान के सभी दुर्गों मे राज भवनो के अतिरिक्त [illegible], [illegible] का भी समुचित प्रबन्ध होता था। सभी किलो मे देवालय [illegible]। इन भवनो मे सुन्दरता और महानता का [illegible] मिलता है।

राजस्थान
SCALE 1 = 50 MILES
मुलतान
पंजाब
सिंध
गुजरात
मालवा
गागरोन
अजमेर
मेड़ता

राजस्थान
SCALE 1 = 50 MILES
मुलतान
पंजाब
दिल्ली
अजमेर
गुजरात
मालवा

ई० पूर्व मे इस पर मथुरा के सौरसेन शासको का अधिकार था। दूसरी शताब्दी मे इस पर यौधेय लोगो का अधिकार हो गया। 360 ई० के लगभग गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त ने इसे अपने अधिकार मे कर लिया था। जिस समय श्री हर्ष भारत पर राज्य कर रहा था उस वक्त बयाना मे गुर्जरो का स्वतन्त्र राज्य था। नवी शताब्दी मे गुर्जरो की प्रतिहार शाखा ने इसे अपने अधिकार मे कर लिया। प्रतिहार शासक राजा लक्ष्मण की रानी चित्रलेखा ने 956 ई० मे बयाना मे ऊषा मन्दिर बनवाया था। गुर्जर प्रतिहारो क पतन के पश्चात् बयाना पर मथुरा के यदुवंशी राजा जिदपाल का अधिकार हो गया। जिदपाल के पुत्र और उत्तराधिकारी विजयपाल ने विजयमन्दिरगढ नाम का दुर्ग बनवाया था। विजयपाल का बयाना पर ग्यारवी शताब्दी के अन्त तक अधिकार रहा। विजयपाल के पुत्र और उत्तराधिकारी तिमनपाल ने बयाना के निकट तिमनगढ बनवाया। तिमनपाल के एक वशज राम कुवरपाल का 1196 ई० मे मुस्लिम आक्रमणकारी मुहम्मद गोरी के साथ घमासान युद्ध हुआ। मुहम्मद गोरी का इस दुर्ग पर अधिकार हो गया और उसने यहा का प्रबन्ध बहाउद्दीन तुगरिल को सौप दिया। लेकिन कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के पश्चात् बयाना दिल्ली सुल्तान के हाथ मे निकल गया। अत इल्तुतमिश को इसे पुन. विजय करना पडा। इल्तुतमिश के निर्बल उत्तराधिकारियों के शासन काल मे बयाना पर जादो-भाटी राजपूतो का अधिकार हो गया था। अत सुल्तान नासिरउद्दीन महमूद के शासन काल मे उसके वजीर बलबन और अन्य सरदारो न बयाना पर आक्रमण किया। विजय के पश्चात् सुल्तान नासिरउद्दीन महमूद ने बयाना का किला मलिक शेरखा की जागीर मे दे दिया। तदुपरान्त बयाना 1394 तक निरन्तर रूप मे दिल्ली के सुल्तानो के अधिकार मे बना रहा। केवल 1394 A.D. मे मुहम्मद तुगलक ने बयाना पर आक्रमण किया था। लेकिन 1398 मे तैमूर के आक्रमण के पश्चात् जब दिल्ली सल्तनत अस्तव्यस्त हो गई उस वक्त बयाना के सूबेदार शम्सखा ने भी अपने आपको स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया।

'The principality of Bayana, carved out by Shams Khan Anhadi at the end of 14th century, had lasted for well nigh a century as a buffer state between the rival Sultanates of Delhi and Malwa. In 1446 A.D. Sultan Mahmud Khilji of Malwa had recognised the independent states by investing the contemporary ruler with a gold crown. Even since that time Bayana had always leaned for support on the Malwa Sultans or

f[illegible] it's on the Sharqi Kingdom against any possible encroachment from Delhi."[1]

मखजाने अफगाना के वर्णन मे स्पष्ट है कि बयाना की Strategic importance होने के कारण यहा के स्वतत्र शासक शम्स खा ने अपनी स्थिति को सुदृढ बना लिया था। मेवात का प्रमुख दुर्ग बयाना दिल्ली के सुल्तानो के लिए एक समस्या बना रहा। तैमूर के भारत से वापस चले जाने के बाद जब खिज्रखा सैयद ने अपना राज्य स्थापित कर लिया था तब उसे भी 1415 ई० मे बयाना को अपने अधिकार मे लाने के लिए अपने मत्री ताज उल मुल्क के नेतृत्व मे एक सेना भेजनी पडी थी। बहलोल लोदी और सिकन्दर लोदी को भी बयाना पर अधिकार करने के लिए अपनी सेनाए भेजनी पडी थी। सिकन्दर लोदी ने तो अस्थाई रूप से बयाना को अपना हैडक्वार्टर भी बनाया था। 1505 मे जब उसने जमुना नदी के किनारे आगरा की स्थापना की थी तब उसके मस्तिष्क मे एक कारण उन विद्रोहियो का दमन करना भी था जो मेवात मे निरतर रूप से उपद्रव करते आए थे। मेवात मे बलवान जमीदार निरतर विद्रोह हुआ करते थे और दिल्ली के प्रत्येक शक्तिशाली सुल्तान को जब कभी मेवात की ओर कूच करना पडा तब ही बयाना के किले के सम्मुख भीषण सग्राम हुआ। इन सग्रामो की कहानी उन असख्य कब्रो को देखने से ज्ञात

पत के द्वितीय युद्ध मे हेमू पराजित हो गया। उस वक्त बयाना भी मुगल बादशाह के अधिकार मे चला गया जो 18वीं शताब्दी के प्रथम चरण तक निरन्तर मुगल सम्राटो के अधिकार मे बना रहा।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि आगरा की स्थापना होने तक बयाना एक महत्वपूर्ण किला था।[1] अकबर महान के शासन काल मे इसका राजनैतिक महत्व अवश्य कम हो गया था, लेकिन फिर भी इसका Architectural और आर्थिक महत्व किसी रूप मे कम नही था। यहा की नील इतनी अधिक प्रसिद्ध थी कि उसका विदेशो मे भी निर्यात होता था। खुलासुत-उल-तवारीख का लेखक सुजानराम लिखता है कि यहा के मतीरे और आम सर्वाधिक प्रसिद्ध थे।

बयाना के मुख्य स्मारको मे लाट, दाऊदखा की मीनार, ऊखा मन्दिर, इब्राहीम लोदी की मीनार, इस्लामशाह सूर का बनवाया हुआ दर्वाजा, अकबर की छतरी, जहागीर की बनवाई हुई बावली तथा दर्वाजा तथा सिकन्दरा मस्जिद के निकट पुराना दर्वाजा सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्य कला के आदर्शों के प्रतीक यह स्मारक बयाना के ऐतिहासिक महत्व को बढ़ाने वाले हैं।

शाहजहा और औरगजेब के शासन काल में यह किला मुगल साम्राज्य के कारावास के रूप मे प्रयुक्त होता था जब राजनैतिक तथा अन्य अपराधियो को यहा रक्खा जाता था।

औरगजेब की मृत्यु के पश्चात् जब ठाकुर बदनसिह ने भरतपुर मे जाट राज्य की स्थापना की उस समय बयाना का किला भरतपुर के जाट राजाओ के हाथो मे चला गया जो भरतपुर के विलीनीकरण तक भरतपुर राज्य का अग रहा था।

आज से लगभग 20 वर्ष पहले बयाना के किले मे खुदाई का कार्य किया गया था। उस वक्त यहा से गुप्त काल के लगभग 500 सोने के सिक्के प्राप्त हुए थे। इतनी अधिक मात्रा मे सिक्के प्राप्त होने पर बयाना का पुरातत्व सम्बन्धी महत्व और अधिक बढ़ गया।

हिन्दुओ के द्वारा बनवाया हुआ बयाना का किला अपनी Strategic importance के कारण प्रारम्भ से ही प्रसिद्ध रहा है। लेकिन भारत मे मुसलमानो के प्रवेश के बाद इस किले का महत्व और भी अधिक बढ़ गया था। आगरा और दिल्ली के निकट होने तथा राजस्थान, मालवा और गुजरात के मार्ग मे स्थित होने के कारण प्रत्येक सुल्तान इसे अपने अधिकार मे रखना चाहता था। बयाना के किले पर अधिकार किए बगैर राजस्थान मे प्रवेश करना कठिन था। स्वाभाविक रूप से मुसलमानी शासन काल मे इस किले का महत्व बढ़ गया था। साथ ही बयाना मुसलमानो का केन्द्र भी बन गया था। इस प्रकार यह हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के समन्वय का केन्द्र-स्थल भी बन गया।

1 For details See De Laet's Description of Bayana

रणथम्भौर का दुर्ग
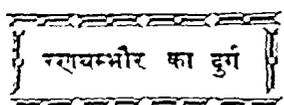
पश्चिम रेलवे की बडी लाइन पर बयाना से 141 किलोमीटर के फासले पर सवाई माधोपुर रेलवे स्टेशन आता है। सवाई माधोपुर से 8 मील दक्षिण पूर्व में रणथम्भौर[1] का सुप्रसिद्ध दुर्ग स्थित है। 944 ई० के लगभग सपालदक्ष के चौहानो ने इस किले का निर्माण करवाया था। पृथ्वीराज चौहान की तराइन के युद्ध में पराजय के पश्चात जब अजमेर और दिल्ली का स्वतन्त्र राज्य नष्ट हो गया तब नवस्थापित मुस्लिम राज्य के सस्थापको ने रणथम्भौर को अधिकार मे करने का प्रयत्न किया था।

पथरीले पठार पर समुद्र की सतह से 1578 फुट की ऊचाई पर स्थित रणथम्भौर का दुर्ग 6 मील की परिधि मे एक ठोस दीवार से घिरा हुआ है।

स्पष्ट है कि मनसार के अनुसार रणथम्भौर का दुर्ग भी गिरी दुर्ग है। यह एक ऊची पहाडी पर बना हुआ है जिसके चारो ओर घाटिया हैं। पहाडी के ऊचे भाग एक सुदृढ प्राचीर का कार्य करते हैं। इसी प्राकृतिक प्राचीर के भीतर एक परकोटा बना हुआ है। यह परकोटा सुदृढ होने के साथ-साथ काफी चौडा भी है और दोहरी दीवार का बना हुआ है। इसी परकोटे मे यत्र-तत्र-सर्वत्र बुर्ज बने हुए हैं। इन्ही बुर्जो मे से बडे बडे पत्थर आक्रमणकारी सेना पर गिराए जाते थे। वैसे इस किले पर चढने के लिए 84 पहाडी रास्ते हैं। लेकिन अपरिचित लोगो के लिए केवल एक ही रास्ता है औरे इस मार्ग को विभिन्न बुर्जों तथा लडाई के मोर्चों ने इस प्रकार सुरक्षित बनाया हुआ है कि किसी भी शत्रु का द्वार तक पहुचना कठिन था। किला स्वावलम्बी है, समतल पठार पर निवास स्थानो के अतिरिक्त पीने के पानी तथा सिचाई के लिए जगह २ तालाब, झरने और बावडी बने हुए हैं। इस प्रकार रणथम्भौर के दुर्ग को केवल रसदाभाव मे शत्रु के सम्मुख आत्मसमर्पण करना कठिन था।

1226 ई० तक दिल्ली के सुल्तान इसे अपने अधिकार मे करने मे असफल रहे थे। इल्तुतमिश ने इसे अल्प समय के लिए अपने अधिकार मे किया था। लेकिन इल्तुतमिश के निर्बल उत्तराधिकारियो के शासनकाल मे रणथम्भौर पुन स्वतन्त्र हो गया। सन 1255 मे बलबन ने इस पर आक्रमण किया था। 1291 मे सुल्तान जलालउद्दीन खिलजी की सेनायें रणथम्भौर के निकट झैन मे पडी रही। लेकिन इस अजेय दुर्ग पर खिलजी सुल्तान अपना अधिकार नही कर सका था। इस प्रकार 1300 ई० मे जब तक जलालउद्दीन के उत्तराधिकारी अलाउद्दीन खिलजी की सेनाओ ने रणथम्भौर पर आक्रमण किया उस वक्त तक वहा के चौहान राजा स्वतन्त्र थे। 1300 ई० में रणथम्भौर पर हम्मीर शासन कर रहा था।

---

1 1288 A D के एक शिलालेख मे इस किले का नाम रणस्तम्भपुर लिखा हुआ मिलता है।

इसी वीर हम्मीर के साथ रणथम्भौर का नाम भारतीय इतिहास मे जुडा हुआ है। हम्मीर पर आक्रमण करने के लिए अलाउद्दीन ने 1300 ई० मे दो सेनायें बयाना के प्रान्तपति उलुगखाँ और कडा के प्रान्तपति नुसरतखाँ के नेतृत्व मे भेजी। अलाई सेनाओ का झैन पर तो सुगमता से अधिकार हो गया। लेकिन रणथम्भौर का घेरा डालने के पश्चात जब किसी प्रकार की सफलता नही मिली तो पाश्या और गरगच[1] निर्मित किये गये। इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी लिखता है कि राजपूत किले के भीतर से निरन्तर प्रक्षेपास्त्र[2] फेंक रहे थे। नुसरतखाँ किसी एक प्रक्षेपास्त्र से घायल होकर धराशायी हो गया। उलुगखाँ को भी झैन तक पीछे हटना पडा। अत सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी को स्वय ही रणथम्भौर तक आना पडा। रणथम्भौर पहुचने पर एक ओर तो अलाउद्दीन ने सर्जनशाह नामक हम्मीर के अशुभ चिन्तक को अपनी ओर मिला लिया और दूसरी ओर उसने पाश्या खुदवाकर घेरे को दृढ किया। दो तीन हफ्ते तक तो अलाउद्दीन के सैनिक किले की दीवारो तक नही पहुच सके। लेकिन अन्त मे जब सर्जनशाह के किसी साथी ने खाद्य भण्डारो मे हड्डिया डालकर खाद्यान्नो को अपवित्र कर दिया और चावल का एक दाना भी सोने के दो दानो के बदले मे बिकने लगा तो हम्मीर को आत्म-समर्पण के लिए तैयार होना पडा। इस प्रकार 11 जुलाई 1301 को किले अलाउद्दीन का रणथम्भौर के दुर्ग पर अधिकार हुआ। इस समय नगर के प्राय मन्दिर और भवन नष्ट कर दिए गए और कुफ्र का गढ इस्लाम का घर हो गया।[3] रणथम्भौर का प्रबन्ध बयाना के प्रान्तपति उलुगखाँ को सौंपकर अलाउद्दीन तो अपनी राजधानी लौट गया। हम्मीर के पतन के साथ ही सपादलक्ष के चौहानो की इस शाखा का भी अन्त हो गया जो पृथ्वीराज की पराजय के पश्चात् सपादलक्ष से रणथम्भौर आकर बस गए थे।

मेवाड के राणा कुम्भा (1433-1468) ने रणथम्भौर पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। कदाचित उस समय यह किला दिल्ली के सुल्तान अथवा उसके द्वारा नियुक्त किलेदार के हाथ मे था। 1454 ई० मे [illegible]

राजस्थान के दुर्गों मे रणथम्भौर का किला अपनी अभेद्यता के लिए चित्तौड के बाद नम्बर दो का किला माना जाता है। चू कि यह किला बयाना के किले के समान मध्यकालीन शाही मार्ग पर नही पडता था, अत इस किले को अधिकार मे करने के लिए दिल्ली के मुसलमान शासको को अधिक खून खराबी नही करनी पडी। लेकिन हाडावती के चौहान राज्य का यह प्रवेश द्वार था। इसलिए बूदी के हाडा चौहान इस किले की सुरक्षा मे सोलहवी शताब्दी के मध्य भाग तक सक्रिय रूप से रुचि रखते रहे।

वर्तमान समय मे इस किले मे गणेश चतुर्थी के दिन एक मेला लगता है।

चित्तौड का किला

मेवाड की भूतपूर्व राजधानी चित्तौड अपने सुदृढ दुर्ग[1] के लिए भारत मे प्रसिद्ध है। ऐसा कहा जाता है कि मौर्यवंश के राजा चित्रागद ने इस किले को बनवाया था। आठवी शताब्दी के पश्चात् मेवाड के गुहिलवशी राजाओ ने इसे अपने अधिकार मे कर लिया। कुछ समय के लिए चित्तौड पर मालवा के परमार शासको का अधिकार हो गया था अन्यथा यह किला अलाउद्दीन खिलजी की मेवाड विजय तक (1303) निरतर रूप से गुहिलवशी राजपूतो के अधिकार मे रहा था।

अजमेर से रतलाम, इन्दौर होती हुई खन्डवा जाने वाली पश्चिम रेलवे की छोटी लाइन पर स्थित चित्तौडगढ रेलवे स्टेशन के निकट[2] एक पहाडी पर, आस-पास के प्रदेश से 500 फुट की ऊचाई पर, यह किला स्थित है। पहाडी की धरातल पर परिधि आठ मील से अधिक है जब कि शिखर पर यह पहाडी साढे तीन मील लम्बी और बीच मे बारह सौ गज के लगभग चौडी है। गोली चलाने के लिए बने छिद्रो वाली सुदृढ सुरक्षा दीवार इसका परकोटा बनाती है। दीवार की ऊचाई चार सौ से पाच सौ फुट तक है। किले तक पहुचने के लिए एक मील की चढाई तय करनी पडती है। महाराणा कुम्भा ने ऊबड-खाबड मार्ग को साफ करवाकर किले तक पहुचने का रास्ता व वर्तमान सात दरवाजो[3] मे से चार दरवाजे बनवाए थे।

राजस्थान के इस प्रमुख और अभेद्य दुर्ग पर सब प्रथम 631 A D मे सिंध के सुल्तान चाच ने आक्रमण किया था। तत्पश्चात् इल्तुतमिश ने इस किले पर आक्रमण किया। फारसी तवारीखो मे इल्तुतमिश के इस आक्रमण का वर्णन नही है, लेकिन राजस्थानी ग्रथो मे इस अभियान का विस्तार वर्णन है। अलाउद्दीन

---

1 गढ तो चित्तौडगढ और सब गढैया है।

2 चित्तौडगढ रेलवे स्टेशन से किले का दरवाजा 2 मील के फासले पर है।

3 पाडनपोल, भैरवपोल, हनुमानपोल, गणेशपोल, जोडनपोल, लक्ष्मणपोल, और रामपोल—यह सात दरवाजे है।

पन्नाधाय का निवास स्थान भी है। यह भवन अब प्राय खंडित हो चुके हैं लेकिन मीराबाई व कालकामाई के मन्दिर प्रसिद्ध हैं। पद्मिनी का महल तथा वह स्थान जहा दो बार जौहर हुए थे इस किले के ऐतिहासिक महत्व को बताते हैं।

यह एक ऐसा गिरी-दुर्ग है जो पूर्णरूपेण वर्षों तक आत्मनिर्भर रह सकता था। दुर्ग का निर्माण करते समय इस प्रकार की आयोजना की गई थी कि जल का अभाव महसूस नही हो। 1303 से पहले आधुनिक चित्तौड का कस्बा नही था जो किले की तलहटी मे बसा हुआ है। सब लोग किले के भीतर ही रहते थे। लेकिन अकबर का इस किले पर अधिकार हो जाने के बाद किले की तलहटी मे लोगों ने बसना शुरू कर दिया था। किले के नीचे तलहटी मे जो लम्बा चौडा भूभाग है उसने कई तमाशे देखे हैं।

कुम्भलगढ़ का किला

मेवाड की आधुनिक राजधानी उदयपुर से लगभग 60 मील दक्षिण मे कुम्भलगढ का दुर्ग स्थित है। मानचित्र में यह 25°9′ उ० और 73°35′ पू० रेखाओं के बीच स्थित है। अरावली पर्वत की ऊची चोटी पर समुद्र की सतह से 3568 फीट की ऊचाई पर यह किला मेवाड के राणा कुम्भा के द्वारा 15 वर्षो मे बनवा कर तैयार करवाया गया था। पहाडो के ढाल पर परकोटा बना हुआ है। परकोटा इतना चौडा है कि कम से कम 4 व्यक्ति उस पर एक साथ चल सकते हैं। परकोटे मे बुर्ज और मोर्चे बने हुए है। चित्तौड के किले के समान कुम्भलगढ के किले मे भी सात दर्वाजे है। मुख्य द्वार हनुमानपोल कहलाता है। [illegible] और हनुमान पोल के बीच दो दर्वाजे हैं—आटनपोल और हल्ला पोल। इन तीन दर्वाजो के अतिरिक्त फतहपोल, रामपोल और चोगानपोल हैं।

हनुमान पोल से घुसते ही वेदी का स्थान आता है जहा महाराणा कुम्भा ने यज्ञ किया था। वेदी के अलावा तारा बुर्ज, बादल छत्री, [illegible], [illegible], [illegible] महल भी ऐतिहासिक स्थान हैं। लेकिन भवन निर्माण कला के [illegible] से कटारगढ का किला कम महत्व नही रखता। मामादेव का मंदिर [illegible] स्वामी का मन्दिर, नीलकण्ठ व कुबेर के मन्दिर तथा कुण्ड भी [illegible] नहीं रखते। इसी कुण्ड के किनारे कुम्भा की उसके पुत्र [illegible] ने हत्या की थी।

कुम्भलगढ का किला बनवाने मे इसके [illegible] की दृष्टि से [illegible] सुरक्षा का प्रश्न [illegible] था। पहाडो के [illegible] भाग मे [illegible] आवश्यक था जहा होकर गुजरात और मारवाड की सेनाएं [illegible] लेकिन कालान्तर मे यह किला [illegible] रहा। दुर्गम पहाडो और जंगलो से घिरा होने के कारण [illegible]

प्रताप, धर्मसिंह ने इसी किले मे रह कर मुगलो से अपनी रक्षा की थी। आत्म-निर्भर होने के कारण, जिसमे पानी की समुचित व्यवस्था तथा रसद जुटा कर रखने की भी पर्याप्त व्यवस्था थी,[1] यह किला आसानी से विजय नहीं किया जा सकता था। किले की दीवारे इस प्रकार बनाई गई थी कि उन पर laddels की मदद से चढ़ा नहीं जा सकता है। बुर्ज ऐसे मोर्चे पर बने हुए है कि आक्रमणकारी सेना पर गैरिसन ऊपर से पत्थर और गर्म पानी व तेल आसानी से फेंक सकते थे।

स्पष्ट है कि भूतपूर्व मेवाड राज्य मे चित्तौड के बाद कुम्भलगड का किला भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। दुर्गम स्थान मे सुदृढ बना हुआ यह दुर्ग मेवाड का सामरिक प्रहरी था जो करीब दस नालो (tunnels) की रक्षा करता था, इसके घेरे मे कम से कम 10 पहाडिया आ जाती थी। अतएव इस किले का Strategic महत्त्व कम नहीं था।

जालोर का किला
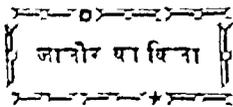
जोधपुर शहर से लगभग 75 मील दक्षिण मे 25° 21′ उ० तथा 72°37′ पू० अक्षाश और देशांतर रेखाओ के बीच जालोर[2] स्थित है। इस स्थान पर सोनगिरि नामक पहाडी की चोटी पर लगभग 1000 फुट की ऊचाई पर दुर्ग बना हुआ है। ऐसा माना जाता है कि इस दुर्ग को पहली शताब्दी मे परमार राजपूत ने बनवाया था जिनका जालोर पर बारहवी शताब्दी के अन्त तक राज्य रहा था। यह दुर्ग लगभग 800 गज लम्बाई मे तथा 400 गज की चौडाई मे स्थित है। पूर्ण रूप से पत्थर का बना हुआ यह किला केवल एक तरफ से ही खुला हुआ है जहां से ही किले तक पहुचा जा सकता है। किले तक पहुचने के लिए तीन मील लम्बा steep and slippeny Roadway बना हुआ है। तीन परकोटो के द्वारा यह किला घिरा होने के कारण अजेय बन गया है। किले मे जितनी भी इमारते बनी हुई है वे सब धरती को ऊचा करके बनाई गई हैं। अधिकाश इमारतो पर लाल गुम्बज बने हुए हैं।

बारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण मे नाडोल के चौहानो के एक वशज कीर्तिपाल ने जालोर मे अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। ताजुल मग्रासिर को पढने से जाहिर होता है कि 1210 ई० मे सुल्तान इल्तुतमिश ने इस किले पर अधिकार किया था, लेकिन किला शीघ्र ही वहा के शासक उदयशाह को लौटा दिया गया। इल्तुतमिश के इस अभियान के लगभग 100 वर्ष बाद अलाउद्दीन खिलजी ने जालोर पर आक्रमण किया था। उस समय जालोर का शासक कान्हडदे था। अलाउद्दीन का जालोर पर अधिकार हो गया। अपनी विजय की स्मृति मे उसने किले के भीतर एक मस्जिद का निर्माण करवाया था जो अब तोपखाना के नाम से प्रसिद्ध है। खिलजी सल्तनत के पतन के पश्चात् जालोर पर बिहारी पठानो का अधिकार हो गया था। 1540 मे मारवाड के शासक राव मालदेव ने इस किले को पहली बार अपने अधिकार मे लिया था। मुगल सम्राट् अकबर ने इस पर अधिकार कर लिया था। तत्पश्चात् यह किला 1682 तक मुगलो के अधिकार मे रहा। 1682 के बाद लगभग सात वर्ष तक यह किला पालनपुर राज्य के सस्थापक के हाथो मे बतौर जागीर के रहा। लेकिन इस विजय करने के राठौडों के निरन्तर प्रयत्नो से भयभीत होकर उसने इसे खाली कर दिया, लेकिन मुगल सम्राट् औरगजेब की मृत्यु के पश्चात् महाराजा अजीतसिंह ने इस पर अपना अधिकार कर लिया और तब से लेकर भूतपूर्व जोधपुर राज्य के विलीनीकरण तक यह किला मारवाड के राठौड राजाओ के अधिकार मे रहा।

जालोर के किले मे केवल कतिपय ऐतिहासिक इमारतें ही नहीं हैं अपितु यह दुर्ग अकबर के शासन काल मे जस्ते की खान के लिए भी प्रसिद्ध था। यहा के ऊट, ऊटो की गद्दिया तथा धातु के बने हुए खूबसूरत बर्तन तो आजकल भी प्रसिद्ध है। स्पष्ट है कि जालोर का किला मध्य काल मे राजस्थान का एक प्रमुख दुर्ग माना जाता था।

सिवाना का किला

जोधपुर नगर से लगभग 60 मील दक्षिण पश्चिम मे सिवाना का दुर्ग स्थित है। मानचित्र मे सिवाना 25°35′ उ० व 72°26′ पू० रेखाओ के मध्य स्थित है। यहां लगभग 1000 फुट ऊची पहाडी पर एक दुर्ग स्थित है जो समुद्र की सतह से लगभग 3100 फुट ऊचा है। यह राजस्थान का एक प्राचीन दुर्ग है जो गुजरात और मरुभूमि के बीच मे है और जिसका वर्णन Ptolemy ने Noana के नाम से किया है। स्पष्ट है कि राजस्थान और गुजरात सीमाओ पर यह किला स्थित था। मध्यकाल के मुसलमान इतिहासकारो ने भी इस दुर्ग की अभेद्यता का वर्णन किया है। अलाउद्दीन खिलजी का दरबारी इतिहासकार अमीर खुसरो लिखता है कि यह किला इतनी अधिक ऊचाई पर स्थित है कि पक्षी भी नहीं पहुँच सकते है।

इस किले तक पहुँचने के लिये पाच मील का Circuitous rout पार करना पड़ता है।

सन 1308 मे जब सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने इस दुर्ग पर आक्रमण किया था उस वक्त यहा का शासक सीतलदेव परमार था। अलाउद्दीन ने किले को तीन दिशाओ (पश्चिम, उत्तर तथा पूर्व) से घेर लिया था। मजनीको से अनवरत भारी पत्थर फेंके गए लेकिन कोई सफलता नही मिली। पश्चिम की दिशा से मलिक नासरउद्दीन गुर्ग ने किले की दीवार पर जो निरन्तर रूप से प्रहार किए थे उससे कतिपय स्थलो पर दीवार टूट गई। पार्श्व निर्मित किए गए और हाथियो की सहायता से आक्रमणकारी ऊंची चोटी तक पहुँचने मे सफल हुए। मुसलमानो के बढ़ते हुए कदमो को रोकने के लिए राजपूतो ने बुर्जियो से पत्थर और आग फेंकना बदस्तूर जारी रखा। लेकिन जब शाही सेना की एक टुकडी किले की बुर्ज नापने मे सफल हो गई तो सीतलदेव ने जालोर से भागने का असफल प्रयत्न किया लेकिन वह मारा गया। तब कही जाकर अलाउद्दीन का सिवाना पर अधिकार हो सका। यहाँ का शासन कमालउद्दीन गुर्ग को सौंपकर अलाउद्दीन अपनी राजधानी लौट गया।

अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् मारवाड के राठोड राजाओ ने इस किले पर अधिकार कर लिया। मारवाड मे इस किले का अधिक महत्व था क्योकि एक तो यह किला दुर्गम पहाडो और जङ्गलो के मध्य स्थित था और दूसरे इस किले पास [illegible] दुर्गादास का किला स्थित था जो अपनी सुदृढता के कारण सिवाना के दुर्ग की प्रहरी के समान रक्षा करता था। अत सकट काल मे मारवाड के राजा सिवाना के किले मे जाकर उसी प्रकार निवास किया करते थे जिस प्रकार मेवाड के महाराणा कुम्भलगढ के किले मे रहा करते थे। शेरशाह के द्वारा पराजित किए जाने पर राव मालदेव ने तथा बाद मे उसके पुत्र और उत्तराधिकारी राव चन्द्रसेन ने सिवाना के किले मे जाकर शरण ली थी। अत मुगल सम्राट अकबर के लिए इस दुर्ग को विजय करना आवश्यक था। इस किले की Strategic importance भी कम नही थी। अत अकबर महान् के शासन-काल मे इस किले को विजय करने के लिए बार-बार सेनाएं भेजी गई। अन्त मे शाही पीर बक्शी शाहबाज खां के नेतृत्व मे जो सेना भेजी गई वह किले को फतह करने मे कामयाबी हासिल कर सकी। जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात मुगल सम्राट् औरङ्गजेब ने जब जोधपुर को खालसा कर दिया तब सिवाना पर भी मुगलो का अधिकार हो गया। [illegible] ने बमुश्किल तमाम इस दुर्ग को पुन अपने अधिकार मे लिया था। तब से लेकर भूतपूर्व जोधपुर राज्य के [illegible] तक यह किला मारवाड के राठोड राजाओ के [illegible]।
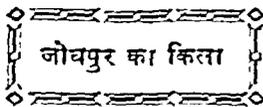
जोधपुर का किला

मारवाड में जोधपुर राठोडो की तीसरी राजधानी थी। मेड से मडोर और मडोर से जोधपुर यहा के शासक राव जोधा के समय मे आए थे। राव जोधा ने एक (Isolated) पृथक पहाडी पर, जो धरातल से लगभग 400 फुट ऊची है, जोधपुर के सुप्रसिद्ध दुर्ग का शनिवार 12 मई 1459 के दिन निर्माण आरम्भ करवाया था। इस किले का पुराना परकोटा, जिसमे चार द्वार थे, राव जोधा के द्वारा ही बनवाया गया लेकिन मौजूद परकोटा अठारवी शताब्दी मे महाराजा मानसिंह के द्वारा बनवाया गया था। इसकी परिधि 24,600 फीट है। परकोटे की दीवारें 3 फुट से लेकर 9 फुट तक चौडी और 15 फीट से लेकर 30 फीट तक ऊची है। परकोटे के 6 द्वार है जिन्हे जालोरी गेट, मेडता गेट, नागौरी दर्वाजा, सिवाना गेट, सोजती गेट और चादपोल गेट कहकर पुकारा जाता है। परकोट मे स्थान-स्थानपर बुर्ज और मोर्चे बने हुए है जहा रखी हुई तोपें आज भी हमे जोधपुर के प्राचीन वैभव की याद दिलाती है। सब गेट मुदृढ दर्वाजो से सुरक्षित है। दर्वाजो पर भी नुकीली मजबूत कीलें लगी हुई है ताकि शत्रु इन दर्वाजो को हाथियो की सहायता से तोड नही सके। नागोरी दर्वाजे के बाहर तोप के गोलो से खंडित प्राचीर अब भी मौजूद है जो 1806 के अमीरखा पिंडारी के आक्रमण की याद दिलाती है।

मेडता का किला

मानचित्र मे मेडता 26°39′ उत्तर व 44°2′पूर्व की रेखाश्रो के बीच स्थित है। भागन मे जयपुर-फुलेरा होती हुई पश्चिम रेलवे की छोटी लाईन जोधपुर बाडमेर तक जाती है इस पर फुलेरा और जोधपुर के बीच मे मेडता रोड जकशन भाग है। स्टेशन से ६ मील दक्षिण-पूर्व मे मेडता शहर और मेडता का किला है। राव जोधा के चतुर्थ पुत्र दूदा ने 1788 ई० के लगभग मेडता शहर की स्थापना की थी। उसी वक्त एक किला भी बनवाया गया था जिसका परकोटा 1540 ई० मे मारवाड के शासक राव मालदेव ने बनवाया। मालदेव ने इस किले का नाम मालकोट रखा था।

इस दुर्ग पर अधिकार रहा। पृथ्वीराज की पराजय के पश्चात् यहा के हिन्दुओं ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया और वे लोग क्यामखानी मुसलमान कहलाए। इन क्याम-खानियों ने नागौर में एक स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य स्थापित कर लिया। मडोवर के राव चूडा ने इस किले को अपने अधिकार मे कर लिया था, तत्पश्चात् यह मेवाड के राणा कुम्भा के अधिकार मे रहा। लेकिन 1416 मे यह किला पुन मुसलमानो के अधिकार मे चला गया था। नागौर का मुस्लिम सूबेदार शम्सखा दिनदानी [illegible] सुल्तान [illegible] का आधिपत्य मानता था। कुछ समय तक इस [illegible] और [illegible] पर गुजरात के सुल्तानो का भी अधिकार रहा था। राव माल्देव ने इसे पुन अपने अधिकार में कर लिया था। लेकिन यह किला शीघ्र ही मुगल सम्राट् अकबर के हाथ मे चला गया। अकबर ने पहले तो यह किला बीकानेर के रायसिह को दिया और फिर 1583 मे मोटा राजा उदयसिह को मारवाड राज्य के टीका के [illegible] दिया। शाहजहा ने मारवाड के शासक गजसिह की मृत्यु के पश्चात् उसके ज्येष्ठ पुत्र अमरसिह को स्वतन्त्र रूप मे नागौर प्रदान कर दिया था। औरगजेब की मृत्यु के पश्चात भी नागौर पर अमरसिह के वशज राज्य करते रहे। अजीतसिह की मृत्यु के पश्चात नागौर उसे कनिष्ठ पुत्र बख्तसिह को दिया गया था। तत्पश्चात् नागौर [illegible] रूप मे भूतपूर्व जोधपुर राज्य का एक महत्वपूर्ण किला रहा।

[illegible] नागौर का दुर्ग बीकानेर, आमेर व मेडता के स्वतन्त्र राज्यो से मार-वाड को [illegible] करता था, अत इसकी Stratigic importance को समझ कर मुगल [illegible] अकबर ने इसे सरकार का हेड क्वार्टर बना दिया था जिसमे 30 परगने

और लोहे के बर्त्तन, ताले, हाथीदांत के खिलौने, ऊंट की काठी तथा रंगीन कपड़े भारत भर में प्रसिद्ध हैं।

मारवाड़ को उनके नौ सुदृढ़ दुर्गों की वजह से मध्यकाल में प्रसिद्धि रही थी। नागौर की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि यह बहुत कुछ अंशों में मारवाड़ के नौ द्वारों में से एक द्वार था।
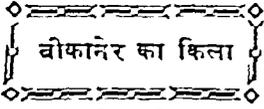
बीकानेर का किला

राव जोधा के पुत्र बीका ने 1465 में जोधपुर से जांगल देश की ओर प्रस्थान किया था। इस प्रदेश को विजय कर लेने के पश्चात् अपनी भाटी राजपूतों की रक्षा करने के लिए बीका ने 12 अप्रेल 1488 के दिन बीकानेर के किले की स्थापना की। तीन वर्ष पश्चात इसी किले के इर्द-गिर्द आधुनिक बीकानेर शहर बसाया। यह किला ऊंची चट्टान पर स्थित है। महाराजा रायसिंह (1574-1612 A D) के शासन काल में बीकानेर शहर का परकोटा बनवाया गया था जिसकी परिधि 1078 गज है। स्थान-स्थान पर बुर्ज बने हुए हैं जिनकी संख्या 80 है। किले के चारों ओर एक तीस फुट चौड़ी व बीस से पचास फुट गहरी पानी की खाई है। किले में प्रवेश करने के लिए दो प्रधान दरवाजे हैं। कर्णपोल दरवाजे से घुसने के पश्चात मरदाने और जनाने महल आते हैं। इन महलों के भीतर कई जगह कांच की पच्चीकारी और सुनहरी कलम का बहुत सुन्दर काम किया हुआ है। इन महलों की दीवार का जिस रूप में रंगीन पलास्तर किया हुआ है उससे महलों का सौंदर्य बढ़ गया है। यहीं पर आगे चलकर महाराजा रायसिंह का चौबारा है। इस किले में पीतल की कई मूर्तियां हैं जिन्हें महाराजा अनूपसिंह दक्षिण से अपने साथ लाये थे और जो तैंतीस करोड़ देवताओं के नाम से पूजी जाती है।

बीकानेर के किले के लिए यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि इसे कोई शत्रु विजय नहीं कर सका। लेकिन यह किंवदन्ती ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य प्रतीत नहीं होती क्योंकि मुगल सम्राट हुमायूं के भाई कामरान ने बीकानेर पर चढ़ाई की थी और मारवाड़ के राव मालदेव ने बीकानेर के शासक जैतसी को मारकर इसे अपने अधिकार में कर लिया था।

के कछवाहा शासकों के अधिकार मे बना रहा। इस किले की ऐसी स्थिति है कि जब कभी आमेर नगर पर शत्रुओं का आक्रमण हुआ तो उस वक्त वहा के निवासी इस किले में शरण प्राप्त करते थे। इस किले के नीचे एक कृत्रिम झील है जो किले की रक्षा करने के साथ-साथ इसकी सुन्दरता को भी बढ़ाती है। झील के बिल्कुल ऊपर महल बने हुए हैं। इन महलो मे झरोखे और बरामदे बने हुए हैं और इनका Architecture हिन्दू और मुस्लिम शैलियों का सम्मिश्रण है। किले के महल राजा मानसिंह के द्वारा बनवाए गए थे। इस किले के दीवानेआम और दीवाने खास का निर्माण मिर्जा राजा जयसिंह के द्वारा करवाया गया था। किले के भीतर काली का मन्दिर, जय मन्दिर और सुहाग मन्दिर है। 'सुख निवास' और जनाने महल दोनो का निर्माण भी हिन्दू और मुस्लिम शैलियों के अनुसार करवाया गया था।

और महराब बनाने पड़ते थे। जितने भी किले ऊंचाई पर स्थित हैं, उन सभी पर पहुँचने के लिए Zig-Zak मार्ग बना हुआ है जो Circutous Stippery तथा ऊंचाई पर बना हुआ है। कतिपय किलों के दरवाजों तक पहुँचने के लिए सात गेट पार करने पड़ते हैं। इस Architecture को Spinnel Architecture कहकर पुकारा जा सकता है। स्थापत्य की यह शैली स्वदेशी है क्योंकि सभी किले मुसलमानों के भारत में प्रवेश करने से पूर्व बन चुके थे। इस शैली को किसी भी रूप में विदेशी कहना युक्तिसंगत नहीं है। मैंने अपनी अप्रकाशित पुस्तक Forts of Rajasthan में इन दुर्गों के अलावा अन्य दस और महत्वपूर्ण दुर्गों का वर्णन मुख्य रूप से तीन दृष्टिकोण से किया है —

1 किलों का राजनैतिक इतिहास,

2 Fort architecture,

3 किलों ने राजस्थान के राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहास को कहां तक प्रभावित किया है।

यह पुस्तक U G C योजना के अन्तर्गत लिखी गई है। मैं उम्मीद करता हूं कि जब यह प्रकाशित हो जायेगी तो दुर्गों का शोधात्मक अध्याय सामान्य जनता व इतिहास के विद्यार्थियों के लिए अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकेगा।

प्रत्येक किला रसद की कमी के कारण शत्रुओं के द्वारा जीता गया। किले बन्द गैरिसन का धरातल की जनता से सम्पर्क टूट जाता था। धरातल पर रहने वाले जो लोग किले के बारे में जानकारी रखते थे उनको बन्दी कर शत्रु किले के कमजोर स्थलों का पता लगा लेता था कि वहां से आक्रमण करने पर किला विजय किया जा सकता था अन्यथा इन अजेय दुर्गों को विजय करना मध्यकाल में सुगम कार्य नहीं था।

16

मुसलमानों का राजस्थान की सभ्यता और संस्कृति पर प्रभाव

(Impact of Islam on Rajasthan's Society and Culture)

इब्राहीम ने जब राजस्थान की ओर कदम बढ़ाने की कोशिश की तो उसे मेवाड़ के राणा सांगा ने पराजित करके सिद्ध कर दिया कि 16वीं शताब्दी में भी राजपूतों की वीरता और साहस किसी रूप में कम नहीं हुआ था। 1544 में शेरशाह सूर के दांत इतने अधिक खट्टे हो गए थे कि उसने राव मालदेव पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद भी हर्ष व विषाद के मिश्रित स्वर में केवल इतना कहा था कि "एक मुट्ठी बाजरे के लिए मैंने हिन्दुस्तान की बादशाहत खो दी होती।" शेरशाह सूर का राजस्थान पर केवल 524 दिन तक अधिकार रहा। उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 1562 से पहले दिल्ली का कोई भी सुल्तान राजस्थान को अपने अधिकार में करने में सफल नहीं हुआ था। लेकिन इल्तुतमिश, बलबन, जलालुद्दीन खिलजी, अलाउद्दीन, मुहम्मद तुगलक और सिकन्दर ने सैनिक अभियान भेजकर राजपूत राजाओं को अधीन करने के जो प्रयास किए उन प्रयासों का अप्रत्यक्ष रूप से राजस्थान पर प्रभाव अवश्य पड़ा। उदाहरण के लिए मुस्लिम आक्रमणकारियों के साथ राजस्थान में प्रवेश करने वाले सैकड़ों सैनिक यहीं बस गए। इन सैनिकों ने अजमेर, नागौर और उसके आसपास के इलाकों में अपनी बस्तियां बसा लीं। इसका परिणाम यह निकला कि राजस्थान में हिन्दुओं के साथ साथ मुसलमानों का फिरका भी पनपने लगा।

सुल्तानों की साम्राज्यवादी सेनाओ ने रणथम्भौर, चित्तौड, जालौर, सिवाना, इत्यादि दुर्गों के सम्मुख जो खून-खराबी की उसका मिला-जुला परिणाम यह निकला कि 1562 तक दिल्ली के सुल्तानो को अनवरत रूप से राजस्थान के राजपूत राजाओ का विरोध सहन करना पड़ा।

मुसलमानों की क्रूरताओ ने राजपूतो के रहन-सहन, आचार-विचार को प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया था। सर्वविदित है कि मुसलमानो की कामवासना से अपनी पुत्रियो के सतीत्व की रक्षा करने के प्रयास मे राजपूतो ने बाल विवाह, सती, और जौहर जैसी प्रथाए अंगीकार करली थी। उनकी नारियां असूर्यपश्या बन गई थी। मुसलमानो के भारत मे आने से पूर्व पर्दा-प्रथा भारतीय समाज मे नही थी। इसका प्रचलन राजपूत काल मे हुआ। लेकिन इनसे कही अधिक प्रभाव मुस्लिम आक्रमणो का राजस्थान की आर्थिक स्थिति पर पड़ा। कतिपय राजपूत राजा हरे-भरे खेतो को केवल इसलिए नष्ट कर देते थे कि जिससे शत्रु के हाथ म पड़ने पर वह उनके खिलाफ कार्य में आ सकते थे। मुसलमान लोग भी विजय के बाद लूटमार करना अपना कर्त्तव्य समझते थे जिसका परिणाम यह निकला कि राजस्थान की आर्थिक स्थिति दिन-प्रतिदिन शोचनीय होती गई। मन्दिरों मे अपनी कौम, सभ्यता और धर्म की रक्षा करने के उत्सुक हिन्दू उपदेशको ने धर्म के बन्धन कठोर कर दिए। लोगो में धार्मिक चेतना उत्पन्न करने के लिए धार्मिक मेलों का आयोजन किया जाना सल्तनत काल मे ही प्रारम्भ हुआ था। सल्तनत काल मे राजस्थान मे Hero worship प्रथा प्रारम्भ हुई। आज भी तेजाजी और रामदेवजी की जो पूजाए होती हैं वह इस Hero worship के जीते-जागते प्रमाण है।

1562 मे अकबर का राजस्थान के साथ सम्पर्क हुआ

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि लगभग 350 वर्षो के मुस्लिम शासन ने राजस्थान को अप्रत्यक्ष रूप इतना अधिक प्रभावित किया था कि जब 1562 मे मुगल सम्राट अकबर राजस्थान की ओर बढा तो थके-थकाए, आपस मे विभाजित राजपूत राजा पारस्परिक ईर्ष्या व द्वेष की अग्नि मे जलने के कारण शक्तिहीन हो चुके थे। पारस्परिक सगठनो के अभाव मे इन राजाओ ने एक-एक करके अकबर के सम्मुख मस्तक नवा दिया। अकबर की नीति अलाउद्दीन या शेरशाह की नीति से भिन्न थी। वह पूर्ण आधिपत्य स्वीकार कर लेने के बाद राज्य वापस लौटा देता था। आमेर, बीकानेर, जैसलमेर के राज्यो को उसने किसी भी रूप मे छेड़ा नही था। शायद वह मारवाड के राज्य को भी नही छेड़ता लेकिन वहां के तत्कालीन शासक राव चन्द्रसेन की विरोधी नीति ने उसे मारवाड को खालसा करने पर मजबूर कर दिया था। अकबर का मेवाड के अधिकाश भाग पर भी

अधिकार स्थापित हो गया था। हालांकि राणा प्रताप ने उनकी अधीनता जीवन-पर्यन्त स्वीकार नहीं की थी। तदुपरान्त अकबर ने समस्त राजस्थान को एक सूबे के रूप में संगठित किया। यहां के प्रदेश की व्यवस्था करने के लिए परगने व सरकारें कायम की गई। इन परगने व सरकारों में फारसी जानने वाले लोगों को नियुक्त किया गया। राजस्थान के केन्द्र-स्थल अजमेर में स्थित शेखसलीम चिश्ती की दरगाह की जियारत का मुस्तगीर अकबर जैसे-जैसे राजस्थान के सम्पर्क में आता गया वैसे-वैसे यहां की प्रशासनिक व्यवस्था मुगल व्यवस्था से प्रभावित होती गई। मारवाड़, आमेर तथा अन्य राज्यों के उदाहरणों से स्पष्ट है कि राजस्थान के राजाओं ने मुगल शासन व्यवस्था को दोषरहित आदेश व्यवस्था समझकर अपने-अपने राज्यों में लागू किया। मारवाड़ में भाटी गोविन्ददास ने मुगल प्रशासन के ढांचे पर राज्य के शासन को संगठित किया। आमेर में भी राजा मानसिंह के शासन काल में मुगल Pattern पर व्यवस्था की गई। मिर्जा राजा जयसिंह के शासन काल में आमेर में कारखाने स्थापित किए गए और मारवाड़ की तरह से यहां के कर्मचारियों का नामकरण भी मुगल कर्मचारियों के समान किया गया।

साथ प्रथम सम्पर्क हुआ तब से लगातार अंग्रेजों के प्रभुत्व स्थापित होने तक इस प्रदेश पर मुगलों का प्रभाव रहा। उनके राजनैतिक प्रभुत्व का प्रभाव राजस्थान के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन पर पड़ा। इस प्रभाव का परिणाम यह निकला कि बहुत शीघ्र हिन्दू और मुस्लिम सभ्यता एवं संस्कृति का समागम हो गया।

करना पड़ा । पहले उसने मेवाड़ के महाराणा को तसल्ली देने के खातिर फरमान भेजा । अजीतसिंह और सवाई मानसिंह के अपराधों को क्षमा करके उन्हें ससम्मान अपने दरबार में बुलवाया । बहादुरशाह की इस नीति ने राजपूत राजाओं को स्वार्थी बना दिया । जिन राजाओं के हृदय में मुगल सम्राट् के प्रति प्रेम व विश्वास औरंगजेब के शासन काल में समाप्त हो गया था वह राजपूत राजा बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात् मुगल साम्राज्य के विध्वंसक बन गये ।

बहादुरशाह के उत्तराधिकारी जहांदारशाह के पास राजपूत राजाओं को सन्तुष्ट करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं था । मुगल दरबार की बदली हुई राजनीति ने और सम्राट् की स्वयं विलासमय स्वभाव ने उन राजाओं को ऊंचे-ऊंचे मनसब तथा शाही सेना में बड़े-बड़े पद देने पर मजबूर किया । राजपूत राजाओं ने बहादुरशाह की इस नीति को सही अर्थों में मुगल साम्राज्य की कमजोरी समझा । जहांदारशाह के शासन-काल में वजीर जुल्फिकारखां के कहने पर जजिया की वसूली बंद की गई । जहांदारशाह ने बादशाह औरंगजेब की नीति का परित्याग करके राजस्थान के राजाओं की सद्भावना के आधार पर उनसे सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया ।

आगरा के निकट पड़ौस में किस प्रकार चूड़ामन जाट के नेतृत्व में विद्रोह हुए और उन विद्रोहों को दबाने मे मुगल सम्राट् किस प्रकार सफलता प्राप्त नहीं कर सके और जिसके परिणाम स्वरूप भरतपुर मे स्वतन्त्र जाट राज्य की स्थापना हुई इसका वर्णन 15 वें अध्याय के अंतिम पृष्ठों मे किया जा चुका है।

23 जून 1724 के दिन महाराजा अजीतसिंह को उनके द्वितीय पुत्र बख्तसिंह ने मार दिया। अजीतसिंह की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी अभयसिंह ने नागौर में एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित कया। नागौर राज्य के स्वामी बख्तसिंह ने बीकानेर के महाराज जोरावरसिंह के साथ मिलकर अपने जेष्ठ भ्राता अभयसिंह के विरुद्ध षडयन्त्र किए और इन षडयन्त्रो की वजह से पश्चिमी राजस्थान मे राजनैतिक अशांति उत्पन्न हुई। इस अशांति ने आमेर के महत्वाकांक्षी शासक सवाई जयसिंह को पश्चिमी राजस्थान मे हस्तक्षेप करने का अवसर दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि मुगल सम्राट फर्रुखसियर, उसके निर्बल उत्तराधिकारियो, रफी-उद्दर जात तथा रफीउद्दौला और मुहम्मदशाह प्रथम के शासन-काल मे सवाई जयसिंह का राजस्थान की राजनीति मे प्रथम स्थान था। सवाई जयसिंह अपनी मृत्यु तक (31 सितम्बर 1743 तक) राजस्थान की राजनीति को प्रभावित किए रहा।

सवाई जयसिंह

सवाई जयसिंह के सैय्यद भाइयो के साथ अच्छे सम्बन्ध नही थे इसलिए वह फर्रुखसियर का मित्र बना रहा। 17 फरवरी 1719 के दिन सैय्यद भाइयो ने फर्रुखसियर को गद्दी से उतारकर मौत के हवाले कर दिया था। फर्रुखसियर की मृत्यु का समाचार पाकर सवाई जयसिंह आमेर से रवाना हुआ। बादशाही प्रदेशो में लूटमार करके सवाई जयसिंह ने अपने राज्य का विस्तार बढा लिया। आमेर राज्य की सीमाएं बढते-बढते मुगल राजधानी आगरा से केवल 10 मील की दूरी पर रह गई थी कि सवाई जयसिंह स्वयं मथुरा पहुंच कर ठहर गया।

सैय्यद भाइयो की सहायता से राजगद्दी प्राप्त करने वाले सम्राट् मुहम्मद शाह के साथ मिलकर सवाई जयसिंह ने सैय्यद भाइयो के पतन मे सक्रिय रूप से योग दिया। मुहम्मदशाह ने उसे राजराजेश्वर व सरमदराजहाय की उपाधियो से विभूषित किया तथा सूबा आगरे का सूबेदार नियुक्त किया। आगरा का सूबेदार रहते हुए इसने भरतपुर राज्य के संस्थापक ठाकुर बदनसिंह को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया।

बूंदी के रावराजा बुद्धसिंह को अपने राज्य से निकालकर उसके स्थान पर करवड़ के स्वामी सवाईसिंह के पुत्र दलेलसिंह को बूंदी की गद्दी पर बिठाया।

सवाई जयसिंह के प्रयत्नो के कारण ही 1734 में मेवाड़, मारवाड़ और बीकानेर के शासक हुरडा मे एकत्रित हुए थे। इस स्थान पर सब राजाओं ने एक-

Appendix I

राजपूतो की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धान्तों का आलोचनात्मक विश्लेषण

'राजपूत' सस्कृत भाषा के 'राजपुत्र' का अपभ्र श है। आठवी शताब्दी से पहले यह किसी जाति विशेष के लिए प्रयोग मे नही लिया जाता था। अत भारत का इतिहास लिखने वाले स्वदेशी एव विदेशी विद्वानो ने राजपूत जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे भिन्न-भिन्न व्याख्या दी हैं।

राजपूतो का वैदिककालीन क्षत्रियो से सम्बन्ध स्थापित करने के उत्सुक चारण और भाटो का कहना है कि आठवी शताब्दी के लगभग वैदिककालीन क्षत्रियो का लोप हो गया। यह लोप परशुराम के द्वारा किया गया था। क्षत्रियो की राख मे से राजपूत उत्पन्न हुए। ब्राह्मण साहित्य मे इस प्रकार का वर्णन प्रसगवश मिलता है। लेकिन यह निश्चय करना मुश्किल है कि वैदिककालीन क्षत्रियो और राजपूतो मे कोई सम्बन्ध था या नही ?

राजपूतो की आबू के हवनकु ड मे उत्पत्ति बताते हुए पृथ्वीराज रासो का रचियता चन्द वरदाई लिखता है "जब विश्वामित्र, गौतम, अगस्त तथा अन्य ऋषि आबू पर्वत पर धार्मिक अनुष्ठान कर रहे थे—उस समय दैत्यो ने मास, खून, हड्डिया तथा पेशाब डालकर उनके यज्ञ को अपवित्र कर दिया। उस समय वशिष्ठ ने यज्ञ कु ड की रक्षार्थ उसी कु ड से तीन योद्धा उत्पन्न किए (प्रतिहार, चालुक्य और परमार), लेकिन जब यह तीनो रक्षा करने मे असमर्थ सिद्ध हुए तो चौथा योद्धा उत्पन्न किया जो हट्ठा-कट्ठा और हथियार हाथ मे लिए प्रकटा था। इसका नाम ऋषियो ने चौहान रखा। इस योद्धा ने आशापुरी को अपनी देवी मानकर दैत्यो को मार भगाया। परवर्ती चारण और भाटो ने क्षत्रियो की इस प्रकार उत्पत्ति को सत्य मानकर अपने ग्रथो मे कुछ अन्तर के साथ इसी कहानी को दोहरा दिया है। चू कि चन्द्र वरदाई ने तीन प्रमुख राजवशो (सूर्यवशी, चन्द्रवशी और यादववशी) का ही वर्णन किया है अत यह कहानी अवश्य ही परवर्ती है।

"रवि शशि यादव वश ककुत्स परमार चौहान चार"

"क्षत्रियो की अग्निकु ड मे उत्पत्ति का सिद्धान्त पन्द्रहवी शताब्दी से अधिक पुराना नही है और इसे जान-बूझकर पुरातन सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।" (डा० दशरथ शर्मा) यह कहानी इतनी अधिक बल पकड गई थी कि टाड ने राजस्थान का इतिहास लिखते समय इसे स्वीकार कर लिया। टॉड की पुस्तक की व्याख्या करते हुए विलियम क्रुक ने लिखा—"अग्नि कुण्ड से तात्पर्य अग्नि के द्वारा

मवाई जयसिंह के मर्वोत्कृष्ट स्मारक के रूप मे आमेर की तीसरी व नई राजधानी जयपुर नगर है। इसने जयपुर के अतिरिक्त मथुरा, वनारस, दिल्ली और उज्जैन मे जन्तर-मन्त्ररो का निर्माण करवाया जहा ज्योतिष के विद्वान सितारों की गतिविधियो का अध्ययन किया करते थे। सवाई जयसिंह ने राजपूत ममाज के दोषो को दूर करने का प्रयास भी किया था। इसके द्वारा वनवाए हुए कई कुए, बावडिया व धर्मशालाए आज तक सुरक्षित हैं। वह एक अच्छा शासन-प्रवन्धक भी था जिसका प्रमाण इसका न्याय के प्रति प्रेम है।

Appendix I

राजपूतो की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धान्तों का आलोचनात्मक विश्लेषण

'राजपूत' संस्कृत भाषा के 'राजपुत्र' का अपभ्र श है। आठवी शताब्दी से पहले यह किसी जाति विशेष के लिए प्रयोग मे नही लिया जाता था। अत भारत का इतिहास लिखने वाले स्वदेशी एव विदेशी विद्वानो ने राजपूत जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे भिन्न-भिन्न व्याख्या दी है।

राजपूतो का वैदिककालीन क्षत्रियो मे सम्बन्ध स्थापित करने के उत्सुक चारण और भाटो का कहना है कि आठवी शताब्दी के लगभग वैदिककालीन क्षत्रियो का लोप हो गया। यह लोप परशुराम के द्वारा किया गया था। क्षत्रियो की राख मे से राजपूत उत्पन्न हुए। ब्राह्मण साहित्य मे इस प्रकार का वर्णन प्रसगवश मिलता है। लेकिन यह निश्चय करना मुश्किल है कि वैदिककालीन क्षत्रियो और राजपूतों मे कोई सम्बन्ध था या नही ?

राजपूतो की आबू के हवनकु ड मे उत्पत्ति बताते हुए पृथ्वीराज रासो का रचियता चन्द वरदाई लिखता है "जब विश्वामित्र, गौतम, अगस्त्य तथा अन्य ऋषि आबू पर्वत पर धार्मिक अनुष्ठान कर रहे थे—उस समय दैत्यो ने मांस, खून, हड्डिया तथा पेशाब डालकर उनके यज्ञ को अपवित्र कर दिया। उस समय वशिष्ठ ने यज्ञ कु ड की रक्षार्थ उसी कु ड मे तीन योद्धा उत्पन्न किए (प्रतिहार, चालुक्य और परमार), लेकिन जब यह तीनो रक्षा करने मे असमर्थ सिद्ध हुए तो चौथा योद्धा उत्पन्न किया जो हट्ठा-कट्ठा और हथियार हाथ मे लिए प्रकटा था। इसका नाम ऋषियो ने चौहान रखा। इस योद्धा ने आशापुरी को अपनी देवी मानकर दैत्यो को मार भगाया। परवर्ती चारण और भाटो ने क्षत्रियो की इस प्रकार उत्पत्ति को सत्य मानकर अपने ग्रथो मे कुछ अन्तर के साथ इसी कहानी को दोहरा दिया है। चू कि चन्द्र वरदाई ने तीन प्रमुख राजवशो (सूयवशी, चन्द्रवशी और यादववशी) का ही वर्णन किया है अत यह कहानी अवश्य ही परवर्ती है।

'रवि शशि याद्दव वश ककुत्स परमार चौहान चार"

"क्षत्रियो की अग्निकु ड से उत्पत्ति का सिद्धान्त पन्द्रहवी शताब्दी से अधिक पुराना नही है और इसे जान-बूझकर पुरातन सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।" (डा० दशरथ शर्मा) यह कहानी इतनी अधिक बल पकड़ गई थी कि टाड ने राजस्थान का इतिहास लिखते समय इसे स्वीकार कर लिया। टॉड की पुस्तक की व्याख्या करते हुए विलियम क्रुक ने लिखा—"अग्नि कुण्ड से तात्पर्य अग्नि के द्वारा

सवाई जयसिंह के सर्वोत्कृष्ट स्मारक के रूप मे आमेर की तीसरी व नई राजधानी जयपुर नगर है। इसने जयपुर के अतिरिक्त मथुरा, बनारस, दिल्ली और उज्जैन मे जन्तर-मन्तरो का निर्माण करवाया जहा ज्योतिष के विद्वान सितारो की गतिविधियो का अध्ययन किया करते थे। सवाई जयसिंह ने राजपूत समाज के दोषो को दूर करने का प्रयास भी किया था। इसके द्वारा बनवाए हुए कई कुए, बावडिया व धर्मशालाए आज तक सुरक्षित हैं। वह एक अच्छा शासन-प्रबन्धक भी था जिसका प्रमाण इसका न्याय के प्रति प्रेम है।

शुद्धि से है जो कि दक्षिणी राजस्थान मे सम्पन्न किया गया था। हवनकुड के द्वारा क्षत्रियो को शुद्ध किया गया ताकि वे पुन हिन्दू जाति व्यवस्था मे प्रविष्ट हो सकें।" आधुनिक काल मे कोई भी व्यक्ति यह मानने को तैयार नही होगा कि राजपूत योद्धाओ का अग्नि से जन्म हुआ था।

चन्द वरदाई से पहले भी सूर्यवश अथवा चन्द्रवश मे उत्पन्न चार जातिया मौजूद थी। इसका प्रमाण हमे शिलालेखो तथा साहित्यिक कृतियो मे मिलता है। दसवी शताब्दी मे लिखा गया ग्रथ Viddhas Hapa Manijik यह बतलाता है कि कन्नौज के प्रतिहार चन्द्रवशी थे। इसी प्रकार चालुक्यो को चन्द्रवशी सिद्ध करने के प्रमाण (ताम्रपत्र) छटी शताब्दी तक के उपलब्ध हैं। ग्यारहवी शताब्दी का Bihari शिलालेख बतलाता है कि चन्द्रवशी होण के चुल्लू भर पानी से चालुक्य उत्पन्न हुए थे। चालुक्यो की उत्पत्ति पाडवो से तथा प्रतिहारो की लक्ष्मण से भी बताई गई है।

तीसरा वश परमारो का था जिसके सम्बन्ध मे दसवी शताब्दी मे लिखा गया 'पिंगल सूत्र कृत्रि' मे लिखा हुआ मिलता है कि परमार पहले ब्राह्मण थे और फिर बाद मे यह क्षत्रिय बन गए। आबू पर्वत मे स्थित तेजपाल मदिर से 1230 ई० का एक शिलालेख उपलब्ध हुआ है जिसमे धुम्रपाल परमार को सूर्यवशी बतलाया गया है। स्वर्गीय डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा का कहना है कि सूर्यवशी ध्रुम से प्रेरणा प्राप्त करके चन्द्र वरदाई ने पृथ्वीराज रासो मे राजपूतो की उत्पत्ति अग्निकुड मे बतला दी होगी।

सीकर जिले मे स्थित हर्षनाथ मन्दिर की प्रशस्ति मे चौहानो के पूर्वज 'गावक' को सूर्यवशी बताया गया है। इसे रघुवशी लिखा भी गया है। चन्द्र वरदाई से पहले चौहानो के समकालीन दो लेखक और भी हो चुके हैं—(i) पृथ्वीराज विजय महाकाव्य का रचियता जयनक (ii) हमीर महाकाव्य।

इन दोनो ग्रथो मे चौहानो को सूर्यवशी लिखा गया है। इसी बात का एक और शिलालेख अजमेर मे प्राप्त हुआ है जिसमे उन्हे सूर्यवशी लिखा गया है। चन्द्र वरदाई इन सबसे अवश्य परिचित होगा।

Theory of Lunnar and Solar Races —

प्राचीन शिलालेख स्पष्ट रूप से बतलाते हैं कि राजपूत सूर्यवंशी अथवा चन्द्रवंशी थे।

1038 ई० का नाथ शिलालेख बतलाता है कि गुहिलोत वंश की उत्पत्ति सूर्य से हुई थी और यह लोग रघुकुल के वंशज हैं।

चौदहवी शताब्दी का चित्तौड मे प्राप्त जयदेवी शिलालेख भी गुहिलोतो को अयोध्या के राजा दशरथ का वंशज बताता है।

चिढावा मे प्राप्त पन्द्रहवी शताब्दी का शृङ्गी ऋषि (Shringi Rishi) शिलालेख भी बताता है कि गुहिलोत राम के वंशज हैं। राजप्रशस्ति तथा मेवाड की ख्यातो मे भी गुहिलोतो को सूर्यवंशी ही बताया गया है।

इसी प्रकार मारवाड के राठौडो को भी सूर्यवंशी ही बताया गया है। जालौर और नागौर से प्राप्त तेरहवी शताब्दी के शिलालेखो मे राठौडो को सूर्यवंशी बताया गया है। इसका समर्थन सूरजप्रकाश तथा राजरूपक मे होता है जो अठारहवी शताब्दी मे मारवाड मे लिखे गए थे।

इसी प्रकार चौहानो को भी सूर्यवंशी ही बताया गया है। ग्यारहवी शताब्दी के बेदला शिलालेख मे तथा पृथ्वीराज विजय महाकाव्य व हम्मीर महाकाव्य मे चौहान सूर्यवंशी बताए गए हैं।

जैसलमेर के भाटी राजपूत चन्द्रवंशी बताए गए हैं। लाद्रेया शिलालेख तथा भट्टी काव्य मे इन्हे चन्द्रवंशी लिखा गया है।

इन सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजपूतो का सम्बन्ध वैदिककालीन क्षत्रियो से बताया गया है। डा० ओझा ने इसे स्वीकार किया है कि वर्तमान राजपूतो की उत्पत्ति भी वैदिक कालीन क्षत्रियो के समान सूर्य अथवा चन्द्र से हुई है। इस प्रकार डा० ओझा ने चन्द्र बरदाई की अग्निकुण्ड से उत्पन्न कहानी का स्वीकार किया है। वास्तव मे देखा जाय तो यह एक ऐसा प्रयास है जो ग्यारहवी शताब्दी मे प्रारम्भ होकर अठारहवी शताब्दी तक चलता रहा और राजपूतो की चन्द्र अथवा सूर्य से उत्पत्ति मानने वाले विद्वानो ने इस दैविक उत्पत्ति का सहारा लेकर राजपूतो का वैदिककालीन क्षत्रियो से सीधा सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया था। लेकिन इसे एकदम स्वीकार नही किया जा सकता क्योंकि सत्रहवी शताब्दी के बाद मे वंशावलियो और ख्यातो के लेखको ने सूर्य और चन्द्रवंशी राजपूतो की उत्पत्ति एक ही पूर्वज से बताकर Confusion को worst confounded बना दिया है। इन लोगो ने किसी वंश का प्रजापति से और फिर उसी वंश को इन्द्र से connect करके सूर्य और चन्द्र से उत्पत्ति की कहानी को अविश्वसनीय बना दिया है।

"What ever might have been their origin, the Rajputs only have in historical times maintained the social and political tradition of the Khatriyas of the age of the Epics Divine warriors might not spring up from the sacrificial fire pit on the mount Abu or the Bank of the Pushkar Lake, Solar and Lunar origin might be a fiction, individually and a vital force in moulding the Indian society which has been in the melting pot more than once since the time of Epics down our own times for periodical readjustmentis —Dr K R Qanungo

Theory of Foreign origin of Rajputs —आज से लगभग 115 वर्ष पहले राजस्थान का इतिहास लिखते समय कर्नल जेम्स टॉड ने राजपूतो को वैदिककालीन क्षत्रियो का वशज नही मानकर उन्हे विदेशी जातियो की सन्तान माना था । वह लिखता है कि यह जाति शक, सिथियन अथवा यूची जाति से उत्पन्न हुई थी क्योकि राजपूतो की सस्कृति इन जातियो से बहुत कुछ मिलती-जुलती है । उदाहरणाथ शक, सिथियन और यूची के समान राजपूत भी सूर्य की और युद्ध के देवताओ की पजा करते हैं । राजपूत शक्ति की पूजा करते हैं और नवरात्रो मे अपने हथियारो तथा घोडो की उसी प्रकार पूजा करते है जिस प्रकार यह विदेशी जातिया किया करती थी ।

अपने तर्क का समर्थन करते हुए टॉड लिखता है कि राजपूतो की धाय गुजर जाति की शाखाधा माईयो मे से ही होती है । इस प्रकार राजपूतो का गुर्जरो से निकटतम सम्बन्ध है और गुर्जरो की उत्पत्ति विदेशी जाति से हुई है तो राजपूतो की भी इनसे ही हुई होगी ।

टॉड ने पुराण की कहानी को भी अपने तर्क के समर्थन मे उद्धृत किया है । चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल मे जो पुराण सकलित किए गए थे उनमे एक कहानी है कि कलयुग मे कोई क्षत्रिय नही बचेगा । इन कहानियो के अनुसार चन्द्रगुप्त मौय अन्तिम क्षत्रिय राजा था । अत टॉड का कहना है कि वर्तमान राजपूतो की उत्पत्ति विदेशियो से हुई है ।

Dr V A Smith ने राजपूतो को केवल शक, सिथियन और यूचियो की ही सन्तान नही माना है बल्कि उनका कहना है कि इनकी उत्पत्ति हूणो से भी हुई थी । हूणो से उत्पत्ति के तर्क का समर्थन Dr Smith ने निम्नलिखित तर्कों से किया है —

(1) तीसरी शताब्दी के पश्चात् हमे क्षत्रियो के विषय मे कुछ सूचना नही मिलता ।

(ii) हूणो की पराजय के पश्चात् भारतीय समाज मे विलीनीकरण हुआ था। यह कार्य वशिष्ठ के द्वारा सम्पन्न कराया गया था। वशिष्ठ ने हूणो की शुद्धि करके उन्हें समाज मे प्रविष्ट होने की अनुमति दे दी थी और यह शुद्ध हिन्दू ही राजपूत कहलाये थे।

डा० भडारकर ने भी राजपूतो को विदेशियो की ही सन्तान माना है। यद्यपि डा० भडारकर ने अपने पक्ष का समर्थन विभिन्न तर्को से किया है और अन्त मे यह निष्कर्ष निकाला कि जो हूण लोग शिवालिक की पहाडियो मे बस गए थे उनकी किसी एक शाखा से राजपूतो की उत्पत्ति हुई और फिर यह लोग वहा के विभिन्न भागो मे चले गए। डा० भडारकर राजपूतो को गुर्जर जाति का वशज मानते हैं और क्योकि गुर्जर विदेशियो की सन्तान हैं, अत राजपूत भी विदेशियो की सन्तान है।

लेकिन डा० हीराचन्द ओझा स्वर्गीय डा० भडारकर के इस निष्कर्ष से सहमत नही थे। उन्होने कर्नल टाड, डा० स्मिथ तथा डा० भडारकर के तर्को का विरोध करते हुए लिखा है कि—(1) हमारे शास्त्रो मे शक्ति, हथियार और घोडो की पूजा विदेशियो के आगमन से पूर्व भी प्रचलित थी। (2) जहा तक धामाई-वाला तक है उसके लिए ओझा कहते हैं कि हमारे साहित्य का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि राजपूतो ने धामा रखने की परिपाटी विदेशियो से नही सीखी थी। (3) यह कहना गलत है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के पश्चात कोई क्षत्रिय भारत मे नही हुआ था। उदयगिरी शिलालेख मे क्षत्रियो का जिक्र है।

डा० भडारकर तथा अन्य विद्वानो का यह कहना कि विदेशियो और भारतवासियो के बीच वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हुए और उन अन्तर्जातीय विवाहो से उत्पन्न सन्तान राजपूत कहलाई, सर्वथा सत्य नही है। क्योकि मैगस्थनीज फाहियान और ह्वान च्वाग स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि भारतवासी स्वभाव से अपनी जाति बदलना पसन्द नही करते। हमारे शास्त्रो मे प्रतिलोम और अनुलोम विवाह जरूर वर्णित है लेकिन लोग उन्हें स्वभाव से पसन्द नही करते थे।

डा० भडारकर ने एक शिलालेख के आधार पर वासुदेव व बहमन का एक ही व्यक्ति बतलाकर राजपूतो को गुर्जर की सन्तान सिद्ध करने का जो प्रयास किया था वह भी सर्वथा युक्ति सगत नही है क्योकि इस शिलालेख को जब दुबारा अन्य विद्वानो के द्वारा पढा गया तो यह स्पष्ट हो गया कि डा० भडारकर की व्याख्या सही नहीं है। गुर्जर शब्द का प्रयोग भी भारत मे केवल गुर्जरो के आने से ही प्रारम्भ नही हुआ है वरन् यह शब्द दूसरी व तीसरी शताब्दी मे भी प्रचलित था चूकि इस समय कोई विदेशी जाति का भारतीयकरण नही हुआ था।

डा० सी० वी० वैद्य का यह भी कहना है कि Anthropological Study के आधार पर यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि गुर्जर विदेशी नही वरन् आर्यो की ही सन्तान हैं।

अग्निकुण्ड से उत्पत्ति में विश्वास रखने वाला कोई भी राजपूत वंश अपने आप को गुर्जरों का सम्बन्धी नहीं मानता। अतः डा० भंडारकर का यह कहना कि राजपूतों की उत्पत्ति उन विदेशियों से हुई जिनसे गुर्जर उत्पन्न हुए, सर्वथा सत्य नहीं है। यह हो सकता है कि कतिपय राजपूत राजाओं ने गुर्जर स्त्रियों से विवाह कर लिये हों और वे स्त्रियां उनकी रखैलों के रूप में रही हों। लेकिन उन स्त्रियों से उत्पन्न सन्तान राजगद्दी पर नहीं बैठी और उनसे आगे वंश नहीं चला।

उपरोक्त तीनों सिद्धान्तों का अध्ययन करने के बाद यह निश्चय करना अब भी सम्भव नहीं है कि राजपूतों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई तथा उनका वैदिक-कालीन क्षत्रियों से सीधा सम्बन्ध था अथवा नहीं।

Appendix II

अकबर की राजपूत नीति

भारत मे मुगल साम्राज्य के सस्थापक बाबर को राजस्थान के राजपूत राजाओ के विरुद्ध 1527 मे खानवा का युद्ध लडना पडा था। इस युद्ध के बाद राजस्थान कुछ समय के लिए शक्तिहीन हो गया था। लेकिन बाबर किन्ही कारणो की वजह से राजस्थान की ओर तत्काल विशेष ध्यान नही दे सका। 1530 मे उसकी असामयिक मृत्यु के बाद उसका पुत्र और उत्तराधिकारी हुमायू सिंहासनारूढ हुआ। हुँमायू से मेवाड की रानी कर्मवती ने गुजरात के बहादुर शाह के खिलाफ सैनिक सहायता की प्रार्थना की थी। लेकिन हुँमायू ने एक विधर्मी को सहायता देना उचित नही जानकर अथवा बहादुरशाह की चिकनी-चुपडी बातो मे आकर अवसर को हाथ से निकल जाने दिया। तत्पश्चात् वह अपनी कठिनाइयो मे इतना अधिक उलझ गया कि 1540 तक उसे राजस्थान की ओर ध्यान देने का अवसर ही नही मिला। हुँमायू की इस व्यस्तता से लाभ उठाकर मालदेव के नेतृत्व मे मारवाड का राठौड राज्य अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। शेरशाह के द्वारा 1540 मे पराजित किए जाने पर हुँमायू के हाथ से राज्य निकल गया और वह सहायता की खोज मे पजाब व सिंध मे भटक रहा था। उस वक्त मारवाड के शासक राव मालदेव ने उसे सैनिक सहायता देने का निमन्त्रण भी भिजवाया था। लेकिन हुँमायू ने इस बार भी अवसर खो दिया और वह 12 महीने तक सिंध मे समय नष्ट करता रहा। लेकिन 12 महीने के बाद जब उसे कही उम्मीद नही रही तो वह मारवाड की ओर रवाना हो गया। मालदेव ने हुँमायू का उचित सम्मान किया और निर्वाह के लिए बीकानेर भी प्रदान किया। लेकिन शेरशाह से वैर मोल लेने के डर से न तो मालदेव ने हुँमायू की कोई सहायता ही की और न उसे शेरशाह की मर्जी के मुताबिक बन्दी ही बनाया। अत हुँमायू को निराश होकर मारवाड से लौट जाना पडा। मार्ग में जैसलमेर के शासक भाटी मालदेव के आदमियो ने हुँमायू को काफी कठिनाई पहुँचाई थी। इस समय अकबर की गर्भवती मा हमीदाबानू बेगम भी हुँमायू के साथ थी। मारवाड की सीमाओ को लाघकर जब हुँमायू उमरकोट पहुँचा तो सोढा राजपूत किलेदार ने हुँमायू को पनाह दी। यही पर अकबर पैदा हुआ था। तत्पश्चात् हुँमायू फारस चला गया। हो सकता है कि वहा राव मालदेव व जैसलमेर के भाटी मालदेव के तथाकथित दुर्व्यवहार की कहानी शाह को सुनाई हो। जखीरुल खवानीन का लेखक शेख फरीद भाखरी लिखता है कि शाह ने हुँमायू को सलाह दी थी कि यदि उसे भारत

मे मुगल साम्राज्य की जड मजबूत करनी है तो राजपूतो को वश मे करना चाहिए। फारस की सहायता से हुमायू अपना राज्य पुन प्राप्त करने मे सफल हो गया लेकिन राज्य प्राप्त करने के तुरन्त बाद ही उसका देहान्त हो गया। अत राजपूत राजाओ को वश मे करने का उत्तरदायित्व उसके पुत्र और उत्तराधिकारी अकबर पर पडा।

सौभाग्य से जब अकबर सिंहासनारूढ हुआ और उसने राज्य की बागडोर अपने हाथो मे लेने का निश्चय किया उस समय राजस्थान के विभिन्न राज्यो मे गृह-कलह फैली हुई थी। आमेर के शासक राजा भारमल के विरुद्ध उसके स्वर्गवासी भाई का पुत्र सूजा सघर्ष मे जुटा हुआ था। उसने भारमल के विरुद्ध अकबर के द्वारा नियुक्त अजमेर के मुगल सूबेदार मिर्जा शरफुद्दीन से भी जाकर प्रार्थना की थी। मारवाड के शासक मालदेव की विस्तारवादी नीति से असन्तुष्ट होकर मेडता के निर्वासित शासक जयमल ने स्वय अकबर से मालदेव के विरुद्ध सहायता चाही थी और अजमेर के निकट पडौस मे स्थित जैतारण पर जब मिर्जा शरफुद्दीन ने आक्रमण किया तो मालदेव ने आपसी कलह की वजह से वहा के शासक को कोई सहायता नही दी। तात्पर्य यह है कि (Intercesine feuds) भाईबन्दो के पारस्परिक फसाद ने अकबर को राजस्थान मे हस्तक्षेप करने के लिए निमन्त्रित किया।

इसी समय अकबर के विरुद्ध बैरामखा ने विद्रोह किया और विद्रोह काल मे वह बीकानेर तथा नागौर गया था। स्वाभाविक रूप से अकबर का ध्यान राजस्थान की ओर आकर्षित हुआ।

लेकिन इससे भी अधिक महत्वपूर्ण कारण यह था जैसा कि अकबर के आधुनिक इतिहासकार डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने लिखा है कि अपने प्रारम्भिक दिनो मे वह राज्य-विस्तार करना चाहता था। यदि उसे गुजरात और मालवा को अपने अधिकार मे करना था तो पहले राजस्थान को अपने अधीन करना जरूरी था क्योकि गुजरात व मालवा का रास्ता राजस्थान मे होकर जाता था।

इसी समय अकबर को अजमेर के शेख सलीम चिश्ती के प्रति व्यक्तिगत रूप से भक्ति हो गई। वह शेख की दरगाह की जियारत करने के लिए लगभग प्रतिवर्ष अजमेर आने लगा। इस यात्रा के सिलसिले मे उसका राजस्थान के साथ व्यक्ति-गत रूप से सम्बन्ध हुआ।

इस प्रकार की पहली धर्म-यात्रा अकबर ने सर्वप्रथम 1562 मे की थी। जब अकबर आमेर की सीमाओ के निकट था तब वहा के शासक राजा भारमल ने सागानेर पहुँचकर सम्राट से भेट की। भेट करने का प्रयोजन स्पष्ट था। भारमल अपने राज्य की मिर्जा शरफुद्दीन तथा अपने सम्बन्धी सूजा से रक्षा करना चाहता था। अत उसने मुगल सम्राट से सीधा सम्बन्ध स्थापित करना चाहा। भेट के बाद अकबर के साथ अपनी पुत्री का विवाह करने का प्रस्ताव रखा। इस समय की इच्छा-नुसार यह विवाह साभर के स्थान पर 1562 मे सम्पन्न भी हो गया। यह पहला ऐसा राजनीतिक विवाह था जिसके कारण आमेर के मुगल राजवश के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध कायम हो गए। भारमल, उसके पुत्र भगवन्तदास व पौत्र मानसिंह को अकबर ने शाही सेना मे भर्ती कर लिया। इस विवाह के परिणामस्वरूप राजा भारमल को अपने शासन को सुदृढ करने मे अवसर प्राप्त हुआ, लेकिन इस

कही अधिक लाभ अकबर को हुआ । आमेर की राजकुमारी के गर्भ से सलीम पैदा हुआ जो बाद मे अकबर की मृत्यु के बाद जहागीर के नाम से गद्दी पर बैठा । अकबर को राजा भारमल, उसके पुत्र भगवन्तदास एव पौत्र मानसिंह की सैनिक सेवाए प्राप्त हुई । 1562 के बाद लगभग प्रत्येक अभियान मे अकबर ने राजपूतो को Auxiliary (सहायक सेनानायक) Ommanders के रूप मे नियुक्त किया । अकबर ने राजपूतो की सैनिक सेवाओ को क्यो अपनाया, इसका प्रत्युत्तर हमे बैरामखाँ, आदमखा इत्यादि विश्वासपात्र मुगल सरदारो के विद्रोहो मे मिल सकता है । इन विद्रोहो ने अकबर के मस्तिष्क मे स्पष्ट रूप से यह विचार दृढ कर दिया था कि केवल मुसलमानो पर विश्वास कर लेने से भारत मे मुगल साम्राज्य सुदृढ नही हो सकता । उजबेगो के विद्रोह ने तो उसका ध्यान राजपूत राजाओ की ओर अधिक आकर्षित कर दिया था । एक ओर तो मुसलमानो की वफादारी मे अकबर को सदेह हो गया था, दूसरी ओर इन राजपूत राजाओ ने अपने दूसरे साथी राजाओ को अकबर के निकट लाने का प्रयत्न करके अकबर को अपनी वफादारी पर विश्वास दिला दिया था । राजा भगवन्तदास ने जैसलमेर के रावल हरराम को अकबर तक पहुँचाया था । मेवाड अभियान मे राजा भगवन्तदास तथा उसके पुत्र मानसिंह ने जिम्मेदारी व योग्यता का परिचय दिया था उससे अकबर अत्याधिक प्रभावित हुआ था । बीकानेर के रायसिंह ने जिस जाफिशानी के साथ मारवाड के राव चन्द्रसेन का पीछा किया था अथवा मोटा राजा उदयसिंह ने सिरोही के राव सुरताण का दमन किया था उन सबका अकबर के हृदय पर अमिट प्रभाव पड़ा । कहने का तात्पर्य यह है कि शाही सेवा मे राजपूत राजाओ को ऊचे से ऊचे मन्सब प्रदान किए गए ।

शाही सेवा मे अपूर्व योग्यता दिखाने के ऐवज मे इन राजाओ को जागीरें दी जाती थी । यह जागीरें परगनो के इजाफा के नाम से प्रसिद्ध हुई । जब भारमल व कल्याणमल की मृत्यु हुई तो अकबर ने उनके पुत्रो को टीका दिया । यह एक नई परिपाटी थी जिसने राजपूत राजाओ को पूर्ण रूप से अकबर के अधिकार मे ला दिया । प्रारम्भ मे टीका मरणासन्न शासक की इच्छानुसार दिया जाता था लेकिन बाद मे अकबर ने अपनी इच्छानुसार भी टीका देना शुरू कर दिया । 1583 मे मारवाड का टीका वहा के सरदारो की मर्जी के खिलाफ राव चन्द्रसेन के पुत्र रायसिंह को नही देकर चन्द्रसेन के बडे भाई मोटाराजा उदयसिंह को दिया । इस टीका के साथ अकबर पैत्रक राज्य को 'वतन जागीर' के रूप मे भी प्रदान करने लगा था । अत 1605 तक राजस्थान के राजपूत राजा वास्तव मे 'जमीदार' बन गए थे । अधिकाश राजा Absentee rulers थे जो बरसों तक अपनी जन्मभूमि से बाहर रहते थे और वही रहते हुए उनका देहान्त हो जाता था (Died in harness)

इस प्रकार राजवशीय विवाह करके अकबर ने राजपूतो को पूर्ण रूप से अपने वश मे कर लिया था । इन विवाहोके कारण आमेर, बीकानेर एव मारवाड के राजपूत राजघरानो कीसैनिक सेवायें अकबरऔर उसके उत्तराधिकारियोको प्राप्त हुई ।

Effects of Rajput Policy —अकबर की इस राजपूत नीति के परिणामस्वरूप राजपूतो और मुगलो का सीधा सम्पर्क कायम हुआ। सम्पर्क स्थापित होने के कारण एक दूसरे के रहन-सहन, रीति-रिवाज एव आचार-विचार प्रभावित हुए । अकबर दशहरा और होली के त्योहार उसी जोश के साथ मनाने लगा जिस उत्साह के साथ ईद और नौरोज के त्योहार मनाता था । उसकी पगडी बाधने का

ढंग हिन्दू एव मुस्लिम परम्पराओ का मिश्रित रूप था। मुगल दरबार मे रहने वाले राजपूतो की वेश-भूषा मुगल वेश-भूषा मे प्रभावित हुई। चुस्त पाजामा, अचकन व अटपटी पगडी इसका प्रमाण है। इन राजपूत राजाओ की भाषा भी फारसी भाषा मे प्रभावित हुई। राजस्थानी भाषा मे 'मुजरा' 'मिताव' इत्यादि शब्दो का प्रयोग यही सिद्ध करता है। कतिपय हिन्दू राजाओ ने अपनी मुस्लिम प्रजा के लाभार्थ मस्जिदें भी बनवाई थी। मोटाराजा उदयसिंह ने जोधपुर शहर मे एक मस्जिद का निर्माण किया था।

लेकिन सर्वाधिक प्रभाव राजपूत राज्यो के प्रशासन पर पडा। अकबर से पहले राजस्थान मे डाक-चौकिया, दीवान, परगने इत्यादि नही थे। राजपूत राजाओ के अपने सरदारो के साथ भाईचारे के सम्बन्ध थे लेकिन मुगलो के सम्पर्क मे आने के बाद इन राजाओ ने भी अपने सरदारो से पेशकश लेनी शुरू कर दी। उनसे सैनिक मगवाने शुरू किए, उन सरदारो को भी चाकरी करनी पडी।

आगरा और दिल्ली के जैसे महल इन राजाओ ने अपनी-अपनी राजधानियो मे बनवाए। महलो मे बडे दरवाजे तथा आगन भी बनवाने प्रारम्भ किए। इस प्रकार स्थापत्य-कला भी प्रभावित हुई।

अबुलफजल के अकबरनामा के लिए सामग्री एकत्रित करने के लिए राजस्थान के राजपूत राजाओ ने ख्यात एव वशावलिया लिखवाई थी। इस प्रकार राजस्थान के विभिन्न राज्यो मे इतिहास लेखन परिपाटी अकबर की राजपूत नीति का ही परिणाम है।

इस प्रकार यह कहना बहुत कुछ अ श तक सत्य है कि अकबर की राजपूत नीति ने केवल मुगल सम्राट् की धार्मिक नीति को ही सहिष्णु नहीं बनाया अपितु इस नीति के फलस्वरूप दो विरोधी सभ्यताओ और संस्कृतियो का समागम हुआ।

Akbar's Rajput policy was beneficial for both

अकबर की राजपूत राज्यो के प्रति नीति मुगल साम्राज्य एव राजपूत राज्य दोनो के लिए ही लाभप्रद सिद्ध हुई। मुगल साम्राज्य को इन राजाओ की सेवाए प्राप्त हुई ही लेकिन मुगल सम्राट् का सहयोग और समर्थन प्राप्त करके राजपूत राजा अपने राज्यो मे विद्रोही तत्वो का दमन करने मे भी सफल हुए शाही सेवा मे रहकर इन राजाओ ने केवल अपने व्यक्तिगत गौरव एव प्रतिष्ठा की ही वृद्धि नही की, वरन् अपने वश परम्परागत राज्यो की ख्याति भी बढाई। मुगल सम्पर्क के कारण गुजरात व दक्षिण की धन सम्पत्ति का अविरोध रूप से राजस्थान मे आयात हुआ।

Appendix III

राजस्थानी चित्रकला का उत्कर्ष एवं विकास

चित्रकला की जो शैली राजस्थान के विभिन्न भाषायी राज्यो मे उत्पन्न एव विकसित हुई उसे भ्रम से ब्राउन ने राजपूत चित्रकला कह कर पुकारा है। ब्राउन का यह ख्याल था कि केवल राजपूत राजाओ के अथवा उनके जमीदारो के सरक्षण मे चित्रकला पनपी थी लेकिन वास्तव मे राजस्थान मे चित्रकला को सेठ साहूकारो तथा धार्मिक सस्थाओ, कला प्रेमियो और साधारण लोगो के द्वारा भी प्रोत्साहन दिया गया था इसलिये राजपूत चित्रकला कहना युक्तिसगत प्रतात नही होता। ऐसी ही भूल श्री एन० सी० मेहता ने इस शैली को हिन्दू शैली कहकर की है। मि० मेहता इसका नामकरण करते समय कदाचित यह भूल गये थे कि राजस्थान मे चित्रकारो को सेठ साहूकारो, धार्मिक सस्थाओ और साधारण जनता की अपेक्षा राजाओ एव जमीदारो के द्वारा अधिक प्रोत्साहन दिया गया था। यह चित्रकार राजपूत राजाओ के दरबारो, महफिलो, जलसो, उनकी रोमाचकारी घटनाओ तथा शिकार की घटनाओ को चित्रित करने मे अधिक समय लगाते थे इसलिये केवल इसे हिन्दू चित्रकला कह कर पुकारना भी युक्तिसगत प्रतीत नही होता। वास्तव मे, राजस्थान मे चित्रकला की जिस शैली का उत्कर्ष एव विकास हुआ उसे राजस्थानी चित्रकला कह कर पुकारना चाहिये। राजस्थानी चित्रकला पुकारने से यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि चित्रकार राजपूत राजाओ के चित्र बनाने के साथ साथ पौराणिक गाथाओ से प्रेरणा लेकर भी चित्र बनाया करते थे। उनके चित्र विभिन्न स्रोतो के परिणाम थे।

कुछ आधुनिक इतिहासकारो का कथन है (जिनमे डाक्टर जदुनाथ सरकार मुख्य है और उन्होने अपनी पुस्तक 'स्टडीज इन मुगल इन्डिया' मे पेज 292 पर लिखा है) कि "जब राजपूत राजा मुगल बादशाहो के सम्पर्क मे आये और अकबर, जहागीर तथा उनके उत्तराधिकारी के सरक्षण मे चित्रकला का उत्कर्ष और विकास हुआ, उस समय कतिपय चित्रकार इन राजपूत राजाओ के दरबारो मे आकर रहने लगे और इनके द्वारा राजस्थानी चित्रकला का जन्म हुआ लेकिन यह धारणा ऐतिहासिकता के प्रतिकूल है। राजस्थान मे पाषाण युग के जमाने से ही चित्रकारी होती रही है। ये चित्र गुफाओ की चट्टानो पर बनाये गये थे। यद्यपि ये नाचते हुए मानव अथवा गडरिये के चित्र हो सकते हैं लेकिन फिर भी यह इस बात को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि राजपूत राजाओ ने चित्रकला के आदर्श मुगल सम्राटो से प्राप्त नही किये थे।

राजस्थान मे पहले जो चित्र बनाये जाते थे वे मुख्य रूप से दो प्रकार के होते थे—(1) म्यूरल पेन्टिग्स (Murals Paintings) और (2) पिक्टोरियल (Pictorial) पेन्टिग्स। प्राचीनकाल मे ही यह परम्परा चली आती थी कि सस्कृत और मारवाडी भाषा के ग्रन्थो मे चित्र लगा कर उन्हें

इलस्ट्रेट (Illustrate) किया जाता था। इन पुस्तको के बोर्डर भी विभिन्न डिजायनो के बनाये जाते थे। जैसलमेर के ग्रन्थ भण्डारो मे आज भी हजारो की सख्या मे हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं जो इस तथ्य की पुष्टि करते है। ये चित्र ताड की पत्तियो पर तथा महलो की दिवारो पर बने हुए आज भी सुरक्षित हैं। इन चित्रो को मुख्य रूप से 3 भागो मे बाटा जा सकता है। पहली श्रेणी मे वे चित्र आते है जो दरबारी जीवन, महफिलो और घरो को चित्रित करने के लिये बनाये जाते थे। दूसरी श्रेणी मे वे चित्र आते है जो धार्मिक उत्सवो पर पूजा अर्चना अथवा सुन्दरता लाने के लिये बनाये जाते थे और तीसरी प्रकार के वे चित्र हैं जो पौराणिक हिन्दू गाथाओ के आधार पर अथवा सस्कृत भाषा के प्राचीन ग्रन्थो से प्रेरणा लेकर बनाये गये थे। मूल रूप से अगर देखा जाये तो राजस्थान मे बने हुए चित्र अपनी शैली और स्वरूप मे अजन्ता के चित्रो से मिलते जुलते हैं। राजस्थान मे भी वह देश जिसे मरुदेश या मारवाड कह कर पुकारा जाता है उस प्रदेश मे एक अपना विशेष स्कूल था कि जो अगधर शैली के चित्र बनाता था। इसी तरह से अगर देखा जाये तो मेवाड मे भी ऐसे बहुत से चित्र मिल सकते हैं कि जो मुगलो के प्रवेश से पूर्व बनाये जाते थे। तारानाथ नामक कला मर्मज्ञ ने इस बात को स्वीकार किया है कि इन चित्रो मे पाई जाने वाली विशेपता अजन्ता की चित्रकला से मिलती जुलती है। पहली विशेषता तो यह है कि चित्र का आकार, भावना से पूर्णरूपेण ओतप्रोत थी। दूसरी विशेपता यह थी कि यह चित्रकार अजन्ता के चित्रकारो की तरह काले लाल, नीले और पीले रग का स्वच्छन्द रूप से प्रयोग करते थे। राजस्थान मे रेत अधिक उडती है इसलिय कतिपय राजस्थानी चित्रकला मे इन रगो को चुना गया था कि जिन पर रेत अधिक दिखलाई नही देती। तीसरी विशेपता यह है कि इन चित्रो मे जिस ढग से बडी बडी आखें बनायी जाती थी जिन्हे पटाकक्ष नेत्र कह कर पुकारा जाता है वह शैली अजन्ता की शैली से मिलती जुलती थी। चित्रकार छोटे कद के लोगो के चित्रो मे उनके हाथ की उगलिया उन्ही के आकार के अनुकूल चित्रित करते थे। इन चित्रो को बनाते समय पेड तथा अन्य प्राकृतिक दृश्यो को भी चित्रित किया जाता था। पेडो मे कदम, आशापल्लव व कन्दन तथा आम के पेड बहुत अधिक लोकप्रिय थे। इस प्रकार प्राकृतिक छवि को सुन्दरतापूर्वक चित्रित करके राजस्थानी चित्रो को अधिक आकर्षित बना दिया।

मुगल सम्राट अकबर के सम्पर्क मे आने के बाद जब राजपूत राजाओं का मुगल दरबारी जीवन के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित हो गया तो स्वाभाविक रूप मे राजस्थान की चित्रकला भी प्रभावित हुई। मध्यकाल मे बने हुए प्राचीन चित्र आज भी यत्रतत्र सुरक्षित हैं। इन चित्रो को देख कर कोई भी व्यक्ति यह डिसटिनग्विस कर सकता है कि कौन सा चित्र मुगल आदर्शों से प्रभावित है। उदाहरण के लिये मुगलो के सम्पर्क मे आने के बाद राजस्थानी चित्रकार अपने चित्रो मे बोर्डर बनाने लगे, पशु-पक्षियो की मूर्तियो को चित्रित करने लगे अथवा चित्रो मे जो पुरुषो और स्त्रियो की आकृतिया बनाई गई उनको पारदर्शक कपडे पहनाये हुये चित्रित किया गया। मुगलो के आने से पहले चित्रो की आकृतिया पार्श्व बनायी जाती थी और जैसा कि कहा जा

चुके है सुनहरी लाल या गहरे नीले रग का प्रयोग किया जाता था लेकिन मुगलो के सम्पर्क मे आने के बाद इन चित्रकारो ने नये ढग के चित्र बनाना शुरू कर दिया। इन चित्रो मे पोर्ट्रेट (Portrait), पेण्टिग तथा Prescoes सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। राज्य दरबारो और महफिलो के चित्र मुगलो के सम्पर्क मे आने से पहले नही बनाये जाते थे और न चित्रो से मुगल डिजाइन की इमारत फर्नीचर बरामदे, गलीचे, सुराही इत्यादि ही चित्रित की जाती थी। पुरुषो की कृतिया भी मुगल काल के पुरुषो के समान नही बनायी जाती थी।

मेवाड

राजस्थान मे चित्रकला का विकास भिन्न-भिन्न केन्द्रो पर हुआ–मेवाड मे चित्रकला का विकास महाराणा अमरसिंह के शासन–काल मे मेवाड की तत्कालीन राजधानी चावड मे हुआ। इसके अतिरिक्त नाथद्वारा मे भी चित्रकला का विकास हुआ था। मेवाड के बने चित्र कतिपय स्थलो पर सुरक्षित है। कलकत्ता के श्री गोपीचन्द कानोडिया के पास मे इस समय भी मेवाड के बहुत से चित्र है। कई चित्र मेवाड की राजधानी उदयपुर मे महाराणा के राजमहल मे जानदान मे सुरक्षित है। मेवाड के आधुनिक इतिहासकार डाक्टर गोपीनाथ शर्मा ने मेवाड की चित्रकला के सम्बन्ध मे समय समय पर जो लेख विभिन्न पत्र–पत्रिकाओ मे प्रकाशित किए है उनको पढने से यह स्पष्ट जाहिर होता है कि 13वी शताब्दी से अनवरत रूप से मेवाड मे चित्रकला का विकास होता रहा है। मेवाड के चित्रकार कपिरसफूल और विभिन्न पक्षियो के चित्र बनाने मे भी उतने ही सिद्धहस्त थे जितने वह रागमाला या बारामासा के चित्र बनाने मे पारगत थे। महाराणा अमरसिंह प्रथम का शासनकाल मेवाड की चित्रकला के इतिहास मे स्वर्ण युग माना जाता है। उस जमाने मे जो रागमाला चित्र बनाये गये वह आज बडोदा के अजायबघर मे सुरक्षित हैं और जो बारामासा चित्र बनाये गये वे सरस्वती भवन पुस्तकालय मे सुरक्षित है। इन चित्रो को देखने से पता चलता है कि मध्यकाल मे मेवाड के चित्रकार राम लक्ष्मण और रावण की कृतिया भी मुगल सेनानायक की आकृतियो के समान बनाने लगे थे। रावण को सीता हरण करते समय एक मुस्लिम फकीर के रूप मे चित्रित करना यह बतलाता है कि मेवाड की शैली पर मुगल शैली का पर्याप्त प्रभाव पडा था लेकिन इसका यह तात्पर्य नही है कि केवल मुगल डिजाइन (Design) के ही चित्र बनाये गये थे। हमारी पौराणिक गाथाओ तथा प्राचीन कहानियो के आधार पर जो चित्र मेवाड मे बनाये गये वे इस बात के प्रतीक हैं कि मेवाडी चित्रकार चित्रकला की प्राचीन परम्परा को नही भूले थे। इन चित्रो मे भडकीले रगो का जैसे कत्थई (Saffron), पीला तथा Lapis Laguli रगो का प्रयोग किया गया था। Background को Contrast Colours से चित्रित किया गया। आदमी और औरतो की नुकीली नाकें, लम्बे चेहरे तथा मीन नयन चित्रित किये गये हैं। इनकी बगलो के नीचे चित्र मे Shade बतलाये गये हैं। आदमियो को जामा, पटका, पायजामा, पगडी और टूने पहने बतलाया गया है जब कि औरतो को ऐसा लेहगा कि जिसके कलियाँ हो तथा सादा रग के पहने चित्रित किया गया है। चित्रो मे औरतो को चोली और पारदर्शक ओढनी पहने बतलाया गया है। इनकी भुजाओ और कलाईयो

को काली चूडिया पहने बताई गई है ।[1] लेकिन मेवाड के चित्रो की अपेक्षा नाथद्वारा मे बने हुए चित्रो मे अधिक विशेषता पाई जाती है । यह चित्रकार वास्तविक जीवन के अधिक निकट रहते थे । इन्होंने मजबूत स्टाउट आकृति के चित्र बनाये । ये चित्र कागज और कपडो पर बनाये गये थे । इनकी कलात्मक सुन्दरता मेवाड के चित्रो की अपेक्षा अधिक मानी जाती है । कुछ इतिहासकारो ने नाथद्वारा शैली को मेवाड शैली का एक भाग माना है लेकिन वास्तव मे देखा जाय तो नाथद्वारा मे चित्रकला की एक पृथक शैली विकसित हुई थी । इस शैली के उत्कर्ष के विभिन्न कारण थे । बृज के निवासी अपने देवता की मूर्ति के साथ नाथद्वारा आये थे अत वह अपने आदर्शों को भी साथ लाये । कृष्ण और गोपियो की रास लीलाओ को इन चित्रकारो ने बडे सुन्दर ढग से चित्रित किया । नाथद्वारा मे बने हुए चित्र आज भी बडौदा और बम्बई के अजायबघरो मे सुरक्षित है ।

मारवाड़

मेवाड की तरह से मारवाड मे भी चित्रकला का विकास हुआ । इसका प्रमाण हमे ओसियो के मन्दिरो मे बने हुए चित्रो मे मिल सकता है । नाडाल के एक जैन मन्दिर मे जहागीर काल के बने हुए फिस्कोज सुरक्षित है । इनको तथा घानेराव और कुचामन के फिस्कोज को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि मारवाड के राजा और जमींदार चित्रकारो को प्रोत्साहित करते थे । राव मालदेव के शासन काल मे जोधपुर के राजमहल मे (चोखेला महलो मे) जो चित्र बनाये गये वे मारवाड टाइप के है । इन चित्रो का मूल उद्देश्य प्राचीन पौराणिक गाथाओ से सम्बन्धित हुआ करता था लेकिन उस जमाने मे जो रागमाला चित्र सबसे पहले सन् 1623 मे पाली के स्थान पर वीरजी नामक चित्रकार द्वारा बनाये गए थे उनको देखने से यह पता चलता है कि मारवाडी चित्रकला की शैली पूर्ण विकसित हो चुकी थी । मारवाड के चित्रकार लम्बे कद के पुरुष की, जो अधिक आकर्षक प्रतीत होते थे, आकृतिया बनाते थे । इन चित्रो मे लम्बी और मसौदा आखे तथा कानो तक केशो की लटे चित्रित की गई है । पुरुषो के चित्रो मे दाढी बतलाई गई है और मूछे घनी बतलाई गई है । उनकी Dress सफेद जामा और सफेद पायजामा तथा कमर बद दिखाये गए है सिर पर पगडी है (जिसमे परिवर्तन आते रहे)। पगडी पर तुर्री, कलगी, सरपेच तथा शरीर के दूसरे भागो मे गुन्दा और नेकलेस पहने चित्रित किया गया है । पुरुषो को कटारा ढाल और तलवार लिये चित्रित किया गया है । स्त्रियो का अलंकार सहित

1 "These paintings exhibits brilliant lacoured saffron, yellow and lapis laguli big the background as contrastic patches of various colours, men and women have prominent noses, oval faces and fish shaped eyes, tree forms are stylized there is shade under the arm pits, men are shown wearing Jama Patka Pyjama, Pagri, and shoes and the women are dressed in Lehenga having stripes or with floral motifs or plain colour a choli and a transparent Odhni ... tassels are worn on arms and ... "

Features मे चित्रित किया गया है। इनकी आकृति हृष्टपुष्ट है। इनके बाल लम्बे और घने है। भुजाये भी लम्बी है। माथे पर बिंदी लगी हुई बनाई गई है व हाथो मे मेहदी है। कमर कुछ चौडी है। इनकी वेषभूषा विभिन्न रगो की है जैसे लाल, नीले, पीले और नारगी रग की Dresses पहने हुए चित्रित किया गया है। ये स्त्रिया लहगा पहने है। बेसडा काचली, लुगी क्सा, चुस्त पायजामा पहने भी बताया गया है। इन स्त्रियो का कुरता और दुपट्टा पारदर्शक चित्रित किया गया है। मारवाडी औरतो को आभूषण पहनने का बहुत शोक है अत एक मारवाडी स्त्री को चित्र मे चोटी, बाली, नथ, माला इत्यादि पहने हुए बताया गया है। भुजाओ पर भुजबद कलाई पर चूडियो तथा दूसरे आभूषण, पाव मे पायल पहने बतलाया गया है।[1]

इन चित्रो मे लोक नृत्य तथा पारिवारिक दृश्यो को लेकर भी चित्र बनाये जाते थे। जनाना खाने के चित्रो मे देवी देवता के जो चित्र बनाये गये थे उनको देखने से यही प्रकट होता है कि मारवाड मे चित्रकला के आदर्श सर्वोतन्मुखी विकास कर चुके थे।

बीकानेर शैली

मारवाड के राठौड राजाओ के सहिबन्धु बीकानेर मे शासन करने लगे। इसलिये स्वाभाविक तौर पर चित्रकला की मारवाड शैली ने बीकानेर की शैली को भी प्रभावित किया। बीकानेर मे बने चित्रो की रिजिड (Riggd) आकृतिया को देखने मे पता चलता है कि बीकानेर की शैली पर कागडा शैली का प्रभाव पडा था। जिस कृत्रिमता मे चित्र बनाये गये हैं उसी कृत्रिमता म इनका डिग्रेड (Degrade) भी किया गया था। दूसरी विशेषता यह

1 These figures had long and grave eyes on the julf up to the loob of the ear The viskers are thick and beard is often depicted The dress is generally a white Jama with a Kamarbund and white big Pyjama The head gear is a Pegri which goes on differing from period to period and ruler to ruler The jewel is turra, Kalangi, Sarpech, Gurda, neckless etc The figure is shown carrying a katar, a sword and a shield The female is depicted pretty with sharp features stout and tall She has large and attractive eyes Her hair are long and black reaching hips She has long arms and figures Her hands are shown quoted with Mehandi and a vermalion mark over the fore-head The waist is slightly broader Her dress is very colourful with red, blue, yellow and orange colours She has been painted wearing Lahanga, beseda, kanchli, Lungi and often in a tightly fitted Pyjama covered by a transparent skirt or dupatta over the shoulders The most favoured jewel of the Marwadi lady is the big toti, bali, baser, loong, nath, galsan mela etc around the arm the Bhoojbund The wrist has a lot of bangles and other ornaments Jhoor, Panas, and Neven are the most favoured jewel of Marwadi lady

है कि बीकानेर और जोधपुर के शासक अधिक समय तक दक्षिण मे रहे। इनके साथ दक्षिण की चित्रकला के आदर्श बीकानेर पहुँच गये। वह आदर्श बीकानेर के चित्रो मे लक्षित होते हैं। बीकानेर के चित्रो का मूल उद्देश्य भागवत गीता, कृष्ण लीला तथा हिन्दूओ की पौराणिक गाथाओ को रागमाल और बारामासा के चित्रो द्वारा चित्रित करना था। बीकानेर के चित्रकार अपने चित्रो पर अपना नाम और तारीख़ लिख दिया करते थे परन्तु मेवाड या मारवाड के चित्रकार नही लिखते थे।

किशनगढ शैली

किशनगढ मे भी राठौड राजा ही राज्य करते थे लेकिन इस राज्य मे बने चित्रोको स्वर्गीय श्री एरिक डिकरसन से पहले किसी ने भी पृथक शैली के रूप मे स्वीकार नही किया था। यहा पर जो चित्र बने उनमे निहालचन्द के द्वारा बनाये गए चित्र सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। निहालचन्द ने अपने चित्रो पर फारसी भाषा मे अपना नाम भी लिख दिया था। यहा के चित्र अपनी कलात्मक सौन्दयता के लिए सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं।[1]

जयपुर

ढूढर के प्रदेश मे चित्रकला का सर्वाधिक विकास हुआ था। कुवर संग्रामसिंह ने तो एक लेख मे 'ढूढर के प्रदेश की राजस्थानी चित्रकला के लिए विशेष देन' का एक लेख मे प्रकाशित भी किया है। इन चित्रो मे म्यूजियम और वैराठ तथा मोजमाबाद के फिरसकोज सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। इन पर मुगल कला का प्रभाव नजर नही आता लेकिन जो चित्र मिर्जा राजा जयसिंह के शासन काल मे बनाये गए उन पर मुगल कला का प्रभाव स्पष्ट रूप मे नजर आता है। ढूढर मे रागमाल और बारामासा के अतिरिक्त पोट्रेट (Portrait) पेन्टिग का सर्वाधिक विकास हुआ है। श्री घासी, सालिगराम, रघुनाथ, राम सेवक इत्यादि यहा के प्रसिद्ध चित्रकार थे जिन्हे आमेर के कछवाहा राजाओ के द्वारा प्रोत्साहन दिया जाता था। ढूढर मे बने मिनियेचरस (Miniature) भी राजस्थानी चित्रकला मे अधिक प्रसिद्ध है। चित्रकला को आमेर शैली मे अलवर और उनियारा के ठिकानो ने भी प्रोत्साहित किया था।

हाडौती

बून्दी और कोटा मे जो चित्र बने वे राजस्थानी चित्रकला के अद्वितीय आदर्श माने जाते है क्योंकि यहा के चित्रकारो ने बहुत ही सुन्दर ढग से रगो का प्रयोग किया है। पेड, जीव-जन्तुओ और पक्षियो को चित्रित करने मे इन चित्रकारो ने अपनी कलात्मक भावना का पूर्ण रूप मे आभास दिया है।

---

1 A Kishangarh artist painted a variety of subjects The figures have arched eye-brows, long and grave eyes, pointed nose, projected chin, thin waist long figure which make them look very pretty and attractive The colour scheme is generally sober and pleasing The atmosphere created in the works of art is definitely more romantic than in other school of this period

बून्दी मे रोमाचकारी चित्र भी बनाये जाते थे। फिगर (Figure) के चित्र भी बून्दी मे जितने अधिक सुन्दरता से बनाये गए उतनी अधिक सुन्दरता से शायद दूसरे स्थानो पर नही बनाये गए। नवलगढ के कुवर सग्रामसिह के सग्रह मे सुग्रर का शिकार करते हुए रावरतन का जो चित्र है वह निस्सन्देह रूप मे कलात्मक सौन्दर्य का अद्वितीय उदाहरण है। यहा पर बने हुए कागला का एक चित्र कुवर सग्रामसिह के सग्रह मे सुरक्षित है। इन चित्रो मे लाल और पीले रग का इतनी दक्षता के साथ प्रयोग किया गया है कि आकृतिया छोटी होने हुए भी चित्र लुभावने प्रतीत होते हैं।

बून्दी के समान कोटा मे भी चित्रकला को प्रोत्साहन मिला। कोटा के प्रधानमत्री और झालावाड राज्य के सस्थापक जालिमसिह की हवेली मे दूसरी मजिल मे जो चित्र बने हुए हैं उनको देखने से यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि कोटा मे राज्य-परिवार के अतिरिक्त दूसरे लोगो ने भी चित्रकला को विकसित होने मे प्रोत्साहन दिया था।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राजस्थान के विभिन्न केन्द्रो मे चित्रकला का उत्कर्ष एव विकास हुआ लेकिन यह विकास केवल मुगलो के सम्पर्क मे आने के कारण नहीं हुआ था जैसा कि सर जदुनाथ सरकार ने लिखा है। चित्रकला की शैली मुगलो के सम्पर्क के कारण प्रभावित अवश्य हुई थी लेकिन चित्रकारी राजस्थान मे प्राचीन काल से ही होती रही थी और वह मुगल दरबार मे चित्रकला के पतन के बाद भी बदस्तूर जारी रही।

Appendix IV

मध्यकालीन राजस्थान की प्रमुख सड़कें

(IMPORTANT ROADS OF MEDIAEVAL RAJASTHAN)

(i) **दिल्ली से अजमेर** का मार्ग सराय अलावर्दीखा, पाटौदी, रिवाड़ी, कोटपुतली, जोबनेर, सामर, मनाना और हरमाडा होकर गुजरता था।

सराय अलावर्दीखा दिल्ली से 16 मील दक्षिण-पश्चिम मे आधुनिक गुडगाव रेलवे स्टेशन से सिर्फ एक मील उत्तर मे स्थित था।

हरमाडा फुलेरा जक्शन और किशनगढ के बीच मे स्थित तिलानिया रेलवे स्टेशन मे केवल दो मील उत्तर स्थत था।

(ii) **अजमेर से अहमदाबाद** जाने के तीन मार्ग थे—

(i) पहला मार्ग मेडता, सिरोही, पाटन नहरवाला, दीसा होता हुआ अहमदाबाद जाता था।

(ii) अजमेर से जालोर, हैवातपुर होता हुआ अहमदाबाद जाता था।

(iii) अजमेर से मेडता, जैतारण, सोजत, पाली, भगवानपुर, जालोर, पाटनवाल होता हुआ अहमदाबाद जाता था।

सत्रहवीं शताब्दी मे भारत की यात्रा करने वाला विदेशी यात्री Tieffenthaler लिखता है कि जालोर से अहमदाबाद जाने के लिए सबसे छोटा मार्ग भीनमाल, पालनपुर, सीतापुर, मेहसाना होकर जाता था।

(iii) **आगरा से अजमेर** का रास्ता बयाना होकर जाता था। यह मार्ग सर्वाधिक सुरक्षित था। प्रत्येक एक कोस की दूरी पर मार्गसूचक पत्थर लगे हुए थे और हर आठ कोस के फासले पर रहने के लिए महल बने हुए थे जिनका निर्माण अकबर बादशाह ने करवाया था। आगरा से अजमेर के बीच का रास्ता 130 कोस था। यह रास्ता फतहपुर, अहनावाद, हिण्डौन, मुगल सराय, लालसोट, चाद फूल, पीपला, मोजमाबाद, बादर सीदरी होता हुआ अजमेर जाता था।

(iv) **मालवा से आगरा** का मार्ग वर्त्तमान राजस्थान मे रणथम्भोर, मु रिसा सेरा, धौलपुर व बाड़ होकर गुजरता था।

(i) For details see 'The Empire of the Great Mogol, a translation of DeLaets' Description of India and Fragment of Indian History' by J S Havland

(ii) India of Aurangzeb by Sir J N Sarkar (1901 A D)

Appendix V

आमेर के कच्छवाहा राजाओं की वंशावली

(राजा भारहमल से महाराजा बिशनसिहजी तक)

राजा भारीहमल राजा प्रथीराज जी को टीके बैठे संवत 1604 सावण वदी।

वैकुंठी पधारया मुथराजी मै संवत 1630 माह वदी 6 राज वरस 26 मास 7 रो यो बेटा।

भगवतदास राठौडी को
परस राम चौहाणी कै
भोपती सोलुखणी कै
सनेंदी सोलुखणी कै
भगवानदास राठौडी कै
जगन्नाथ सोलुखणी कै
सारदुल सोलुखणी
सुदरदास दुजी सोलुखणी को
प्रथी दीन

राजा भगवतदास राजा भारीहमलजी को टीकै संवत 1630 माह सुदी 9 टीको बैठो आवेरी मै वैकुंठ संवत 1646 मागसर वदी 3 लाहर मै राज वरस 15 मास 9 बेटा 7

मान संघ पवारी को
कान्ह पवारी कै (अवत)
परताप संघ पवारी को
माधे संघ पवारी को
सुरज संघ पवारी को
चन्द्र भाण मीटाणी को

महाराजा श्री मानसंघ जो टीको बैठो माह वदी 5 स 1646 मु० लाहोर का दर मुव सो हुं वैकुंठ आसाढ सुदी 10 बुधवार संवत 1671 मु० [illegible] सो।

राज वरस 24 मास 9 बेटा 9
सबल संघ गौडी को
हींमत संघ माएं ? चौहाणी वदी 2
जगत संघ राठौडी को
दुरजन संघ गौडी कै
[illegible] संघ को माझा संघ
[illegible] (?) संघ चौहाणी कै
[illegible] संघ

महाराजा श्री मीर्जा श्री माव सीघ जी मानसघ जी कै

टीकौ मवत 1671 मादवा वदी 13 अजमेर मौ मलेम माहाजो टीकौ दीय

वौकुट सवत 1678 मु० तीमरणी दीपण मौ छै राज वरस 7 मास 4 दीन 3

माटा राजा धीराज माहा राजा श्री जै सघ जी वैठार राम मघ
कीरत सघ कै टीकै वैठै सवत 1678
माह मुदी 5 मु० हुरदवार सलेमसाही पाती साही दीन्है
काल परापती (प्राप्ति) मीती आसोज वदी 5 मु० दुराहनपुर दीनण मै स 1724

राम सघ चौहाणी कै

राजा रामसघ ठीकौ वैठै सवत 1724 आसौज मुदी 4 मु० दीनी औरगजेव टीकौ दीवै।

महाराजा राममघ के कवर की मघ हाडो कै कवर पद दीपण माई कीसनसघ का वीमन मघ

महाराजा जी वीसनमघ जी टीका–राम सघ जी कै वदी 7 स० 1745

मवत 1732 का चौत मुदी 11 पानो माही का मोवावा भुजाता की वसावनो घामीराम की पोथी माहा उनारी नी वाचो भुना चुका की माफ वीजो काढो मत नीपतो जो राम

पृष्ठ 149 अन्तिम पक्ति पढिए thesis
पृष्ठ 161 नीचे से सातवी पक्ति पढिए night
पृष्ठ 169 अन्तिम पक्ति पर पढिए No. 31
पृष्ठ 170 नीचे मे नवी पक्ति पढिए रायसिंह
पृष्ठ 171 प्रथम पक्ति प्रथम शब्द अमरसिंह है।
पृष्ठ 189 पढिए 'जयसिंह के अन्तिम दिन'
पृष्ठ 207 *अन्तिम पक्ति पर पढिए आगरा*
पृष्ठ 214 चौदहवी पक्ति पर पढिए दुअस्पा
पृष्ठ 218 चौबीसवी पक्ति पर पढिए वछामदी
पृष्ठ 230 पाद टिप्पणी 1 पढिए सियार
पृष्ठ 236 No 10 पर पढिए 'History of the Baronical House Diggi' by Dr K R Qanungo.
,, No 15 पर पढिए Elliot and Dawson, Vols. VII & V
पृष्ठ 241 पक्ति 22 पर पढिए पाद
पृष्ठ 253 पर पढिए 'महाराणा कर्णसिंह का शासनकाल 1620–28 था'
पृष्ठ 266 तृतीय वाक्याश अन्तिम पक्ति पढिए Walled
,, चतुर्थ वाक्याश प्रथम पक्ति पढिए 'मुक्ति कल्पतरु'
पृष्ठ 261 पाद टिप्पणी 1
पृष्ठ 270 द्वितीय पक्ति पढिए यौधेय
,, नीचे से सातवी पक्ति पढिए Auhadi
,, नीचे से दूसरी पक्ति पढिए Ever
पृष्ठ 277 सोलहवी पक्ति पढिए लाखोटा बारी
पृष्ठ 279 चतुर्थ पक्ति पढिए Ladders
,, नीचे से नवी पक्ति पढिए Shippery
पृष्ठ 281 *प्रथम पक्ति पढिए route*
,, नीचे से आठवी पक्ति पढिए मीर
पृष्ठ 282 द्वितीय वाक्याश छठी पक्ति पढिए 'राव जोधा का फनसा'
पृष्ठ 286 ग्याहरवी पक्ति पढिए महाराजा रायसिंह
पृष्ठ 292 नीचे से छठी पक्ति पढिए महेशदास राठौड
पृष्ठ 293 छठी पक्ति पढिए रायसिंह
,, नवी पक्ति पढिए 'अर्थ' के स्थान पर पैत्रक राज्य
पृष्ठ 310 नीचे से तीसरी पक्ति पढिए a device
पृष्ठ 317 पाचवी पक्ति पढिए Commanders

पृष्ठ 149 अन्तिम पक्ति पढिए thesis
पृष्ठ 161 नीचे से सातवी पक्ति पढिए night
पृष्ठ 169 अन्तिम पक्ति पर पढिए No. 31
पृष्ठ 170 नीचे से नवी पक्ति पढिए रायसिंह
पृष्ठ 171 प्रथम पक्ति प्रथम शब्द अमरसिंह है ।
पृष्ठ 189 पढिए 'जयसिंह के अन्तिम दिन'
पृष्ठ 207 अन्तिम पक्ति पर पढिए आगरा
पृष्ठ 214 चौदहवी पक्ति पर पढिए दुअस्पा
पृष्ठ 218 चौबीसवी पक्ति पर पढिए वद्धामदी
पृष्ठ 230 पाद टिप्पणी 1 पढिए सियार
पृष्ठ 236 No 10 पर पढिए 'History of the Baronical House of Diggi' by Dr K R Qanungo.
,, No 15 पर पढिए Elliot and Dawson, Vols. VII & VIII
पृष्ठ 241 पक्ति 22 पर पढिए पाद
पृष्ठ 253 पर पढिए 'महाराणा कर्णसिंह का शासनकाल 1620–28 था' ।
पृष्ठ 266 तृतीय वाक्याश अन्तिम पक्ति पढिए Walled
,, चतुर्थ वाक्याश प्रथम पक्ति पढिए 'मुक्ति कल्पतरु'
पृष्ठ 261 पाद टिप्पणी 1
पृष्ठ 270 द्वितीय पक्ति पढिए यौधेय
,, नीचे से सातवी पक्ति पढिए Auhadi
,, नीचे से दूसरी पक्ति पढिए Ever
पृष्ठ 277 सोलहवी पक्ति पढिए लाखोटा बारी
पृष्ठ 279 चतुर्थ पक्ति पढिए Ladders
,, नीचे से नवी पक्ति पढिए Shippery
पृष्ठ 281 प्रथम पक्ति पढिए route
,, नीचे से आठवी पक्ति पढिए मीर
पृष्ठ 282 द्वितीय वाक्याश छठी पक्ति पढिए 'गाव जोधा का फनसा'
पृष्ठ 286 ग्याहरवी पक्ति पढिए महाराजा रायसिंह
पृष्ठ 292 नीचे से छठी पक्ति पढिए महेशदास राठोड
पृष्ठ 293 छठी पक्ति पढिए रायसिंह
,, नवी पक्ति पढिए 'अथ' के स्थान पर पैत्रक राज्य
पृष्ठ 310 नीचे से तीसरी पक्ति पढिए a device
पृष्ठ 317 पाचवी पक्ति पढिए Commanders